भगवत दर्शन खंड ६३

भक्त और भगवान्

भागवत दर्शन

खण्ड ६३

भागवती स्तुतियाँ (१)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन भागवतार्थे सुदर्शनम् ॥

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक

सङ्कीर्तन भवन

प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

मुद्रक

भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, झूसी (प्रयाग)

प्रथम संस्करण } आषाढ़, संवत् २०१३ { मूल्य १।) सवा रुपया

विषय-सूची

तिरसठवां खण्ड

॥ श्री हरिः ॥

प्रकाशकीय वक्तव्य

१—"भागवत दर्शन" का यह ६३ वाँ खण्ड ६० ६१ खण्ड फाल्गुन में निकलता और तभी जिन लोगों ने रुपये भेजे या वी० पी० भेजने की आज्ञा दी उन्हें वह खंड भेजा गया। इसके एक महीने पश्चात् ही हमारे पास प्रेमी पाठकों के पत्र पर पत्र आने लगे। कोई लिखते हमें ६२ वाँ अंक नहीं मिला, क्या हमें भूल गये क्या। कोई लिखते चैत्र,वैशाख, ज्येष्ठ के तीन अङ्क नहीं मिले तीनों एक साथ तुरन्त भेजो। कोई लिखते आपका काम बड़ा सुस्त है और कोई कोई यहाँ तक भी लिख गये कि रुपये तो पहिले ले लेते हो, और एक अङ्क भेजकर चुप्पी साध लेते हैं। इन सभी पत्रोंमें पाठकों को अगले खंड पढ़ने की उत्सुकता ही प्रधान है, कोई हमारी विवशता को ध्यान में रखकर सौम्य भाषा में लिखते हैं, कोई हृदय में सीधी लग जाय इसलिये तीखी भाषा का प्रयोग करते हैं। सारांश इतना ही है, अगले खंड शीघ्र भेजो, समय पर छापो प्रतिमास नियमित भेजो। ऐसा लिखने का पाठकों को अधिकार है, किन्तु उन्हें हमारी स्थिति पर भी तनिक ध्यान रखना चाहिये। नियमित खंड न भेजने के प्रधान कारण इतने हैं

१—पाठकों को एक बात स्मरण रखनी चाहिये "भागवत दर्शन" कोई मासिक पत्र नहीं जो नियत तिथि पर भेजा ही जाय। यह पत्रालय की सुविधाओं से रहित अपुंजीकृत (अनरजिस्टर्ड) पुस्तक है। छपने पर रजिष्ट्री से तुरन्त भेज दी जाती है। डाक व्यय प्रायः दुगुना हो जाने से सुविधा के लिये दो तीन खंड एक साथ भेजे जाते हैं। इससे खोने का प्रायः बहुत ही कम अवसर आता है। अतः पाठक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा किया करें।

२—पहिले "भागवती कथा" के लगभग हजार डेढ़ हजार ग्राहक थे। अब २५०, ३०० रह गये हैं। बीच में गौरक्षा आन्दोलन के कारण दो तीन वर्ष प्रकाशन बन्द रहा। कहावत है, उठी पैंठ आठवें दिन लगती है।" छिन्न भिन्न हुए कार्य को पुनः जोड़ने में समय अपेक्षित है। फिर अनाड़ी आदमी अनधिकार चेष्टा करे, विप्रवृत्ति वाला वाणिज्य व्यापार में प्रवृत्त हो, तो उसे पग पग पर अपनी भूलें अनुभव होती हैं। एक कहानी सुनिये। एक व्यापारी एक ब्राह्मण के साथ यात्रा में चले। ब्राह्मण पर मार्ग में खाने को सत्तू बँधे थे, व्यापारी के पास चावल के धान थे। ब्राह्मण तो जल में सत्तू को घोलकर पीलें। व्यापारी को धानसे चावल निकालना उन्हें राँधना,ठंडा करना खाना देर लगे व्यापारी ने सोचा—किसी तरह इस बामन को चकमा देना चाहिये। उनके पास जाकर बोला—"पण्डितजी ! आप भी क्या सत्तू लेकर चले। मार्ग में भला ऐसी वस्तु लेकर चलना चाहिये। यह कहकर वह धीरे धीरे एक एक शब्द पर बल देते हुए यह कविता पढ़ने लगा—सत्तू, मन भत्तू, जब घोरे, तब खाये, तब चले।" फिर एक साथ शीघ्रता से दूसरा चरण कह गया, "धान विचारे भले कूटे खाये चले।"

बामन की बुद्धि तो पीछे सोचने वाली होती ही है, आ गये चक्कर में, फँस गये लोभ में आहार की अदला बदली कर ली। लालाजी ने एक ही मंजिल में अपनी सम्पूर्ण सुविधा कर लीं। सत्तू घोरकर पीलें तान दुपट्टा सोलें। पंडितजी मार्ग भर खल मूसल पतीली कंडे, पत्तल की खोज ही करते रहें इसीलिये कहावत है—"जाको काम ताही कूँ छाजै, नहीं गदहा कूट मोंगरा बाजै" कोई चतुर व्यापारी प्रकाशक होता, तो ६० खण्ड छापकर अपनी सभी सुविधायें अब तक कबको कर लेता। किन्तु यहाँ तो

वे ही ढाक के तीन पात जैसे बालम घर रहे वैसे रहे विदेश। "वही रफ्तार बेढंगी जो पहिले थी सो अब भी है।" किन्तु पाठक निराश न हों। जब ओखली में सिर ही दिया तो मूसलों से डर ही क्या ? जब भगवान् ने अनधिकारी होने पर भी इस कार्य में प्रवृत्त कर दिया है, तो उन्हीं की प्रेरणा से कैसे भी जुटा फुटा-कर १२ अङ्कों को तो पूरा करना ही है, देर सवेर की बात दूसरी है, वर्ष में १२ खण्ड न दे सकें यह बात पृथक है। रुपयों को मार में न समझें आपके रुपये दूध पी रहे हैं। १२ अंक मिलेंगे अवश्य मिलेंगे। और यथाशक्ति शीघ्र मिलेंगे। तनिक धैर्य रखें। हमें साँस लेने दें। हाथ पैर सीधे करने दें, पङ्ख फड़फड़ाने दें, तनिक अँगड़ाई ले लें फिर देखिये दनादन खंड के ऊपर खंड आपकी सेवामें पहुँचते हैं या नहीं। एक बात यह भी है। अबतक के प्रकाशित ६० खण्डों में से एक न एक घटता ही रहता है। खण्डों को पूरा करने के पिछले खण्ड भी छापने पड़ते हैं, इन्हीं सब कारणों से अगले खण्डों में देरी हो जाती है समुत्सुक पाठकों से निवेदन है, वे 'भागवती कथा' को इतना प्यार करते हैं, तो उसके प्रचार प्रसार में भी उन्हें कुछ न कुछ समय निकालकर सक्रिय सहयोग देना चाहिये १—नगरों के सज्जन अपने परिचितों को ग्राहक बनावें, आस पास के पुस्तकालयों में रखवावें। धनी महानुभाव कुछ लोगों को, पुस्तकालयों को संस्थाओं को पुस्तकें लेकर दान दें। उत्तर प्रदेश की समस्त ग्राम पञ्चायतों के लिये भागवती कथा तथा हमारी सभी पुस्तकें सरकार से स्वीकृत हैं जिनकी वहाँ पहुँच हो। ग्राम पुस्तकालयों के लिये इन उपयोगी पुस्तकों को आग्रह पूर्वक मँगवावें इस प्रकार वे सहयोग देंगे तो हम यथा शक्ति शीघ्र से शीघ्र और अधिक सेवा करने में समर्थ हो सकेंगे। बस, आज इतना ही फिर आगे कभी।

व्यवस्थापक की ओर से।

भगवत् स्तुति

(भूमिका)

त्वं भावयोगपरिभावित हृत्सरोज

आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।

यद् यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति

तत्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय

(श्री भा० ३ स्क० ९ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

भगवन् ! भगतनि हेतु वेष बहु मनहर धारो ।
शरनागत ; ह्वै विनय करें तिन कूँ तुम तारे ॥
भगत भाव अनुरूप रूप धरि सम्मुख आओ ।
दै इच्छित वर प्रभो ! प्रनत प्रन पूर्न कराओ ॥
जग जीवनि आशा तजहिं, तुमरी ही इस्तुति करहिं ।
पकरि पदुम पद भव जलधि, नर नारी सहजहिं तरहिं ॥

जीव जब विवश हो जाता है, उसका अहंभाव ढीला हो

भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी कहरहे हैं—"हे नाथ !, जिनका मार्ग केवल गुण श्रवण से ही जाना जाता है, ऐसे आप निश्चय ही मनुष्यों के भक्तिभाव से परिपूर्ण हृदय कमल में निवास करते हैं हे पुण्य-श्लोक प्रभो ! आपके भक्तजन जिस जिस भावना से आपका चिन्तन करते हैं, आप भी सज्जन पुरुषों पर अनुग्रह करने के निमित्त वही वही रूप धारण करलेते हैं ।

जाता है, तो किसी के आगे झुक जाता है, दीन हो जाता है, उसका स्तवन करने लगता है, उसकी महत्ता के सम्मुख नत हो जाता है, प्राणी के झुकने के दीन होने के बहुत से कारण हैं उनमें ये चार मुख्य हैं (१) काम (२) भय (३) लोभ (४) और प्रेम।

(१) काम के वश में हो जाने पर नर नारी दीन हो जाते हैं। यदि पुरुष के हृदय में प्रथम होता है, तो पुरुष दीन होकर नारी की स्तुति करता है यदि स्त्री के हृदय में उदय होता है, तो वह पुरुष के सम्मुख नत होकर उसकी अनुनय विनय करती है स्तुति प्रार्थना करती है। मन से, संकेतों से, वाणी से तथा आकृति से अपने अनुराग को जताती है। पुरुष जो स्त्री को सुनयनी मृगनयनी, चन्द्रमुखी, बिम्बोष्ठी, सुजघना विपुला आदि आदि सम्बोधन करता है, यह स्तुति ही तो है, इसी प्रकार स्त्री, हे पुरुषसिंह! हे प्राणेश, हे जीवनधन! हे जीवनसर्वस्व! आदि कह कर पुकारती है यह विनय, स्तुति अथवा प्रार्थना ही है।

(२) भय से भी प्राणी दीन हो जाता है, जिससे भय हो उसके सम्मुख मुख में तृण दवाकर दोनों हाथों की अंजलि बाँधकर नेत्रों से नीर बहाते हुए कहते हैं आप तो हमारे माता पिता हैं, अन्नदाता हैं, जीवनदाता हैं, हम पर कृपा करो हमें अभय दान दो।

(३) लोभ से भी प्राणी अपने आप को भुलाकर जिससे स्वार्थ सिद्ध होता हो, उसके सम्मुख कृपण होकर उसकी स्तुति करने लगता है, उसके सम्मुख पल्ला पसार कर याचना करता है, कुछ पाने की इच्छा से उसके सम्मुख गिड़गिड़ाता है, उसकी प्रशंसा के पुल बाँधता है। अपने को तुच्छ समझता है, उसकी महत्ता का बखान करता है।

(४) प्रेम का तो कहना ही क्या। यह प्राणी, सृष्टि के आदि से प्रेमका भूखा रहा है और अन्त तक इसकी भूख मिटने वाली नहीं। संसार में आचार, व्यवहार, भोजन, खान, पान, रीति व्यवहार सभी बदलते रहते हैं, किन्तु एक प्रेम ही ऐसा है जो सदा से ऐसा ही रहा है। असभ्य से लेकर सभ्य तक, शिक्षित से लेकर अशिक्षित मूर्ख तक, राजा से लेकर रंक तक तथा धनी से लेकर निर्धन तक सभी के हृदय में प्रेम की प्यास समान रूप से है। जिससे भी प्रेम हो जाता है, उसके सम्मुख प्राणी अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। प्रेमी की स्तुति करने में एक अनिर्वचनीय सुख होता है। प्रेम कई प्रकार का होता है, किस प्रेमी का कैसे स्तुति की जाती है, प्रेम अपने प्रियतम का क्या स्वरूप है, ये गंभीर और विस्तृत विषय हैं, इनकी विस्तार से चर्चा अगले खंडों में श्रीराधाकृष्ण प्रेमलीला के प्रसंग में की जायगी। यहाँ तो इतना ही समझ लेना चाहिये कि प्रेमी की स्तुति की जाती है और उसमें बड़ा आत्मतोष तथा सुख मिलता है। यही नहीं जो अपने प्रेमी की प्रशंसा करता है, उसके प्रति भी अनुराग हो जाता है प्रेमी की कैसे भी चर्चा चल जाय तो हृदय खिल जाता है संसारी मनुष्य स्वयंअपूर्ण हैं, उनकाशरीर नाशवान् है उनसे अपने कार्य की-अपने स्वार्थ की-पूर्णसिद्धि संभव नहीं। जो स्वयं ही सर्प के विष से व्याकुल हुआ तड़प रहा है, वह दूसरे की सर्प से क्या रक्षा करेगा? इसलिये तुम्हें काम की पूर्ति करनी हो तो मन्मथ के भी मनको मथन करने वाले मनमोहन से प्रार्थना करो उसी की विनय करो। वे मोहन भी हैं और मोहनी भी हैं वहाँ जाकर आपकी समस्त वासनायें पूर्णरीत्या पूर्ण हो जायँगी।

यदि आप किसी भय से भयभीत हैं, तो इन विषयों के भय से संत्रस्त प्राणियों के पैर क्यों पूजते हो, ये तुम्हें सर्वथा निर्भय करने में समर्थ नहीं, भवभयत्राता भगवान् की शरण में जाओ,

वे तुम्हें समस्त भयों से छुटाकर निर्भय बना देंगे। उनकी स्तुति करने से सच्चे हृदय से प्रार्थना करने से भय आपके समीप से सदा सर्वदा के लिये भाग जायगा।

तुम्हारे मन में किसी वस्तु का लोभ है, तुम कुछ चाहते हो तो इन धनदुर्मद, विकराल महातृष्णा से आकुल धनिकों के आगे जाकर क्यों गिड़गिड़ाते हो, उनके सम्मुख दीन हीन बनकर क्यों हाथ फैलाते हो, तुम उन श्रीपति की शरण में क्यों नहीं जाते, आप्तकाम परिपूर्ण प्रभु के पादपद्मों में प्रार्थना क्यों नहीं करते वे तुम्हारी समस्त कमियों को सम्पूर्ण अभावों को पूर्ण कर देंगे, फिर तुम्हें अन्य किसी के सम्मुख गिड़गिड़ाने की, दीन होने की हाथ फैलाने की आवश्यकता न पड़ेगी। तुम्हारे समस्त मनोरथ सफल हो जायँगे।

यदि तुम प्रेम चाहते हो, और इन संसारी नर नारियों से ही प्रेम की आशा करते हो तो बड़ी भूल करते हो। शंहद की इच्छा से तुम बर्रों के छत्तों को निचोड़ोगे, तो उनमें अंडे ही मिलेंगे। जो स्वयं विषयों के दास हैं, वे भला प्रेम के पंथ को क्या जानें, प्रेम करना हो तो प्रभु से करो वे ही परम प्रेमास्पद हैं। वे ही प्रेम के आदि स्रोत हैं। वे ही प्रेम के पयोनिधि हैं। अतः प्रेम प्राप्ति के लिये प्रार्थना करनी ही तो परमेश्वर के पादपद्मों में ही करो। इस प्रकार तुम्हें जो भी इच्छा हो, जो भी आकांक्षा हो, उसे प्रभु के ही सम्मुख कहो इष्ट के सम्मुख की हुई प्रार्थना असफल नहीं होती।

अपने मनमें भगवान् का एक रूप धारण करलो। एक छवि को बसालो, किसी को अपना इष्ट मानलो। भगवान् तो अनेक रूप रूपाय हैं। सभी उन्हीं के रूप हैं। सब रूपों

में वे ही भासित हो रहे हैं। शिव, विष्णु, सूर्य जगदम्बा, गणेश तथा राम, कृष्ण, नृसिंह, सीता, काली, लक्ष्मी सब उन के विविध भाव हैं। जिस भाव से तुम इनको पुकारोगे उसी भाव से उसी रूपसे वे तुम्हारे सम्मुख प्रकट होंगे, दर्शन देंगे तथा तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करेंगे। भगवान् अपने भक्त की सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। उनके लिये सब कुछ कर सकते हैं। उसके कल्याण के लिय विविध साधन जुटा देते हैं।

उड़ीसाके महाराज के इष्ट श्रीजगन्नाथ जी थे, वे तैलंगदेश की राजकुमारी के ऊपर आसक्त हो गये। उन्होंने तैलंगके महाराज से प्रार्थना की कि वे अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ करदें। तैलंगाधिप अपने को बड़ा भारी भूपति समझते थे, उन्होंने व्यंग के साथ कहला दिया—"राजकुमारी का विवाह किसी राजा के साथ ही होगा, जगन्नाथ जी के मंदिर में झाड़ू देने वाले के साथ राजकुमारी का विवाह नहीं हो सकता।"

उड़ीसा के महाराज स्वयं श्रीजगन्नाथ जी के मंदिर में झाड़ू देते हैं। इस उत्तर से उन्हें बड़ा क्रोध आया, उन्होंने आन्ध्रदेश पर चढ़ाई करदी। तैलंगदेश की सेना अधिक थी सैनिक भी बड़े शूरवीर थे उन्होंने उड़ीसाके सैनिकों को हरा दिया। उड़ीसा के महाराज बड़े दुखी हुए। उन्होंने अपने इष्टदेव श्रीजगन्नाथजी की बड़े आर्तभाव से स्तुति की। अपने भक्त की इच्छा पूर्ति के निमित्त जगन्नाथ जी बलभद्रजी के सहित स्वयं राजवेष में अस्त्र शस्त्र लेकर घोड़े पर चढ़कर तैलंगदेश में लड़ने गये। राजा की सेना को परास्त करके राजकुमारी को ले आये और पुरी में ही आकर उसका राजा के साथ विवाह कर दिया।

संसार में जिसे इष्ट का बल है, उसकी कोई कामना अपूर्ण नहीं रहती, उसे किसी का भी भय नहीं रह जाता, वह जिस वस्तु की इच्छा करता है वही प्राप्त हो जाती है। प्रेम की तो भगवान् खान ही हैं, प्रेमकी प्राप्ति के हेतु जो प्रभु की प्रार्थना करता है, वह सदा प्रेम में पागल हुआ प्रेम सागर में गोता लगाता रहता है।

किसी भी प्रकार इष्ट-स्थिर हो जाय, चित्त अपने इष्ट में लग जाय, इष्ट के लिये दृढ़ता मन में आ जाय, तो फिर असंभव बात भी संभव हो जाती है। उसके लिये असंभव नाम की कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। संसार में कितना भी बड़े से बड़ा बलवान् से बलवान् शत्रु क्यों न हो उसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता, बाल बाँका नहीं कर सकता। इष्ट की और उसके सम्मुख की गयी स्तुति की ऐसी ही बड़ी महिमा इस सम्बन्धकी देवीभागवत में एक बड़ी ही सुन्दर रोचक शिक्षाप्रद कथा है।

अयोध्या नगरी में ध्रुवसन्धिनाम के कोई धर्मात्मा राजा राज्य करते थे, वे अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे वे बड़े शूरवीर दानी, यशस्वी तेजस्वी तथा धर्मात्मा नृपति थे उनके मनोरमा और लीलावती दो रानियाँ थीं। दोनों ही सुन्दरी सत्कुलोत्पन्ना तथा पतिप्राणा थीं। यथासमय मनोरमा ने एक पुत्र-रत्न उत्पन्न किया। जिसका नाम राजाने सुदर्शन रखा। इस के एक मास पश्चात् लीलावती ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम शत्रुजित् रखा गया। यद्यपि राजा दोनों ही पुत्रों को प्यार करते थे, किन्तु शत्रुजित बोलने में बड़ा तेज था। राजा उसके प्रति अधिक आकर्षण था। उसकी माता लीलावती को भी राजा का अधिक स्नेह प्राप्त था। जिसे राजा

प्यार करे उसके प्रति सभीका अनुराग होना स्वाभाविक था। सुदर्शन बहुत सरल सीधा सादा तथा कम बोलने वाला था।

एक दिन महाराज ध्रुवसन्धि मृगयाके लिये वनमें गये वहाँ उनको एक क्रुद्धसिंह ने मार डाला। दोनों राजकुमार अभी बालक ही थे। सम्पूर्ण राज्य राजा से विहीन हो गया; वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों ने तथा वृद्ध वृद्ध मंत्रियों ने सम्मति की, कि बिना राजा के तो काम चल ही नहीं सकता। महारानी मनोरमा का पुत्र सुदर्शन अवस्था में ज्येष्ठ है, गुणों में श्रेष्ठ है, शान्त दान्त तथा सरल है इसी का राज्याभिषेक होना चाहिये।

मंत्री पुरोहित यह सोच ही रहे थे, कि इतने में ही उज्जैन राजा युधाजित् महरानी लीलावतिके पिता तथा शत्रु जित् के नाना अपने जामात का मरण सुनकर तथा अपने दौहित्र को राज्य दिलाने अयोध्या में आ गये। सुदर्शन के नाना मनोरमा के पिता कलिंगाधिप महाराज वीरसेन ने भी जब यह समाचार सुना तो वे भी सुदर्शन का पक्ष लेने अयोध्या में आ गये। दोनों अपनी अपनी चतुरंगिणी सेना सजाकर आये थे। शत्रुजित् के नाना युधाजित का कहना था। मेरी पुत्री बड़ी रानी है इसका पुत्र गुणों में प्रभाव में बोलने चालने में ज्येष्ठ है राज्यासन के योग्य है। सुदर्शन छोटी रानी का लड़का है गुणहीन है सीधासादा है, मंत्री गण इसे कठपुतली बनाकर राज्यापहरण करना चाहते हैं मैं अपने जीते जी ऐसा न होने दूंगा। सुदर्शन के नाना वीरसेन का कहना था—अभी तो ये दोनों ही बच्चे हैं अभी से यह निर्णय नहीं हो सकता इनमें कौन गुणों में ज्येष्ठ है कौन कनिष्ठ। धर्म पूर्वक बड़ा होने से सुदर्शन ही राज्य का अधिकारी है। इसी बात पर दोनों में घोर मत भेद हो गया। पड़ौसी राजा तो देखते ही रहते है, कब हमारे निकटवर्ती राजा पर आपत्ति आवे कब हम जाकर

उसके राज्य पर अधिकार करलें। अयोध्या के समीप निषादों का राजा शृंगवरेपुर में रहता था। उसने जब महाराज का मरण और दोनों बालकों के नानाओंमें युद्ध की बात सुनी तो वह भी अयोध्या को लूटने की इच्छा से आगया। कुछ इधर उधर से भी दस्युगण एकत्रित हुए। कलिङ्गराज और अवन्तीपुराधीश दोनों राजाओं में घोर युद्ध हुआ। उसमें उज्जैनी के राजा युधाजित की विजय हुई। कलिङ्गाधिप महाराज वीरसेन को उसने युद्ध में मार डाला।

महारानी मनोरमा ने जब अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुना तो उसे महान् दुःख हुआ। एक तो उसके पति अभी परलोकगामी हुए थे, पुत्र अभी अबोध है उसका पक्ष लेने पिता आये थे उसे भी युधाजित ने मार डाला। युधाजित राज्य का लोभी है वह अपने दौहित्र को अयोध्या का राजा बनाना चाहता है, सुदर्शन ही इसमें कंटक है। इसी लिये उसने मेरे पिता को मार डाला अब वह आकर निश्चय ही सुदर्शन को भी मार देगा। अब मैं क्या करूँ मुझे राज्य नहीं चाहिये। मैं तो भीख माँग कर अपना निर्वाह कर लूंगी, मेरा प्यारा पुत्र किसी तरह से बच जाय। अब मेरा कोई सहायक भी नहीं। दुःख में कौन किसी का कोई सहायक होता है। प्रजा के लोगों पर युधजित का आतंक है। मेरे पिता की मृत्यु से मंत्रीगण भी डर गये हैं। सुदर्शन का अब पक्ष कौन लेगा। कौन मेरे बच्चे को उस दुष्ट के हाथ से बचावेगा। जब तक वह दुष्ट रणक्षेत्र से लौट कर नहीं आता तभी तक मैं अपने बच्चे को लेकर भाग जाऊँ। किन्तु भाग कर कहाँ जाऊँगी, कैसे जाऊंगी, मैंने तो महल से बाहर कुछ देखा ही नहीं। यह सोच कर दुःख और शोक से व्याकुल हुई रानी फूट फूट कर रोने लगी।

रानी बड़ी देरतक रोती रही फिर उसे स्मरण आया विदल्ल मंत्री बड़ा नीतिनिपुण है, वह परम विश्वासपात्र है वह अवश्य ही कोई उचित उपाय सुझावेगा। यह सोचकर उसने विदल्लको बुलाया और एकान्तमें अश्रुबहाते हुए अत्यंत करुणा भरी वाणी में अपना सभी दुःख सुनाया।

महारानी को इस प्रकार अश्रु बहाते और रोते देखकर विदल्ल का हृदय भर आया। उसके नेत्रों में भी आँसू आगये। उसने आँसू पोंछकर अत्यंत ही गम्भीरता से कहा—महारानी ! आप चिन्ता न करें मेरे ऊपर विश्वासकरें। मैंने आपका नमक खाया है। मैं अपनी पूरी शक्तिसे कुमार की रक्षा का प्रयत्न करूँगा। हमें अब देर न करनी चाहिये। युधाजित आते ही सर्वप्रथम कुमारको ही हत्या करेगा। उसको रोकने की किसी में सामर्थ्य नहीं। काशीमें मेरे एक सुबाहु नामके मामा रहते हैं, किसी प्रकार हम काशी पहुँच जायंतो वे निश्चय ही कुमार की रक्षा करेंगे। किसी प्रकार अभी राजमहल से निकलकर घोर बनमें जाकर छिप जायं, वहाँसे फिर रातों रात काशी भाग चलेंगे। काशी पहुँचने पर तो हम सर्वथा भयसे रहित निरापद हो जायेंगे। आप अब देरी न करें रथ मँगाकर तुरंत ही राजकुमारको लेकर मेरे साथ भाग चलें।"

महारानी ने विदल्ल की सम्मतिको तुरन्त स्वीकार किया। अपना निजी रथ मँगवाया शीघ्रता के साथ उसमें जितना द्रव्य वस्त्राभूषण रखसकी उतना रखकर चलने लगीं। फिर उन्होंने सोचा यदि मेरे भागने की बात किसी पर विदित हो गयी तो तुरंत पकड़वाली जाऊँगी यह सोचकर वे लीलावती के पास गयीं और रोती रोती बोलीं—बहिन ! सुना मेरे पिता भी परलोकवासी हो गये। अभी तक हम पति के दुःख से ही दुखी थी। अबमेरे पिता

भी मुझे छोड़ गये। तुम आज्ञा दो तो समर भूमि में जाकर मैं अपने मृत पिताके अंतिम दर्शन कर आऊँ।

लीलावती ने भी दुःख प्रकट करते हुए कहा—बहिन ! क्या कहूँ यह संसार दैवाधीन है, किसकी कब मृत्यु आजाय इसका किसीको भी पता नहीं। हाँ हाँ तुम अपने पिताके दर्शन करने अवश्य जाओ। मैं सब प्रबन्ध कराये देती हूँ।"

इस प्रकार रानी लीलावती से ऐसे कहकर रथमें चढ़कर तुरंत वहाँ से घोर जंगलकी ओर विद्दल्लके साथ चलदी। गोदीमें वे अपने प्यारे पुत्र सुदर्शन को कसकर दबाये थीं, कि जब तक मेरे शरीरमे प्राण रहेंगे कोई मेरे हृदय के टुकड़ेको मुझसे छीन न सकेगा। वह पहिले रथको लेकर सीधी रणभूमि में गयी। वहाँ उसने देखा उसके पिता बाणोंसे विद्ध हुए भूमि में पड़े हैं, उनका सम्पूर्ण शरीर रक्तसे लथपथ है, धूलिमें बहकर रक्त सूख गया है। वीरवेष में मुँह फाड़े महाराज भूमिमें लोट रहे हैं।

अपने पिता की ऐसी दशा देखकर महारानी ढाह मारकर रोने लगीं और धड़ाम से उनके शवके ऊपर गिर पड़ी और रोते रोते कहने लगीं—हा ! तात ! आपने हमारे पीछे अपने प्राण दे दिये।'

विद्दल्लने रानी को धैर्य बँधाते हुए कहा—"देवि ! यह समय शोक करनेका नहीं है धैर्य धारण करके पिताका अंतिम संस्कार करो।" रानीने अपने पुत्रके मुखको देखकर जैसे तैसे धैर्य धारण किया। इधर उधर से लड़कियाँ चुनकर पिता का दाह संस्कार किया।

दाह संस्कार करते कराते उन्हें सायंकाल हो गया। विद्दल्लने कहा—"देवि ! अब यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं।" चलो अब घोर बन में होकर चलें।"

मंत्री की बात सुनकर बड़े कष्ट से रानी उठी। बच्चे को गोदी में लेकर वह रथ में बैठ गयी। उन दिनों अयोध्या से गंगा तट तक घोर जंगल था, कोई निश्चित राजपथ भी नहीं था। रथ इधर से उधर भटकता हुआ दो दिन में गंगा तट पर पहुँचा।

शृंगवेरपुर के समीप रथ जा रहा था, रात्रि का समय था सामने से उसे बहुत से लोग रथ के पथ को रोके हुए दिखायी दिये। उन्होंने ललकार कर कहा—"रथ को खड़ा करो।" सारथी डर गया, रथ खड़ा हो गया। उस समय महारानी की दशा अत्यन्त ही दयनीय थी, वह अपने पुत्र को कसकर छाती से चिपटाये हुए थी। वह पीपल के पत्ते की भाँति थर थर काँप रही थी। उसे यही सन्देह था, कि युधाजित को उसके भागने का समाचार मिल गया है, उसने ही मेरे पुत्र को मारने को सैनिक भेजे हैं।"

न लोगों ने आते ही कहा—"जो तुम पर वस्त्र आभूषण हों, उन्हें चुपके से रख दो, यदि तुम अपने प्राण बचाना चाहते हो तो। एक एक वस्त्र लेकर सब रथ से बाहर हो जाओ नहीं हम सबको मार देंगे।

अब रानी को सन्तोष हुआ। उसने सोचा—ये, युधाजित के सैनिक नहीं हैं। धन लोभी दस्यु हैं। मेरा सर्वस्व चाहें ये लूट लें किन्तु मेरे बच्चे के प्राणों को छोड़ दें।" यह सोच कर वह जो वस्त्र पहिने थी उन्हें ही पहिने दासी के कंधे पर हाथ रख कर रथ के नीचे उतर आई। उसके अंग पर एक भी आभूषण नहीं थे। डाकू रथ को तथा भूषणों को लेकर चलते बने।

रानी ने दो दिन से कुछ खाया नहीं था। कुमार भी भूखा था। चलने का उसे अभ्यास नहीं था सर्वप्रथम राजमहल के

बाहर निकली थी। निकलते ही विपत्ति के ऊपर विपत्ति आने लगी। किन्तु जो विपत्ति देता है, वह विपत्ति के सहने की शक्ति भी देता है। रानी बड़े कष्ट से गंगा तट पर आई। जैसे तैसे नौका से गंगा जी को पार किया, कुछ विश्राम करके गङ्गा जल पान करके जिस किसी प्रकार चलते चलते चित्रकूट के समीप भगवान् भरद्वाज जी के आश्रम पर पहुँची। भरद्वाज मुनि का एक आश्रम प्रयागराज में था एक चित्रकूट में। चित्रकूट वाले आश्रम में ही महारानी पहुँची। उन दिनों मुनिवर अपने सहस्रों शिष्यों के सहित आश्रम में ही विद्यमान थे।

मुनि आश्रम में आकर रानी के प्राण में प्राण आये। वहाँ आकर उसका सभी भय दूर हो गया। अपने को वहाँ उसने सुरक्षित समझा। गोद में बच्चे को लिये हुए वह मुनि के समीप पहुँची। उसका मुख कुम्हिलाया हुआ था। बच्चे को मुनि के चरणों पर डालकर उसने भी महामुनि के पैर पकड़े और अश्रु बहाती हुई नीचा सिर करके एक ओर खड़ी हो गयी। फूल से सुकुमार राजकुमार को अपने चरणों में पड़ा देखकर तथा राज-रानी को सम्मुख अश्रु बहाते देखकर मुनि का नवनीत के समान कोमल हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने अत्यन्त ही स्नेह से बड़े कोमल स्वर में पूछा—"पुत्री ! तुम कौन हो, किसी की पुत्री हो, कौन तुम्हारे पति हैं, तुम देवी हो या मानुषी। किस दुःख के कारण तुम इतनी दुखित हो रही हो। अपने दुख का कारण मुझे बताओ।"

मुनि के ऐसे स्नेह युक्त वचन सुनकर भी महारानी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला वह अश्रु बहाती हुई नीचा सिर किये चुपचाप खड़ी रही।

तब मन्त्री विदल्ल ने कहा—"भगवन् ! ये अयोध्याधिप

महाराज ध्रुवसन्धि की महारानी हैं। महाराज आखेट के समय एक सिंह द्वारा मारे गये। इनकी सौति के पिता ने आकर इनके पिता को समर में मार दिया। वे अपने दौहित्र को राज देना चाहते हैं, बड़ा होने से राज्य पर कुमार सुदर्शन का स्वत्व है, अतः वे इस कुमार की भी हत्या करना चाहते हैं। इसीलिये ये कुमार को लेकर आ रही थीं। मार्ग में दस्युओं ने इनका सम्पूर्ण धन तथा रथ लूट लिया। अब ये सर्वथा असमर्थ होकर आपके चरणों में उपस्थित हुई हैं। आप से ये अभय दान तथा शरण पाने की इच्छुक हैं।"

यह सुनकर मुनि के हृदय में अत्यन्त ही दया उमड़ पड़ी। उन्होंने रानी को धैर्य बँधाते हुए कहा—बेटी! रोओ मत धैर्य धारण करो। सदा किसी के एक से दिन नहीं रहते। दुख सुख के दिन आते जाते रहते हैं। यहाँ तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं तुम यह समझो मैं अपने पिता के ही घर में आ गयी। तुम आनन्दपूर्वक यहाँ रहकर अपने विपत्ति के दिनों को बिताओ। इस बच्चे का प्रेमपूर्वक लालन पालन करो। तुम्हारा यह शुभ लक्षणवाला पुत्र एक दिन अवश्य राजा होगा। तुम पुनः राजमाता के पद पर आसीन होगी। "देखो, सामने जो ऋषिमुनि पत्नियों की कुटिया हैं, वहीं तुम अपनी धाय के साथ रहो इस बच्चे की सावधानी से रक्षा करो। कल्याणकारी भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

यह कहकर मुनि ने अपने एक शिष्य को इनके ठहरने आदि का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी। मुनि के चरणों में पुनः प्रणाम करके बच्चा और धाय के साथ महारानी मुनिशिष्य के पीछे पीछे चलीं। मुनि के बतायी हुई कुटी में महारानी अपने पुत्र और दासी के साथ सुखपूर्वक रहने लगीं और समीप ही की एक कुटी में मंत्री विहल भी ठहर गये।

इधर जब युधाजित ने आकर अपनी पुत्री से पूछा—मनोरमा कहाँ है, उसके पुत्र को मार कर मैं अपने दौहित्र शत्रुजित् के राज्य को निष्कण्टक कर देना चाहता हूँ।"

इस पर लीलावती ने सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया। तब युधाजित् ने सोचा—"अच्छा ही हुआ, जो स्वतः ही राज्य का कंटक निकल गया। अब मैं शत्रुजित् को राज्य सिंहासन दे दूँ।" यह सोचकर उसने पुरोहित तथा मन्त्रियों की सम्मति से शुभ मुहूर्त में अत्यन्त धूमधाम के साथ अपने दौहित्र का राज्याभिषेक कर दिया और सम्पूर्ण राज्य का प्रबन्ध मंत्रियों को सौंपकर सबसे विदा लेकर अपनी राजधानी के लिये चल दिया।

वह शृङ्गवेरपुर होकर जा रहा था वहीं मार्ग में उसने सुना कि मनोरमा तो अपने पुत्र सुदर्शन को लिये हुए चित्रकूट में भरद्वाज मुनि के आश्रम में निवास कर रही है, तब तो उसने शृगवेरपुर के निपादराज दुर्दर्श को बुलाया और कहा—"मुझे भरद्वाज मुनि के चित्रकूट वाले आश्रम में ले चलो। वहाँ मैं अपने शत्रु सुदर्शन को मारना चाहता हूँ।"

राजा कीआज्ञा पाकर निपाद राज दुर्दर्श उसे पर्वतों से घिरे भगवान् भरद्वाज जी के आश्रम चित्रकूट में ले गया। मुनि के उस ब्राह्मी श्री से सम्पन्न बड़े भारी आश्रम को देखकर राजा को परम विस्मय हुआ। वहाँ कहीं हवन हो रहा था, कहीं वेदों का घोष हो रहा था। कहीं तपस्वी तप कर रहे थे। राजा की सेना ने मुनि के आश्रम को चारों ओर से घेर लिया।

महारानी मनोरमा तो सदा चिन्तित ही बनी रहती थीं उसे क्षण क्षण में युधाजित् के आने की आशंका लगी रहती थी। किसी ने जब उससे आकर कहा कि युधाजित् सेना सहित यहाँ आ पहुँचा है तब तो वह अत्यन्त भयभीता मृगी की भाँति भार्वा,

विपत्ति के स्मरण से अत्यंत कातर होकर बच्चों को लिये हुये मुनि के समीप पहुँची और प्रणाम करके बोली—"प्रभो! वह मेरे पुत्र के प्राणों का प्यासा आततायी युधाजित् यहाँ आ पहुँचा है, वह यहाँ से मुझे पुत्र सहित पकड़ ले जायगा, पुत्र को तो मार देगा और मेरी दुर्दशा करेगा। भगवन्! यह राजमद बड़ा ही भयंकर होता है, इस मद से मत्त हुए महीपति न जाने कितने क्रूर से क्रूर कर्म कर डालते हैं। ये राजा विजय के मद में भरकर विपत्ति में फँसी अबलाओं पर असहनीय अत्याचार करते हैं। हिरण्यकशिपु की गर्भवती पत्नी इन्द्र पकड़ कर ले गया। पंचवटी में मुनियों का जीवन बिताने वाली सीताजी को उनके पति के परोक्ष में रावण हर कर ले गया। धौम्य के आश्रम में अपने विपत्ति के दिनों को बिताती हुई द्रौपदी को मुनियों के देखते देखते जयद्रथ उठाकर ले गया। भगवन्! मैं अनाथ हूँ, दीना हूँ, कृपाणा हूँ, अभागिनी हूँ, विपत्तियों से संत्रस्ता हूँ, पिता परलोकवासी हो गये। पति मुझे सदा के लिये छोड़कर स्वर्ग सिधार गये। राज्य पर शत्रुओं ने अधिकार कर लिया। जिस किसी प्रकार यहाँ आपके चरणों में आयी थी, सो यहाँ भी मेरे पुत्र के प्राणों का घातक आ पहुँचा। अब मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ, मुनि तो अस्त्रशस्त्र से रहित होकर क्रोध को त्याग कर शान्ति के साथ तप करते रहते हैं। क्षमा ही उनका शस्त्र है, वे इन अस्त्र शस्त्रधारी इतने सैनिकों के सम्मुख कर ही क्या सकेंगे?" प्रभो! मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। मैं सुख भी नहीं चाहती। मैं तो सम्पूर्ण जीवन भर भगवती जानकी की भाँति आपके उच्छिष्ट नीवार धान्य को खाकर आपके जूठे बर्तनों को मलती हुई, झाड़ू बुहारू देती हुई यहाँ ही रही आऊँगी। सुदर्शन भी आपके चरणों में रहकर मुनि जीवन बितावेगा। आप मेरे पुत्र की जैसे हो तैसे रक्षा करें।"

भरद्वाज मुनि ने कहा—"पुत्रि ! तुम तनिक भी चिन्ता मत करो सदा मेरे प्राण रहते तुम्हारे पुत्र का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं अभी युधाजित् को यहां से जाने को कहता हूँ।"

यह कहकर मुनि स्वयं ही राजा के समीप गये और जाकर बोले—"राजन् ! आपका स्वागत है आप मेरे अतिथि हैं, किन्तु आपने यह सदाचार का उल्लंघन कैसे किया ?"

राजा ने पूछा—"सदाचार का उल्लंघन कैसा ?"

मुनि बोले—"राजा लोग ऋषि आश्रमों में निरस्त्र होकर नंगे पैरों आते हैं सेना को दूर छोड़कर आते हैं आपके सैनिकों ने आश्रम को घेर क्यों लिया है ?"

राजा ने कहा—"भगवन् ! आपके आश्रम में मेरा शत्रु छिपा है उसे आप मुझे दे देना। मनोरमा को पुत्र के सहित लेकर मैं चुपचाप चला जाऊँगा।"

मुनि ने कहा—"राजन् ! मनोरमा मेरी शरण में आयी है। आर्य लोग शरणागत का त्याग शरीर में प्राण रहते नहीं करते। मनोरमा नहीं जायगी।"

अधिकार और रोष के स्वर में युधाजित् ने कहा—मुनिवर ! अपनी हठ छोड़ दीजिये। सीधी तरह मेरे शत्रु को सौंप दीजिये, यदि आप न मानेंगे तो मुझे फिर बल प्रयोग करना ही पड़ेगा।"

मुनि का मुख मंडल कुछ रक्त वर्ण का हो गया। उनके नेत्रों में लाल डोरे से दिखाई देने लगे। वे दृढ़ता के स्वर में बोले—"राजन् ! बहुत बकवाद करने की आवश्यकता नहीं। मैंने एक बार कह दिया मैं मनोरमा को नहीं दूँगा। तुममें शक्ति हो सामर्थ्य हो, बल सेना का घमंड हो तो ले जाइये बलपूर्वक हो। आपका बल भी आज देख लें।"

यह कहकर मुनि तुरंत अपनी कुटी में लौट गये और मनोरमा से जाकर बोले—"बेटी! तुम अपनी कुटी में जाओ। तुम्हारा कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। तुम स्वच्छन्द आश्रम में रहो।"

मुनि के वचनों से राजा को क्रोध तो बहुत आया, किन्तु सहसा उसने कोई कार्य करना उचित नहीं समझा। उसने अपने मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा की। सबको सुनाकर बोला—"मुनि लोग तपस्या करने वाले हैं, सेना के साथ कैसे लड़ाई करेंगे। सुदर्शन को जीवित छोड़ना उचित नहीं।"

इस पर जो सबसे वृद्ध मंत्री थे, वे बोले—"राजन! ऐसा साहस कभी मत करना। इन तपस्वियों से कोई लड़कर जीत नहीं सकता। राजा विश्वामित्र का सहस्रबाहु और उसके पुत्रों का उदाहरण संसार विदित है। भलाई इसी में है कि आप अभी इसी क्षण चुपचाप यहाँ से चल दें, नहीं मुनि के कोपानल में आपका सर्वस्व नाश हो जायगा।"

बात राजा की बुद्धि में बैठ गयी। वह अस्त्र शस्त्र त्याग कर मुनि की कुटी में गया। उनके चरणों में प्रणाम कर उनसे आज्ञा लेकर अपने नगर में लौट गया। बीच बीच में अपने दौहित्र की कल्याण कामना से स्वयं आकर अपने मंत्रियों को भेजकर अयोध्या के राज्य को देखता रहा। इधर मुनि के आश्रम में रह कर सुदर्शन स्वच्छन्दता के साथ माता द्वारा पालित होकर तथा मुनियों द्वारा लालित होकर बढ़ने लगा।

एक दिन मंत्री विदल्ल आ रहे थे, एक मुनिपुत्र ने कहा "यह क्लीव है।"

सुदर्शन ने सुना उसने 'व' नहीं सुना। क्ली पर अनुस्वार लगाकर क्लीं 'इस बीज मंत्र को ही स्वयं जपने लगा। किसी ने उसे

दीक्षा नहीं दी । विधिवत कर्म नहीं कराया । स्वतः ही देवी की कृपा से वह निरन्तर "क्लीं क्लीं क्लीं इस मंत्र का जाप करने लग गया ।

पूर्व जन्म के संस्कार वश दैव योग से स्वयं ही उसका "क्लीं" इस काम बीज में अनुराग बढ़ गया। यद्यपि वह इस मंत्र का ऋषि, छन्द, ध्यान, अंगन्यास, करन्यास तथा विनियोग कुछ भी नहीं जानता था । स्वभाव से ही उसकी इस बीज मंत्र में आसक्ति हो गयी। सोते जागते उठते-बैठते वह मन से इसी का जप करता रहता था। जप में वह इतना तल्लीन हो जाता था, कि बाह्य जगत् की सुधि-बुधि भूल जाता था। जब उसकी ५ ही वर्ष की अवस्था थी तभी से मानसिक जप करने लगा था।

११ वर्ष की अवस्था में महर्षि भरद्वाज ने उसका उपनयन संस्कार कराया। उसे विधिवत् धनुर्वेद तथा राजनीति की शिक्षा दी। निरन्तर मन्त्र जप से प्रभाव से एक बार से भगवती जगदम्बिका वैष्णवी देवी का साक्षात्कार हुआ। उसने देखा गरुड़ के ऊपर भगवती विराजमान हैं, वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, रक्त पुष्पों की मालायें पहिनी हैं उनके सभी अंगों में सुन्दर आभूषण शोभा दे रहे हैं। वे अत्यंत स्नेह दृष्टि से दयार्द्र होकर सुदर्शन की ओर निहार रही हैं और कृपा की दृष्टि सी कर रही हैं। देवी के दर्शनों से कुमार का रोम-रोम खिल उठा। उसने जगन्माता को साष्टाङ्ग प्रणाम किया, इतने में ही देवी अन्तर्हित हो गयीं। अब तो उसे मन्त्र जाप में और भी अधिक अनुराग हुआ। देवी की वह मनमोहिनी मूर्ति उसके अन्तःकरण में बस गयी। देवी की कृपा से उसे धनुष, बाण, खड्ग, तूणीर तथा अन्यान्य अस्त्र-शस्त्र भी प्राप्त हो गये। अस्त्र-शस्त्रों को बाँधकर वह जब वन को निकलता तो ऐसा प्रतीत होता मानों सशरीर

कामदेव धनुष बाण धारण किये त्रैलोक्य विजय के निमित्त प्रस्थान कर रहा है। उसके रूप, सौंदर्य, सदाचार, शील, सत्य-व्यवहार तथा शूर वीरता की सर्वत्र ख्याति होगयी।

उपासना से इष्ट में विश्वास होता है, इष्ट विश्वास से निश्चिन्तता, निर्भरता, प्रसन्नता निर्भयता तथा निर्भीकता स्वतः आ जाती है। जिसे अपने इष्ट पर विश्वास है, वह कभी किसी के सम्मुख दीन नहीं होता। कभी चिन्ता नहीं करता, घोर से घोर विपत्ति में घबड़ाता नहीं, किसी बात को असम्भव नहीं मानता। किसी से द्वेष नहीं करता, क्योंकि वह समझता है संसार में मेरे इष्ट का ही तो सब पसारा है, जो मेरे भाग्य का है उसे कोई कभी ले ही नहीं सकता। इसलिये कोई वस्तु उसे प्राप्त होती है, तो वह विस्मय नहीं करता नहीं प्राप्त होती है तो सोचता नहीं।

समीप में ही शृंगवरेपुर का निषाद राजा था। एक दिन वह महर्षि भरद्वाज के आश्रम पर आया। सुदर्शन को देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने एक चार घोड़ों से युक्त सुन्दर सुसज्जित रथ उसे उपहार में दिया। सुदर्शन ने उसे भी देवी का प्रसाद समझकर ग्रहणकर लिया और निषाद राज का वन्य फल फूलों से आतिथ्य किया। कुमार का आतिथ्य ग्रहण करके निषादराज अपनी राजधानी को लौट गया।

अब तो सुदर्शन का पूरा ठाठ बाट बन गया। जिस समय वह धनुष बाण धारण करके तथा आश्रम के समस्त मुनियों की चरण वन्दना करके रथ में बैठ कर वन को जाता तो सभी आश्रम वासी ऋषि उसकी शोभा देखते के देखते ही रह जाते। सभी कहते कुमार! तुम शीघ्र ही महाराज बनोगे? तुम समस्त पृथ्वी का पालन करोगे।"

माता ऋषियों के ऐसे आशीर्वादों को सुनकर मन ही मन

प्रसन्न होती और कहती—"ऋषियो ! यह अनाथ बालक है, न इसके पिता हैं,न कोई सगा सम्बन्धी तथा भाई बन्धु। आप लोगों का उच्छिष्ट खा-खाकर यह बड़ा हुआ है। आपके चरणों में पड़ा रहे आपकी सेवा करता रहे यही मेरे लिये पर्याप्त है।"

ऋषि अपने वचनों पर बल देते हुए दृढ़ता के साथ कहते—"माता जी ! आप हमारा विश्वास करें। हमारा वचन कभी असत्य नहीं होता। हम हँसी में भी असत्य भाषण नहीं करते। तुम्हारा पुत्र जगदम्बा की कृपा से अवश्य ही सिंहासनारूढ़ होगा"

महारानी यह सुनकर कृतज्ञता प्रकट करतीं और सोचतीं—कब मेरा ऐसा भाग्य होगा जो मैं अपने बच्चे को राजसिंहासन पर देखूंगी। कब बहू के सहित मैं इसे राजछत्र के नीचे छत्र चँवरों से युक्त निहारूँगी। कौन राजा मेरे इस अनाथ बच्चे को अपनी पुत्री देगा। हे भगवती ! कब मैं इसे पत्नी के सहित देख सकूँगी।"

माताओं की यही सबसे बड़ी लालसा होती है कि अपने पुत्र को बहू के सहित सुख पूर्वक देख लें। आश्रितों की इच्छा तो संसारी स्वामी भी पूर्ण करते हैं, जो जगदीश हैं चराचर के स्वामी हैं उनसे तो किसी के मन की बात छिपी नहीं है। सुदर्शन की माँ के हृदय में जहाँ पुत्रवधू की चिन्ता हुई तभी जगदम्बा ने भी उसका प्रबन्ध कर दिया। भगवती तो अपने भक्तों की सभी भावनाओं को पूर्ण कर देती है। जगदम्बा ने काशिराज की कन्या के हृदय में प्रेरणा की।

काशी के महाराजा के एक परम सुन्दरी, सम्पूर्ण सद्गुणों से युक्त रूप लावण्यवती शशिकला नाम की पुत्री थी। जब उसने शैशवावस्था को पार करके किशोरावस्था में पदार्पण किया तो राजा रानी को उसके विवाह की चिन्ता हुई। इच्छा न होने पर भी उसका भी मन ऊहा-पोह करने लगा, अपने भावीपति के

काल्पनिक चित्र उसके हृदय पटल पर अपने आप बनने लगे। उसने कई बार बाहर से आये बन्दियों, अतिथियों तथा ब्राह्मणों के मुख से उसने सुदर्शन के रूप, यौवन, सौंदर्य तथा सद्गुणों की बड़ी प्रशंसा सुनी। बारबार सुनने से उसकी सुदर्शन में आन्तरिक आसक्ति हो गयी। वह सोचने लगी। राज्य से भ्रष्ट, ऋषियों के आश्रम में पला हुआ वह कैसा सुन्दर सुकुमार कुमार होगा। एक बार उसकी छवि देखने को मिल जाती तो मेरा जीवन सफल हो जाता।' इस प्रकार वह सब समय सुदर्शन के ही सम्बन्ध में सोचती रहती। एक दिन स्वप्न में उसे भगवती जगदम्बा ने दर्शन दिये और कहा—बेटी! तुम सुदर्शन को अपना पति बनाना। वह मेरा परम भक्त है, उसे पति रूप में वरण करने पर मेरे आशीर्वाद से तेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे।"

प्रातः जब राजकुमारी उठी तो स्वप्न की बात स्मरण करके उसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उसका अङ्ग प्रत्यंग अत्यधिक प्रसन्नता से खिल रहा था। आनन्द उसके मुख मंडल से फूट-फूट कर निकल रहा था। उसकी माता ने उसके हर्ष का कारण बहुत पूछा। किन्तु मारे लज्जा के उसने कुछ भी नहीं बताया।

दूसरे दिन वह समीप के ही अपने राजकीय उपवन में सखियां सहित घूमने गयी। वहाँ चम्पा का वन था सखियों सहित वह पुष्प चयन करती हुई इधर से उधर घूम रही थी। उसी समय उसे ब्राह्मण आता हुआ दिखायी दिया। सरोवर के समीप आकर ब्राह्मण रुक गया उसने कमल पत्रों को हटाकर हाथ मुख धोया जलपान किया और स्वस्थ होकर सघन वृक्ष की छाया में लेट गया। घूमते फिरते राजकुमारी उसके समीप आगयी और अत्यंत ही विनीत भाव से प्रणाम करके बोली—"विप्रवर! आप इस समय कहाँ से आ रहे हैं?"

ब्राह्मण ने कहा—"बेटी! मैं इस समय महर्षि भरद्वाज के आश्रम से आ रहा हूँ।"

राजकुमारी का मुख मंडल भरद्वाज आश्रम का नाम सुनते ही खिल उठा। उसने अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता को छिपाने का प्रयत्न करते हुए फिर पूछा—"भगवन्! भरद्वाज आश्रम में क्या बात है, वहाँ की कोई अपूर्व बात हो तो बताइये।"

ब्राह्मण ने कहा—"राजकुमारी! अपूर्व बात क्या पूछती हो वैसे तो वह ऋषि आश्रम है एक से एक भारी तपस्वी मुनि वहाँ निवास करते हैं, किन्तु आजकल वहाँ एक सबसे अद्भुत वस्तु है अयोध्या के महाराज ध्रुवसन्धि का पुत्र सुदर्शन। सुदर्शन यथा नाम तथा गुण है। कुमारी! उसके रूप, यौवन, सौंदर्य सुकुमारता वीरता, उदारता, विनय और नम्रता आदि गुणों का बखान करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। इतना ही कहना पर्याप्त है, कि जिसने उस राजकुमार को नहीं देखा उसके नेत्र व्यर्थ हैं। सौंदर्य में वह मूर्तिमान् कामदेव है, वीरता में सजीव साक्षात् वीररस है और सद्गुणों में साकार सदाचार ही है। पुत्री! तू बुरा न माने तो एक बात कहूँ?"

राजकुमारी का हृदय धड़क रहा था उसने सम्पूर्ण शक्ति बटोर कर धैर्य के साथ कहा—"महाराज! आप जो कहना चाहें निर्भय होकर कहें—"

ब्राह्मण ने कहा—"बेटी! कहना यही है, कि वह तेरे ही अनुरूप वर है, ऐसा लगता है, कि विधाता ने पहिले से ही तुम दोनों की सोच समझकर जोड़ी बनायी है। तुम दोनों का विवाह हो जाय तो ऐसी शोभा हो जैसे सुवर्ण की अँगूठी में बहुमूल्य नग जड़ा हो।"

ब्राह्मण के वचन सुनकर राजकुमारी अत्यन्त लजा गयी। वह ब्राह्मण को प्रणाम करके दूर चली गयो उसकी दशा विचित्र हो गयो। उसकी सखी सहेलियों ने नाना प्रकार के उपचार किये बारम्बार उससे प्रश्न करने लगीं। तब खीजकर उसने कहा—बहिनो! इस पापी मनका पता नहीं लगता यह न जाने कहाँ लग जाय। देखो, जिस राजकुमार के मैंने दर्शन तक नहीं किये जिसका शील सदाचार जानती नहीं जो राज्यभ्रष्ट, श्री विहीना, कंदमूल फलाशी तथा वनवासी है उसी में मेरा मन फँस गया है। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ।"

राजकुमारी की सखी सहेली उसे उसी दशा में महलों में ले आयीं और भाँति २ के उपचारकरने लगीं। महारानीने जब अपनी कन्या की ऐसी दशा देखी तो उसने महाराज से कहा—"लड़की अब सयानी हो गयी है किसी योग्य राजकुमार को बुलाकर इसका अति शीघ्र विवाह कर देना चाहिये।"

राजा ने कहा—"हाँ, लड़की विवाह योग्य हो गयो है, मैं तो भूल ही गया था, तुमने अच्छी याद दिलायी। मैं चाहता हूँ अपनी शशिकला का स्वयंवर करूँ।"

रानी ने पूछा—"कैसा स्वयंवर करोगे ?"

राजा ने कहा—"स्वयंवर तीन प्रकार का होता है। (१) एक इच्छा स्वयंवर (२) पण स्वयंवर (३) तीसरा शौर्य स्वयंवर। इच्छा स्वयंवर तो उसे कहते हैं विवाह योग्य राजकुमारों को बुलाकर बिठा दिया जाय। कन्या जिस राजकुमार को वरण करले उसके साथ विवाह कर दिया जाय। पण स्वयंवर में कोई एक वस्तु रख दी जाती है उसे जो पूरी कर दे उसी के साथ विवाह हो। शौर्य स्वयंवर में जो राजा बलवान हो वही कन्या को अपहरण करके ले जाय। मैं अपनी कन्या का इच्छा स्वयंवर करूँगा। आज ही मैं समस्त विवाह योग्य मूर्धाभिषिक्त राज-

कुमारों को निमंत्रण भेजता हूँ, मेरी कन्या जिसे वरण कर लेगी उसी के साथ मैं इसका प्रसन्नता के साथ विवाह कर दूँगा।"

यह कह कर राजा ने शुभ मुहूर्त में एक तिथि निश्चित करके देश देशान्तरों के राजकुमारों के पास अपनी पुत्री के स्वयंवर का निमंत्रण भिजवा दिया। शशिकला के सौन्दर्य तथा रूप यौवन की सर्वत्र ख्याति हो चुकी थी, अतः उसे प्राप्त करने के निमित्त देश देशान्तरों से चतुरङ्गिणी सेना सहित राजा तथा राजकुमार आने लगे।

इधर जब शशिकला ने अपने स्वयंवर का समाचार सुना, तो उसने अपनी सहेली द्वारा माता के पास यह सन्देश भिजवा दिया—"माँ! मेरा स्वयंवर करना व्यर्थ है मैंने तो सुदर्शन को अपना पति मन से वरण कर लिया है, उसके अतिरिक्त मैं किसी की ओर देखूँगी भी नहीं।"

सखी ने सब समाचार महारानी से कहा। महारानी ने सब सुनकर महाराज काशिराज से कहा। तब हँसकर काशिराज ने कहा— शशिकला तो अभी नितान्त अबोध बची है। उसे अपने हिताहित का कुछ ज्ञान नहीं। सुदर्शन राज्य भ्रष्ट है, उसके पास न सेना है, न कोष है, न उसके कोई सहायक है। युधाजित ने उसके नाना को मार डाला। उसे भी मारने को फिरता है, वह अभी तक श्रृषियों का संकोच करता है, कहीं एकान्त में पावेगा, तो मार ही डालेगा। ऐसे अनाथके साथ. मेरी पुत्री विवाह क्यों करेगी। मैंने एक से एक सुन्दर, कुलीन, गुणवान, यशस्वी, तेजस्वी, शूरवीर तथा पराक्रमी राजकुमार बुलाये हैं उनमें से जिसे यह अपने अनुरूप समझे उसे अपना पति वरण कर ले।"

महारानी ने स्वयं जाकर महाराज की सभी बातें शशिकला

से जाकर कहीं और अत्यन्त ही स्नेह से पुचकारते हुए गोदी में बिठाकर उन्होंने कहा—"बेटी! तू हठ मत करे। अपने पिता को क्लेश मत पहुँचा। वे तेरे हित के ही लिये कह रहे हैं। राज्यभ्रष्ट अनाथ राजकुमार के लिये तू अपना आग्रह छोड़ दे। यदि तुझे अयोध्याधिप को ही वरण करना है, तो उसके भाई शत्रुजित् को वरण करले वे अवध का राजा भी हैं उसका नाना युधाजित् जो अवन्ती का राजा है उसका सहायक संरक्षक है। अथवा और तू जिसे चाहे अपना पति चुन ले।"

शशिकला ने दृढ़ता के स्वर में गंभीरता के साथ कहा—"माँ! मेरे निश्चय में शरीर रहते परिवर्तन कदापि नहीं हो सकता। क्षत्राणी एक ही बार पति वरण करती है। उन्होंने एक बार जिन्हें पति बना लिया, वह फिर इस लोक में और मरने पर परलोक में भी उसका जीवनसंगी होता है। स्त्रियों का सतीत्व और पुरुषों का सत्य यही भूषण है। जिस स्त्री में सतीत्व नहीं पशु की स्त्री के समान है और जिस पुरुष में सत्य के लिये दृढ़ता नहीं उसमें और पशु में क्या अन्तर है। सतीत्व और सत्य एक ही बात है। देखो शर्याति की पुत्री सुकन्या ने अत्यन्त बूढ़े परम क्रोधी च्यवन को अपना पति बनाया था पातिव्रतके प्रभाव सेपति को युवावस्था-पन्न बना लिया और मृत्यु हो जाने पर उसे यमराज से ले आयी। फिर यह मनुष्य कृत संयोग नहीं है। दैव कृत विधान है, मुझे भगवती ने स्वप्न में सुदर्शन को पति बनाने का आदेश दिया है, मैं जगदम्बा की बात कैसे टाल सकती हूँ।"

अपनी पुत्री का ऐसा दृढ़ निश्चय सुनकर रानी ने सभी वृत्तान्त राजा से कहा। राजा ने सोचा—अच्छा, जो होना होगा वह होकर ही रहेगा। मैं सुदर्शन को स्वयंवर में बुलाऊँगा ही नहीं फिर वह विवश होकर किसी रूपवान कुलीन राजकुमार के

कंठ में जयमाला डाल हो देगी।" यही सोचकर उन्होंने फिर शशिकला से कुछ भी नहीं कहा।

इधर शशिकला भी समझ गयी सुदर्शन को पिता स्वयंवर में नहीं बुलावेंगे। इसलिये उसने चुपके से एक अत्यन्त विश्वासपात्र योग्य वृद्ध ब्राह्मण को बुलाया और उसे प्रणाम करके बोली—महाराज! आप अभी भरद्वाजाश्रम में जायँ, वहाँ एक सुदर्शन नाम का राजकुमार रहता है, उससे आप स्पष्ट कहें, कि भगवती के आदेश से मैंने आपको अपना मन से पति बना लिया है मेरे पिता मेरा स्वयंवर कर रहे हैं। अतः आप तुरन्त जैसे हो तैसे यहाँ चले आओ। यदि आप न आओगे तो मैं विष खाकर मर जाऊँगी या अग्नि में कूद पड़ूँगी। आपके अतिरिक्त मैं किसी की ओर नेत्र उठाकर भी न देखूँगी। यदि तुम कहो—मेरे पास सेना, बल, धन, कोष कुछ भी नहीं है तो संसार में दैव बल-इष्ट बल सबसे बड़ा बल है, जिस भगवती जगदम्बा देवी ने मुझे स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया है, वह हम दोनों की सभी प्रकार से रक्षा करेगी। अतः आप देवी पर भरोसा करके किसी भी बात की चिन्ता न करके चले आओ। स्वयंवर के पश्चात् आये तो मुझे जीवित न पाओगे।"

इस प्रकार सन्देश देकर, पत्र लिखकर ब्राह्मण की पूजा की दक्षिणा दी और उसे तुरन्त चित्रकूट भेज दिया। ब्राह्मण दिन रात्रि चलकर स्वल्प काल में ही भरद्वाज आश्रम में पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने राजपुत्री का सम्पूर्ण सन्देश ज्यों का त्यों सुदर्शन को सुना दिया। सब कुछ सुनकर कुमार मुनियों से घिरे भागवान् भरद्वाज के समीप गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर काशी जाने की अनुमति माँगी। ऋषियों को इससे बड़ा हर्ष हुआ। सब ने एक स्वर से कहा—"अवश्य जाना चाहिये। क्षत्रिय को ऐसे अवसर से चूकना न चाहिये।"

सुदर्शन तो यह चाहता ही था, सबकी सम्मति से उसे और भी अधिक उत्साह मिला। वह तुरन्त रथ तैयार कराके काशी के लिये चल पड़ा। जब उसकी माता ने सब समाचार सुना तो पुत्र स्नेह के कारण शत्रुओं का स्मरण करके भय से विह्वल हुई, पुत्र के समीप आयी और रोते-रोते बोली—"बेटा! तू ऐसा साहस मत करे। तू अकेला है, तेरे साथ न कोई बन्धु बान्धव है, न सेना मंत्री। तू वहाँ एकाकी जाकर इतने राजाओं में क्या करेगा। वहाँ अपने दौहित्र को लिये हुए युधाजित् भी आवेगा, वह तेरे अनिष्ट करने पर तुला है। यहाँ ऋषि मुनि तेरी रक्षा करते हैं, वहाँ तेरी कौन रक्षा करेगा। बेटा! मैं दुखिया हूँ, अनाथ हूँ, तू ही एकमात्र मेरे पुत्र है, तू जान बूझकर शत्रुओं के बीच मत जा।" यह कह कर रानी फूट फूट कर रोने लगी।

सुदर्शन ने अपनी रोती हुई माँ के समीप जाकर कहा—माँ! तुम क्षत्राणी हो, तुम्हें इस प्रकार रोना शोभा नहीं देता। क्षत्राणी तो अपने पुत्रों को टीका लगाकर हँसते हँसते रण में भेजती थी। तुम कोई चिन्ता मत करो। मेरी सहायिका भगवती जगदम्बा हैं। जगन्माता की कृपा से मेरा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं तो भगवती की प्रेरणा से जा रहा हूँ। क्या सर्वान्तर्यामिनी जगज्जननी वहाँ मेरी रक्षा न करेगी।"

माता ने देखा सुदर्शन रुकेगा नहीं, उसने जाने का हठ, निश्चय कर लिया है। मुनियों की भी सम्पत्ति है तो उसने रोते रोते कहा—बेटा! यदि तैंने काशी जानेका निश्चय ही कर लिया है, तो भगवती जगदीश्वरी तेरी सर्वभाव से रक्षा करें तेरे ऊपर कृपा की वृष्टि करें, मंगलमयी माँ तेरा सर्वथा मंगल करें। तू रुकेगा तो नहीं, किन्तु एक मेरी बात मान ले। मैं तेरे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। तू यदि जाना ही चाहता है तो मुझे भी साथ लेले।"

सुदर्शन ने देखा, माँ स्नेह के कारण अत्यंत कातरा होगई है, वह मानेगी नहीं, अतः उसने कहा—अच्छी बात है तुम भी मेरे साथ चलो।" यह कहकर उसने सैरन्ध्री के सहित माँ को भी रथ में बिठा लिया और ब्राह्मण के साथ तुरंत काशीपुर में अकेला ही पहुँच गया।

काशीराज जब सुना बिना निमंत्रण के ही सुदर्शन स्वयंबर में आया है, तो उन्होंने इसका यथोचित आदर सत्कार किया। ठहरने को सुन्दर स्थान किया। दास दासी सेवा के लिये दिये। भोजनादिक समुचित व्यवस्था कर दी। अब तो राजाओं में काना फूंसी आरंभ हुई। कोई कहने लगा लड़के का साहस कितना बड़ा है। एकाकी ही इतने राजाओ के बीच चला आया। कोई कोई कहने लगे भाइयो! अब अपनी चतुरंगिणी सेनाओंको सजा कर चुप चाप लौट चलो। राजकुमारी तो इसी दर्शनीय महाबाहु सुदर्शन को वरण करेगी।

युधाजित भी अपने दौहित्र शत्रुजित को साथलेकर आया था। उसने क्रोध में भर कर कहा, राज भ्रष्ट सुदर्शन को राजकुमारी के स्वयम्वर में आने का क्या अधिकार है, उसे किसने निमंत्रित किया। यहाँ आना ही उसकी सबसे बड़ी धृष्टता है मैं अभी उसका वध करूगा। आज वह यहाँ से जीवित नहीं जा सकता।"

इस पर कुछ दुष्ट स्वभाव के राजाओं मे उसकी हाँ में हाँ मिलायी। वहीं पर धर्मात्मा केरल के राजा बैठे थे। उन्होंने नम्रता के साथ कहा—" राजन्, आप राजाओं की सभा में ऐसी अन्याय पूर्ण बात क्यों कर रहे हैं। यह स्वम्वर न तो पण स्वयंवर है न शौर्य स्वयंवर आप इसमें किसी पर अस्त्र शस्त्र कैसे उठा सकते हैं, यह तो इच्छा स्वयंवर है। राजकुमारी स्वतंत्र है, वह चाहे

जिसके कंठ में माला पहिना सकती है, जिसे भी वह वरण कर लेगी वही उसका पति हो जायगा ; रही अनिमंत्रित आने की बात। सो, स्वयंवरों में यह कोई नियम नहीं है कि निमंत्रित ही आवे। कोई भी क्षत्रिय पुत्र स्वयंवर में आने को स्वतंत्र है। वह राजपुत्र है। राज्य का अधिकारी है। आपने अन्याय पूर्वक उसका राज्य अपहरण करके अपने दौहित्र को राजा बनाया है। वहाँ जो अपने अन्याय किया सो किया। यहाँ राज्यपरिषद् में आप अन्याय नहीं कर सकते। आप का भी तो दौहित्र युवक है सुन्दर है राज्यसिंहासनासीन है। कुमारी चाहे तो उसे वरण कर सकती है। इसमें विवाह की क्या बात है।"

इस बातपर युधाजितने कहा—"राजन् ! इतने बड़े बड़े राजाओं को छोड़ कर कन्या एक राज्यभ्रष्ट वनवासी दीन कृपण निर्धन को अपना वर बनावे तो इसमें हम सब राजाओं का घोर अपमान है, सिंह के भाग को गीदड़ नहीं ले जा सकता। मैं अपनी शक्ति भर ऐसा अन्याय न होने दूंगा।"

इस पर राजाओं ने काशीराज महाराज सुबाहु को राजाओं की मंडली में बुलाया। सभी राजाओं की परिषद बैठी। राजाओं ने सुबाहु से पूछा—"राजन् । आप अपनी कन्या किसे देना चाहते हैं ?

हाथ जोड़ कर दीनता के साथ काशीराज ने कहा—राजाओं ! मेरी पुत्री इस हठ पर अड़ी हुई है कि मैं सुदर्शन को ही अपना पति बनाऊँगी। मैंने उसे बहुत कुछ समझाया किन्तु वह मानती नहीं। अब आप जैसी आज्ञा दें। मैं तो आप सबका दास हूँ।"

यह सुनकर राज परिषद की ओर से सुदर्शन बुलाया गया कलिंगराजने उससे पूछा—कुमार ! तुम किस लिये यहाँ आयेहो ? किसके निमन्त्रणसे आयेहो ? तुम्हारे साथ न मंत्री है, न सेना है

न सहायक हैं ? ऐसा दुस्साहस तुमने किस आधार पर किया कन्याके लिये कलह होजाय तो कौन तुम्हारा सहायक होगा ?"

सुदर्शनने निर्भय होकर कहा—मैं देवी भगवती की आज्ञासे यहाँ आया हूँ मुझे सेना, कोष धन का बल नहीं। इष्ट ही मेरा बल है, जगदम्बा ही मेरी सहायिका है माँ के कारण मैं किसी से भय नहीं खाता। जिसकी चार हाथोंवाली रक्षिका है उसका दो हाथवाले बिगाड़ ही क्या सकते हैं ?"

उसके ऐसे उत्तरसे साधु स्वभाव के नृपति गण प्रसन्न हुए। दुष्ट स्वभाव वाले जलसुनकर भस्म से होगये। नियत समम पर सभी राजा राजकुमार स्वयंवर मंडपमें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर कन्याको पाने की इच्छा से अपने अपने सिंहासनों पर जा बैठे। सुदर्शन भी सरलता पूर्वक राज्य के बताये हुए सिंहासन पर जाकर बैठ गया। मनसे वह भगवती जगदम्बाका ध्यान कर रहा था।

तब काशीराज सुबाहु ने अन्तः पुरमें जाकर देखा दासियों ने शशिकलाको वस्त्रालंकारों से भली भाँति सजा रखा है। उसके समीप है दुर्वा में पिरोयी हुई मधु पुष्पों की माला रखी है। यह देखकर बड़े ही स्नेहसे राजाने पुत्रीके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी ! स्वयंवर मंडप में चलो। वहाँ सभी राजा राजकुमार तुम्हारी ही प्रतीक्षाकर रहे हैं। तुम इनमें से जिसे चाहो उसे वरण करलो। जिसके कंठमें तुम जयमाला डाल दोगी वही तुम्हारा पति होगा।"

यह सुनकर शशिकलाने कहा—"पिताजी ! मैं वहाँ स्वयंवर सभा में कदापि नहीं जाऊँगी। मुझे अब किसी अन्यको वरण नहीं करना है, मुझे तो जिसे वरण करना था उसे पहिले ही वरण कर चुकी।"

राजा ने कहा—"वहाँ सुदर्शन भी तो है तू जा कर उसी के कंठमें माला डाल दे।"

कुमारी ने कहा—नहीं पिताजी! वहाँ सबकाभी राजा बैठे हैं वे मेरे शरीर को बुरी भावना से देखेंगे। पतिव्रता अपनेपति को छोड़कर किसीको देखना नहीं चाहती। कोई उसे दूषित भावना से देखे यह उसके लिये असह्य है। इसीलिये आप मुझे सामान्य स्त्री की भाँति सबके सम्मुख न घुमावें। सुदर्शन को बुलाकर शास्त्रीय विधिसे मेरा कन्यादान करदें। मैं वहाँ वारांगनाओं की भाँति पति खोजने नहीं जाऊँगी।"

राजा यह सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़ बन गये। द्वार पर सहस्रों राजा चतुरांगिणी सेना सहित बैठे हैं। मेरे पास न इतनी सेना है न कोई सहायक। सुदर्शन एकाकी है। हे भगवान्! अब क्या होगा, कैसे मेरी लज्जा रहेगी। यही सब सोचते सोचते राजा अत्यंत भयभीत हुए उदास मनसे राजाओं के सम्मुख गये और हाथ जोड़कर बोले—राजाओ! मुझसे बड़ा अपराध हो गया। मैंने आप सबको इतना कष्ट दिया। मेरी पुत्री यहाँ आना स्वीकार नहीं करती। मैंने भाँति भाँति से उसे समझाया। उसकी माँ ने भी उसे फुसलाया ऊँचा नीचा जताया, किन्तु वह हठ पकड़े हुए है, कि मैंने जिसे मनसे पति वरण कर लिया है, उसके अतिरिक्त दूसरे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकती। लड़की सयानी है, वह किसी प्रकार मानती ही नहीं। अतः मैं भूमि में सिर रख करके आपके चरणों में लोटकर आपसे क्षमा प्रार्थना करता हूँ। मेरी विवशता को देखकर आप क्रुद्ध न हों अपने अपने घर लौट जायँ। मैं असंख्य धनरत्नों से आप सबकी पूजा करूँगा।"

राजा के ऐसे दीनता पूर्ण वचन सुनकर सभी रजा मौन रहे, किन्तु युधाजित से न रहा गया वह लाल लाल आँखें निकालकर

क्रोध में भरकर बोला—राजन्! तुम हम सबका अपमान कर रहे हो। एक भिखारी अकुलीन को कन्या देना चाहते हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरा दौहित्र काशिराज है इसके साथ कन्या का विवाह कर दो। नहीं अभी इस अन्याय का फल चखाता हूँ, पहिले तो मैं तुम्हें मारूँगा फिर सुदर्शन का वध करूँगा। मैं कहता हूँ मेरे रहते तुम सुदर्शन को किसी भी दशा में कन्या नहीं दे सकते। तुम अभी जाओ, जैसे हो तैसे कन्या को यहाँ लाओ। न मैं तुम्हें अभी मारकर कन्या को बलपूर्वक घसीट कर लाता हूँ।

युधाजित बड़ा वीर था। सेना भी उसके साथ यथेष्ट थी। कुछ राजा भी उसके अनुयायी तथा पक्षपाती थे। इससे काशीराज डर गये। वे पुनः अन्तःपुर में पहुँचे। उन्होंने अपनी रानी को शशिकला के पास भेजा जैसे हो तैसे उसे मनाकर लाओ।" रानी गयी, उसने सब प्रकार से राजकुमारी को समझाया, किन्तु वह किसी भी दशा में स्वयंवर सभा में जाने को उद्यत न हुई। तब राजा स्वयं उसके पास गये और बोले—"बेटी। मेरी लाज तेरे हाथ है।"

इस पर शशिकला ने कहा—"पिताजी! मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण कुछ आपका अनिष्ट हो। सभी राजा क्रुद्ध हैं न जाने क्या अनिष्ट कर डाले। आप एक काम करें। सुदर्शन को बुलाकर आप मुझे उसे सौंप दें। नगर से बाहर हम दोनों को कर दें। फिर हमारे भाग्य में जो होगा सो हो जायगा। भगवती चाहेंगी तो हमारी रक्षा करेंगी। नहीं हम दोनों एक साथ शत्रुओं द्वारा मारे जायँगे।"

अपनी पुत्री की ऐसी बात सुनकर राजा की आँखों में आंसू आ गये। वे बड़े ही स्नेह से बोले—"शशि बेटी! क्या मैंने इसी-

लिये तुझे इतने लाड़ प्यार से पाल पोस कर बड़ा किया है। मैं अपने शरीर में प्राण रहते न तो तेरी इच्छा के विरुद्ध काम करूँगा और न तुझे इस प्रकार अनाथ ही छोड़ूँगा। अब तू बता मैं क्या करूँ। सम्पूर्ण राजा क्रोध से उन्मत्त हुए बाहर तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, कहीं वे तेरा अपमान न कर दें। इसी की मुझे चिन्ता है। सुदर्शन के साथ विवाह करने में तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

यह सुनकर राजकुमारी बोली—"पिताजी! आप एक काम करें। इस समय तो इन राजाओं को किसी भी भांति फुसला कर अपने अपने डेरों पर भेज दें। कल के लिये बात टाल दें। जब ये सब चले जायँ तो रात्रि में चुपके से वेद की विधि के साथ सुदर्शन के संग मेरा विवाह कर दें। विवाह हो जाने के अनन्तर भी कोई विग्रह करेगा तो देखा जायगा। आप इस विषय में विशेष सोच विचार न करें।"

कुमारी की बात राजा के मन में बैठ गयी और वे तुरन्त स्वयंवर मंडप में गये। वहाँ जाकर हाथ जोड़ कर अत्यन्त दीन शब्दों में बोले—"राजाओ! मैं क्या करूँ, लाख समझाने बुझाने पर भी लड़की आज यहाँ आने को तत्पर नहीं। अतः आप सब मुझे अपना दास जानकर आज कृपा करें। कल जैसा भी कुछ होगा। मैं कुछ अवश्य उपाय करूँगा। एक दिन का अवसर मुझे और दिया जाय।"

राजा के दीन वचनों को सुनकर सभी ने यह बात मान ली। सभी अपने अपने डेरों पर चले गये। इधर जब रात्रि हुई तो राजा ने चुपके से सुदर्शन को बुलवाया। विवाह की सब तैयारियाँ तो पहिले से थीं ही। वेद के विधि से शशिकला का विवाह सुदर्शन के संग कर दिया। वर वधू को देखकर राजा को अत्यंत

ही प्रसन्नता हुई उनका हृदय भर आया। अश्रु बहाते हुए राजा ने कहा—"बेटा ! सुदर्शन ! अब मैं बूढ़ा हो चुका हूँ, मेरा समस्त राज्य अब तुम्हारा ही है ! तुम यहाँ सुख से राज करो मैं वन में जाकर तप करूँगा।"

सुदर्शन ने कहा—"पिताजी ! न्यायतः राज्य के अधिकारी शशिकला के भाई हैं, मैं इस प्रकार राज्य नहीं लूँगा। मैं तो केवल आपसे आशीर्वाद ही चाहता हूँ, मुझे तो भगवती जगदम्बा की कृपा चाहिये। आप मुझे अब भरद्वाज आश्रम में जाने की अनुमति दें।"

सुदर्शन के इन वचनों से राजा को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने सहस्रों हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, दास दासी, वस्त्र,आभूषण तथा धन दहेज में दिया। सुदर्शन की माता का भी राजा ने यथोचित सत्कार किया। विवाह के पश्चात् बाजे बजने लगे। राज महल में सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा।

विवाह के वाद्यों को सुनकर ही राजागण समझ गये, कि काशी राज ने हमें ठग लिया कन्या का विवाह उसने अवश्य ही सुदर्शन के संग कर दिया। अब तो राजाओं के क्रोध की सीमा न रही। कोई सुदर्शन के रक्त का प्यासा बन गया कोई काशि-राज को ही मारने की बात सोचने लगा।

प्रातःकाल होते ही महाराज सुबाहु अपने मंत्री सेनापति तथा सभासदों के सहित राजाओं के समीप गये और हाथ जोड़-कर बोले—"राजाओ ! आप प्रजापालक हैं, कृपा के सागर हैं मुझ पर भी कृपा करें मुझे अपनी प्राणों से भी प्यारी पुत्री का हठ स्वीकार करना पड़ा। उसका विवाह रात्रि में सुदर्शन के साथ हो गया। अब आप कृपा करके आज सभी भोजन के निमित्त मेरे घर पधारें। अपने चरणों की धूलि से मेरे महल को पावन बनावें।"

इस पर बहुत से चुप हो गये। बहुतों ने कहा—"राजन्! आप जो किया अच्छा ही किया, हम लोग अब अपने अपने नगरों को जायँगे।" युधाजित तो क्रोध के कारण पागल हो उठा। उसने कहा—"राजन्! आप अपने इस व्यवहार का शीघ्र ही फल पा जायंगे। इतने राजाओं का अपमान करके आप जीवित नहीं रह सकते। आपने हम सब राजाओं को घर बुलाकर तिरस्कार किया है।"

काशिराज ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया वे चुपचाप लौट कर अपने महलों में आगये। इधर युधाजित "हम सब का घोर अपमान हुआ है इसका बदला अवश्य लेना चाहिये" यह कह कर राजाओं को भड़काने लगा। इस पर सज्जन राजाओं ने कहा—"अरे भाई, काहे का अपमान। इच्छा स्वयंवरथा। राजकुमारी किसी एक को ही तो वरण करती। तब भी तो हम लौटते ही। हम लोग तो ऐसे ही कुतूहलवश चले आये थे,विवाह हो गया हमलोग जाते हैं, जिसे लड़ना भिड़ना हो लड़ता भिड़ता रहे।" यह कहकर बहुत से राजातो अपना डेरा तम्बू उखाड़कर चुपचाप वहाँ से चल दिया। कुछ दुष्ट राजा युधाजित् का पक्ष ले कर सुदर्शन से युद्ध करने और बलपूर्वक शशिकला को छीन-नेके लिये मार्गरोक कर नगर के बाहर खड़े हो गये। यह बात काशिरज को भी विदित हो गयी कि युधाजित युद्ध करने के लिये खड़ा है, वह शशिकलाको छीनने के लिये कृत संकल्प है। तब राजाने भी अपनी चतुरंगिणी सेना सजाने की आज्ञादेदी।

राजा की आज्ञापाते ही चतुरंगिणी सेना सज गयी। राजा स्वयं ही रण का वेप धारण करके सुदर्शन के आगे आगे चला। एक रथ में शशि कला के साथ सुदर्शन और उसकी माता बैठी थीं। चतुरंगिणी सेना के साथ सुदर्शन की सवारी नगर से

निकली। रण के बाजे बज रहे थे। वीर क्षत्रियों के हृदय युद्धका अवसर पाकर उछल रहे थे। घोड़े हिन हिना रहे थे हाथी चिग्घाड़ रहे थे। काशिराज की सेना संख्या में बहुत ही अल्प थी। इधर युधाजित के सहयोगियों की सेना असंख्य थी, फिर भी काशिराज के सैनिक प्राणों का पण लगाकर लड़ने लगे। इतने में ही सबने प्रत्यक्ष देखा सिंह पर सवार भगवती जगदम्बिका वह संग्राम में प्रकट हो गयी। भगवती को देखते ही युधाजित के सैनिक भागने लगे। इसपर युधाजित ने उन्हें रोका ललकारा। एक स्त्री को देखकर भागते हो। इसे भी रण में मार दो। इस पर कुछ लोग भगवती के ऊपर भी प्रहार करने दौड़े।

सुदर्शन शशिप्रभा और काशिराज देवी के दर्शन मात्र से ही प्रेम में विभोर हो गये। देवी ने क्षणमात्र में शत्रुसेना को परास्त कर दिया। युधाजित और उसके दौहित्र को मारकर गिरा दिया। इनके मरते ही सेनामें भगदड़ मच गयी। काशिराज की सेना विजय के मद मेंउन्मत्त सी होकर जय जय चिल्लाने लगी देवी का जयघोष करने लगी।

इसके अनन्तर काशिराज ने देवी के सम्मुख आकर ११ श्लोकों में उनकी स्तुति की। देवी जी का यह ११ श्लोकों का स्तोत्र परम दिव्य स्तोत्रराज है उसके एक एक शब्द ने देवी की महा-महिमा और प्रभाव का वर्णन है उसी स्तोत्र में राजा कहते हैं—

सत्संगतिः कथमहो न करोति कामम्,
प्रासंगिकापि विहिता खलु चित्त शुद्धिः
जामातुरस्य विहितेन समागमेन
प्राप्तं मयाऽद्भुतमिदं तव दर्शनं वै।
त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो

जातोऽस्मि देवि भुवनेश्वरि धन्यजन्य ।
बीजं न वे न भजनं किलवेद्मि मात—
र्ज्ञात स्तवाद्य महिमा प्रकटप्रभावः ॥

हे भगवति। देखो, सत्संगति का भी कैसा विचित्र प्रभाव है, वह सत्संगति भी कोई इच्छा से नहीं की गयी। अकस्मात् प्रसंग वश भी हो जाय वह भी चित्त की शुद्धि तो करती ही है। मुझे ही देखिये, इस मेरे जमाई के समागम के कारण देवताओं को भी दुर्लभ आपके दर्शन मुझे बिना प्रयत्न के ही प्राप्त हो गये। आपके दर्शन से आज मैं कृतकृत्य हो गया। मेरा जन्म सफल हो गया। हे जगन्माता मैं न तो आपका बीज ही जानता हूँ न मैंने आपका भजन ही किया आपने अपनी अहैतुकी कृपा से ही मुझे दर्शन दिये आज मैंने प्रत्यक्ष आपकी महिमा का प्रकट प्रभाव जान लिया।"

इस प्रकार राजा की स्तुति से प्रसन्न होकर देवी जी ने वर माँगने को कहा। तब राजा ने यही वर माँगा कि आप दुर्गा रूप में सदा मेरी पुरी काशी में निवास करें। देवी श्वसुर जमाई को यथोचित वरदान देकर अन्तर्हित हो गयी। सुदर्शन आकर अयोध्या के राजा हुए उन्होंने कालिका के नाम से देवी जी की स्थापना की और महाराज सुबाहु ने काशी में दुर्गा नाम से देवी जी की प्रतिष्ठा की जो अभी तक दोनों स्थानों में मानी पूजी जाती हैं।

इस कथा से यही अभिप्राय है, कि किसी भी प्रकार अपना एक इष्ट निर्णय हो जाय और उसमें विश्वास हो जाय। अपना ही विश्वास देवता में और मन्त्र में प्रकट होता है। जिसकी जैसी अपनी भावना होती है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है। अपने ही भीतर का दृढ़ विश्वास सिद्धि के रूप में सम्मुख आता

है। गुजरात में कोई एक महात्मा थे वे किसी को मन्त्रोपदेश नहीं देते थे। एक भक्त ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं इन्हीं से मंत्र लूँगा। कई बार प्रयत्न किया। एक बार वह गया महात्मा ने कहा —"चल हट" बस, भक्त जी ने इन्ही चार अक्षरों को गुरु मंत्र मान लिया। निरन्तर उसी का जप करने लगे इसी से वे बड़े ऊँचे सिद्ध हो गये।

कबीरदास जी और रामानन्द स्वामी की कथा तो बहुत पुरानी है, कि सीढ़ियों पर लेट गये। स्वामी जी का पैर पड़ा तो वे राम राम कहने लगे। उसी को जपकर कबीर जी कबीर बन गये। अभी थोड़े ही दिन की बात है काशी से कुछ दूर पर एक महात्मा रहते थे एक अपढ़ ब्राह्मण उनकी सेवा करता था। महात्मा वैसे किसी को दीक्षा आदि नहीं देते थे। सबसे राम राम जपने को कहते थे। एक दिन वह ब्राह्मण उनकी लँगोटी चुराकर भाग गया। कुछ बुरे भाव से नहीं श्रद्धा पूर्वक। विन्ध्याचल में आकर उसने इसी मंत्र का १२ वर्ष तक जप किया इसके पश्चात् उनकी ऐसी सिद्धि चेती। सैकड़ों कुएँ उनकी प्रेरणा से प्रयाग काशी के बीच में बनाये गये। बहुत से यज्ञयाग ब्राह्मणभोज उनकी प्रेरणा से हुए। उन्हें वाणी की सिद्धि प्राप्त हो गयी।

बीज का विस्तार मन्त्र है और मन्त्र का विस्तार स्तोत्र है, वेदों में जिसे सूक्त कहते हैं। जैसे ओंकार बीज है। गायत्री उसका विस्तार मंत्र है और गायत्री का भाष्य ही श्रीमद्भागवत् है। चारों वेद भी गायत्री माता के ही विस्तार हैं। स्तोत्रों में भी उतनी ही शक्ति है जितनी बीज तथा मंत्रों में है। बहुत से तो स्तोत्र ही मंत्र हैं। श्रीमद्भागवत के सभी श्लोक मंत्र हैं। फिर उनकी स्तुतियों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ?

स्तोत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो सकाम स्तोत्र एक निष्काम

संसार में चार ही प्रकार की मुख्यतया कामनाएँ होती हैं (१) रूप की कामना (२) धन तथा बल की कामना। (३) यश की कामना और (४) शत्रुनाश की कामना। इन्हीं कामनाओं की पूर्ति के लिये प्राणी सदा सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। तभी तो दुर्गा सप्तशती में देवी जी की बारम्बार प्रार्थना की गयी है "रूपं देहि जयं देहि यशोदेहि द्विषो जहि" सुदर्शन की भी भक्ति सकाम ही थी देवी जी की कृपा से उसे रूपवती स्त्री मिली, धन मिला बल मीला राज्य मिला, यश मिला विजय मिली और उसके शत्रुओं का नाश भी हुआ।

अपनी कामना पूर्ति के लिये संसार में सब क्षुद्र प्राणियों का आश्रय न लेकर भगवान् का आश्रय ले तो यह भी उत्तम हैं। भगवान् ने गीता में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इन चारों ही भक्तों को सुकृति बताया। निष्काम अथवा केवल प्रेम की कामना करने वाला तो सर्वोत्तम है ही। कैसे भी हो किसी भाव से हो भगवान् की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवत के स्तोत्र एक से एक बढ़ कर हैं, इन स्तोत्रों में सम्पूर्ण सिद्धान्त भर दिये हैं। बहुत से स्तोत्र ऐसे हैं, जो भिन्न भिन्न अवसरों पर पाठ करने से प्रत्यक्ष फल देते हैं। इन स्तोत्रों की विशद व्याख्या की जाय अथवा विस्तार से भाष्य किया जाय, तो एक ही श्लोक के ऊपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। जिस समय 'भागवती कथा' लिखी जा रही थी, उस समय ये स्तोत्र छोड़ दिये थे और स्थान स्थान पर यह आश्वासन दिलाया था कि "भागवती कथा" के अनन्तर इन सभी स्तोत्रों की एक साथ ही व्याख्या की जायगी। ये स्तोत्र भावुक भक्तों के बहुत ही काम के हैं। वैसे तो श्रीमद् भागवत का एक एक श्लोक मंत्र होने से सभी के लिये उपयोगी है, फिर भी जो स्तोत्र जिनके हृदय को अधिक

पकड़ सके, जो उन्हें अधिक हृदय स्पर्शी प्रतीत हो उसे वे कंठस्थ कर लें और एकान्त में बैठकर प्रेमपूर्ण हृदय से गद्गद वाणी से उसका नित्य नियम से पाठ करें। प्रयत्न ऐसा करें कि पाठ करते करते देह पुलकित हो जाय शरीर में रोमाञ्च हो जायँ, हृदय द्रवीभूत हो जाय पिघल जाय और नेत्रों से अश्रुओं की धारा बहने लगे। यही द्रवीभूत हृदय के बाह्य लक्षण हैं, भीतर से ऐसा प्रतीत हो मानो कोई हृदय को ऐंठ रहा है।

भगवान् तो भक्त की भावना के वशीभूत हैं, यह सम्पूर्ण विश्व भावना के ही ऊपर अवलम्बित है, सम्पूर्ण सम्बन्ध भाव के ही सहारे टिके हुए हैं, मंदिर में भावना हो तो देवता, न भावना हो तो पाषाण की मूर्ति। ये स्तोत्र भाव जगत की वस्तु हैं, इनमें शुष्क तर्क काम नहीं करती। इन स्तोत्रों की जैसे कुछ व्याख्या बन पड़ी, जैसी सुनी समझी वैसी अत्यंत संक्षेप में लिख दी। नित्य के पाठ से पाठकों के हृदयों में स्वयं ही स्फूर्ति होगी, अतः मेरी समस्त पाठक पाठिकाओं से प्रार्थना है, कि इस विषय को नीरस समझ कर छोड़ने इसके पढ़ने में अधिकाधिक समय लगावें। बार बार पढ़ें, एकान्त में पढ़ें सब के सम्मुख पढ़ें, जब अवसर हो तब पढ़ें नित्य पाठ करें। इससे भगवान् के चरण कमलों में भावना के अनुसार भक्ति होगी अनुराग बढ़ेगा, जो जीव का चरम लक्ष्य है अन्तिम पुरुषार्थ है, मानव तनु धारण करने का सर्वोत्कृष्ट फल है।

भूमिका कुछ अधिक बड़ी हो गयी अतः आज इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं, इस विषय के सिद्धान्त की बातें आगे खंडों में कही जायँगी। उन सर्वान्तर्यामी प्रभु के पाद पद्मों में प्रार्थना है, कि वे हमें अपने स्तोत्रों के समझने की, गाने की, पाठ

करने तथा सुनने की शक्ति प्रदान करें जिस से हम उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर सकें। वेद पुराणों के प्रसंगों से तो यही प्रतीत होता है कि स्तोत्र बहुत ही प्रिय है, जहाँ किसी के हृदय से स्तुति की नहीं तहाँ ही भगवान् भक्त की भावनानुसार प्रकट होकर कहने लगते हैं, 'वरंब्रूहि वर' माँगलो। इसी लिये संस्कृत की एक कहावत है "स्तोत्रंकस्यनरोचते भुविनृणाम्" ऐसा कौन संसार में पुरुष होगा। जिसे अपनी स्तुति प्यारी न लगती हो जब मनुष्य स्तुति से प्रसन्न हो जाता है, तब भगवान् का प्रसन्न होना कौन कठिन है। हे प्रभो। इन "भगवती स्तुतियों से आप प्रसन्न हों। आपकी प्रसन्नता के निमित्त ही ये सब प्रपंच रचे जा रहे हैं। अपरिग्रह से परिग्रही बनते जा रहे हैं। कागद एकत्रित्र करो, प्रेस लगाओ ग्राहक बढ़ाओ, यहलाओ वहलाओ यह सब तुम्हें रिझाने को ही कठिन कार्य किया जा रहा है। जानबूझ कर विष का घूँट पिया जा रहा है। इसमें अपनी स्तुति सुनने की मान बड़ाई होने की भावना भी है, किन्तु जब स्तुति की चाहना सदा तुम्हें भी बनी रहती है तो इस क्षुद्र जीव के हृदय में भी आजाय तो यह कौन सी आश्चर्य की की बात है, पिता का कुछ स्वभाव तो पुत्र में आता ही है। यदि आप को सिंहासन से ढकेल कर वहाँ स्वतः बैठने की भावना हो, वेंन की भाँति तुम्हारी स्तुति से द्वेप करके अपनी ही स्तुति सुनने की आकांक्षा हो तो हे मेरे सर्व समर्थ स्वामिन्! इस भावना को तुम मेंट दो। तुम्हें ही हमारा इष्ट हो, तुम्हारा गुण गान ही हमारा नित्यनैमित्तिक काम हो यही आप के पदारविन्दों में पुनः पुनः प्रार्थना है—

'प्रसीद देवेशजगन्निवास'

छप्पय

तारे अगनित भक्त विरुदव्याप्यो भुवनन में।
सुनि के आयौ दौरि हरनमय चरन शरन में॥
विषय लगत अति सुखद मान यश चहुँ बड़ाई।
कथनी करनी भिन्न लखूँ सब माहिं बुराई॥
तारो प्रभु अस अधम कूँ, तव पद पदुम प्रनाम है।
पतित उधारन पतितपति, भुवन विदित तव नाम है॥

नौका में त्रिवेणी पर
संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर, प्रयाग। } प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
आषाढ़ कृ० १३। २०१२ वि०

॥ श्रीहरिः ॥

भागवती-स्तुतियाँ (१)

मंगलाचरण

(१)

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा,
धाम्ना स्वेन सदानिरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥*

(श्रीभा० १ स्क० १ अ० १ श्लो०)

छप्पय

ध्यान प्रेमतैं करहिँ सत्य परमेश्वर प्रभु जो।
उतपति तिथि लय हेतु मस पालक हर त्रिभु जो॥
अन्वय अरु व्यतिरेक भावतैं जगमहँ व्यापक।
स्वयं प्रकाशस्वरूप, सर्वविद वेदप्रकाशक॥
माया छल अरु कपटतैं, बाधित भासित यों रहै।
जल, थल तैजस भ्रान्ति वश, असत् वस्तु ज्यों सत कहै॥

ग्रन्थारम्भ में अपने इष्ट की स्तुति की जाती है। उसे मंगलाचरण कहते हैं। मंगलाचरण नमस्कारात्मक, वस्तु निर्देशात्मक

* जो कार्याकार्य में अन्वय और व्यतिरेक से व्यापक जगत् के जन्मादि (जन्म-पालन और संहार) जिससे होते हैं जो स्वयं प्रकाशक है। जिसवेद के विषय में बड़े-बड़े ज्ञानी भी

और आशीर्वादात्मक इस तरह तीन प्रकार का होता है। नमस्कारात्मक जैसे कृष्णके लिये, वासुदेवके लिये, हरि के लिये परमात्मा के लिये, प्रणतों के क्लेशनाशने वाले के लिये तथा गोविन्द के लिये नमस्कार है। वस्तु निर्देशात्मक वह होता है कि, जो कहना हो उसका वर्णन करके अन्त में कह दे कि ऐसे भगवान हमारी रक्षा करें। आशीर्वादात्मक यह कहलाता है जिसमें अपना उद्देश्य कहकर अन्त में कह दिया जाय ऐसे भगवान् की जय हो या ऐसे भगवान् हमारा मगल करें। नमस्कारात्मक में प्रणाम नमस्कार बन्दना तथा ध्यान सभी का समावेश है।

श्रीमद् भागवत के आरंभ में भगवान् वेदव्यास भगवान् का ध्यान करते हैं। जिनका जीवन परोपकारमय है जो सदा सर्वदा सभी प्राणियों का कल्याण चाहते हैं। वे जो भी कार्य करते हैं सबका प्रतिनिधित्व सूचक कार्य करते हैं। वे जो करते हैं सबके लिये करते हैं। उनका अशन वसन, रहन सहन, पर्यटन, भ्रमण भाषण लेखन, यहाँ तक श्वास प्रश्वास का गमनागमन तथा जीवन सब दूसरों के निमित्त ही होता है अतः वे ग्रन्थारम्भ में ध्यान भी अकेले नहीं करते। बहु वचन पूर्वक कहते हैं हम उस प्रभु का ध्यान करते हैं। एकाकी ध्यान तो अपनी निजी भावना के अनुसार किया जाता है व्यष्टि के भगवान् तो ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध अपने ही से होता है, किन्तु हमें ध्यान करना है समष्टि के साथ, ऐसे प्रभु का ध्यान करना है जिनके लिये किसी भी

हो जाते हैं। उसी वेद को जिसने ब्रह्मा जी के हृदय में इच्छा मात्र से ही प्रकाशित कर दिया। और जैसे तेज जल और मिट्टी में एक दूसरे से भिन्न भ्रान्ति होती है वैसे ही उस विशुद्ध भगवत् स्वरूप में यह त्रिगुणमय संसार सत्य सा प्रतीत हो रहा है जिससे कपट सदा बाधित ही रहता है उस परम सत्य का हम ध्यान करते हैं।

वाद वाले को आपत्ति न हो जिसकी व्याख्या परिभाषा सर्व सम्मत सर्व मान्य हो। सभी सम्प्रदाय सभी वाद सभी मत सर्व धर्म तथा सभी बुद्धिमान पुरुष सत्य को तो मानते ही हैं, आज तक किसी भी धर्म का अनुयायी यह नहीं कहेगा कि हम सत्य को नहीं मानते अतः भगवान् वेदव्यास कहते हैं—"हम उन सत्य प्रभु का ग्रन्थारम्भ में सर्व प्रथम ध्यान करते हैं। सत्य भी कभी कभी बदल जाता है। हम देखते हैं आकाश में इन्द्र धनुष प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है, हमें सत्य सा प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में वह सत्य नहीं है। एक व्यक्ति बालक प्रतीत होता है हम उसे सत्य ही बालक मानते हैं। कुछ दिन पश्चात् वही व्यक्ति काल के प्रभाव से बालक नहीं रहता, युवा हो जाता है। तब हमें प्रतीत होता है कि उसका बालकपन सत्य नहीं था परिवर्तन शील था। कोई वस्तु हमें नूतन दिखायी देती है कालक्रम से वही पुरातन हो जाती है। उसकी नूतनता सत्य नहीं थी। आज जिसे हम सत्य समझते हैं कालान्तर में वही असत् प्रतीत होता है। बालकपन में बच्चा खिलौनों को सत्य समझता है उनमें उसकी अत्यधिक ममता रहती है। कोई ले लेता है और फोड़ देता है तो रोता है किन्तु बाल्यावस्था बीत जाने पर वही दूसरे बालकों को खिलौनों से खेलते देखकर हँसता है। इससे प्रतीत होता है जिनका सम्बन्ध देश से है काल से तथा पात्रता से है वह सत्य नहीं। हम ऐसे कालाधीन सत्य का ध्यान नहीं करते जो कालातीत देशातीत है त्रिकालाबाधित है प्रपंच से परे जो कोई परम सत्य है उसीका ध्यान करते हैं।

तो क्या वह इस कार्य कारणात्मक जगत् से सर्वथा पृथक् है, यदि वह सर्वथा पृथक् है, तो उसकी प्रतीत कैसे हो ? फिर तो वह ध्यानगम्य हो ही नहीं सकता। वह इस दृश्य प्रपंच के कार्य रूप संसार के अणु अणु में समान रूप से व्याप्त है

बिना किसी की सत्ता नहीं। उसी के अस्तित्व से वस्तुओं का पदार्थों का अस्तित्व है उसी की सत्ता से समस्त पदार्थों का अस्तित्व है या कहो वही एक होकर बहुत रूपों में बन गया है, एक ही चीनी ने नाम और आकृति भेद से विविध रूप रख लिये हैं वही वही है। अथवा जो दिखाई देता है वह वास्तव में उसका रूप नहीं है। जहाँ जाकर रूपों का अन्त हो जाता है, नामों का विराम हो जाता है, आकृतियों का अवसान हो जाता है, सब के अन्त में जो शेष रह जाता है, अवशेष बच जाता है, वही परम सत्य है। जो सब में सदा सर्वदा व्यापक है, सर्व रूप है, सर्व गत है, सर्वावशिष्ट है उस परम सत्य का हम ध्यान करते हैं।

अच्छा तो उसे उत्पन्न किसने किया ? किसी नें भी तो उसे बनाया होगा! इस पर कहते हैं, वह बना बनाया रहता है उसे कोई बनाता नहीं। उसकी उत्पत्ति किसी अन्य से नहीं होती। अपितु तो उसके ही द्वारा जगत् की उत्पत्ति होती है, यावत् प्रपञ्च के प्रजनन कार्य हैं उसी के द्वारा होवे हैं उसके अतिरिक्त अन्य कोई किसी को उत्पन्न ही नहीं कर सकता। वही जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण है।

पुनः पूछते हैं उत्पन्न न भी हुआ हो, किंतु उसकी सत्ता तो है। जिसकी सत्ता है, उसका किसी के द्वारा लालन पालन तो होता ही होगा। उसका पालन कौन करता होगा। कहते हैं नहीं, उस स्वराट् का स्वयं प्रकाश का पालन अन्य कोई कर ही नहीं सकता। अन्य किसी की शक्ति ही नहीं जो उसका पालन कर सके। लाल्य पाल्य लालक पालक से सदा छोटा रहता है, वह तो बड़े से भी बड़ा है उसके अतिरिक्त कोई पालक है ही नहीं, वही सर्व जगत् का पालक है वही सृष्टि का स्वयं पालन करता है या कराता है। एक मात्र

वही पालक होने से वह अन्य किसी द्वारा पालन नहीं किया जाता है।

फिर पूछते हैं जो है, जिसकी सत्ता है उसका एक दिन विनाश भी होता है तो क्या उस सत्य का भी कभी नाश होगा। इस पर कहते हैं—नाशकाल वालों वस्तुओं का होता है, वह कालातीत है काल की वहाँ गम नहीं अतः वह अविनाशी है। नाश उसका होता है जो कभी उत्पन्न हुआ हो, वह न कभी उत्पन्न हुआ है। अनादि अजहोने से अनन्त और अविनाशी है। उसी के द्वारा संसार का असंख्यों ब्रह्मांडों का नाश होता है फिर असंख्यों की उत्पत्ति होती है।

अनादि अनन्त तथा अविनाशी कहने से क्या उसका पूर्ण बोध होता है? पूर्ण बोध तो शब्दों द्वारा हो ही नहीं सकता। क्योंकि भाषा अपूर्ण है। भाव उसको अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है हम यही कह सकते हैं, वह सत् स्वरूप है, चित् स्वरूप है, आनन्द स्वरूप है, वह स्वयं प्रकाश है, सर्वविद् है सर्वज्ञ है सनातन है, सर्वमय है, सर्वाधार है, सर्वस्वरूप है, सर्वनाम है, सर्वान्तर्यामी भी तथा सर्वधी है।

उसने कहीं से कभी ज्ञानार्जन किया होगा? नहीं, वह किससे ज्ञानार्जन करता, वह तो स्वतः ज्ञान स्वरूप है। वह किससे सीखेगा, वही तो सबका एकमात्र सर्वाशिक्षक है, वह किससे अध्ययन करेगा, वही तो जगद्गुरु है। जितने ज्ञानी हैं, उसी की कृपा की एक तनिक सी कोर से ज्ञानवान् बने हैं। वेदों के वक्ता चतुर्मुख ब्रह्माबाबा उन्हीं के शिष्य हैं। पोथी लेकर वर्ष दो वर्ष उन्हें पढ़ाया नहीं, उनको रटाया नहीं, घुखाया नहीं। बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान जिन वेदों के विषय में मोहित हो जाते हैं, उन्हीं

वेदों को सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी के उत्पन्न होते ही केवल संकल्पमात्र से ही उनके हृदय में सञ्चार कर दिया। उनके निमेष के सोचने मात्र से ही कमलासन ब्रह्मा वेदविद् बन गये। समस्त वेदों के प्रकट करने वाले हो गये। तेज, जल, पृथिवी के विनिमय से कुछ का कुछ दिखायी देता है। माता का रज देखो तो रक्त वर्ण का प्रतीत होता है, वह गर्भ धारण से, स्नेह से, ममता के कारण स्तनों में आने से दुग्ध हो जाता है। स्वच्छ दिखाई देने लगता है। पृथक-पृथक भूत कुछ और ही रङ्ग रूपों में दीखते हैं वे ही शरीर के रूप में परिणित होने से कुछ के कुछ दिखायी देते हैं। बालू वैसे कुछ और दीखती है, उसी का काँच बन जाता है सूर्य की किरणों से संयोग हो जाता है, तो मिट्टी न दिखायी देकर जलसा प्रतीत होने लगता है। सूर्य की किरण पड़ने से कभी कभी दूरी तक बिछी बालू समुद्र के समान भरी हुई जलराशि प्रतीत होने लगती है। कभी स्थल में जल दिखायी देता है, कभी किसी के संयोग से या कला से जल में स्थल की भ्रान्ति होती है। इसी प्रकार कभी उसमें यह जगत् सत् दिखायी देता है, कभी असत् भी प्रतीत होता है।

वह प्रभु का सत्य स्वरूप सदा स्वच्छ है, निर्मल है, परमपावनतम है, उसके ज्ञान स्वरूप तेज के सम्मुख असत् ठहर नहीं सकता, कपट चल नहीं सकता, छलकी दाल गल नहीं सकती, माया बाधा पहुँचा नहीं सकती, अविद्या फटक नहीं सकती, प्रकृति अपना जाल फैला नहीं सकती, उसी शुद्ध, सत्य सनातन स्वरूप का ध्यान करके हृदय को विशुद्ध बनाकर हम भागवत रचना कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

इस शास्त्र का विषय है भगवत् भक्ति। प्रयोजन है सत्पुरुषों को प्रभुपादपद्मों तक पहुँचाना। सम्बन्ध है प्रभु से सुदृढ़ सम्बन्ध

स्थापित कर लेना । इसके अधिकारी हैं मत्सर हीन सत्पुरुष । इसलिए परोपकार व्रत निरत सर्वभूत हितैरत सर्व सुहृद सर्वमंगलेच्छु भगवान वेद व्यास ने इस अलौकिक शास्त्र की रचना की। इसमें उन्होंने निष्काम, निर्मम, निष्कपट, सत्पुरुषों के निमित्त शुद्ध विशुद्ध धर्म का वर्णन किया। इस भागवत धर्म में लेन देन का भावना नहीं, वणिक वृत्ति के ऊपर आधारित नहीं है। इसमें लेने की भावना नहीं सर्वथा देने की ही भावना है जो कुछ हो अपना सर्वस्व प्रभु को देकर तुम निष्किंचन बन जाओ आगे कुछ याचना भी मत करो। इसम परम कल्याण कारी सभी पाप ताप संताप को मेटने वाली वास्तविक वस्तु है। कलि मल हारिणी मुनिमन हारिणी त्रिभुवन तारिणी तथा कल्याण कारिणी कमनीय कथायें हैं। भगवान् बादरायणने जोभी जानने योग्य विषय है सभी का सार इसमें भर दिया है। इसे सब सुन भी नहीं सकते। जिन्हों ने सहस्त्रों जन्म जन्मान्तरों में जप, तप, यज्ञयोग आदि उत्तम अनुष्ठान किए हैं वे परम भाग्यशाली सुकृति हैं इसे श्रद्धा सहित बारम्बार श्रवण कर सकते हैं किन्तु जिनके कर्ण कुहरों में यह कथा प्रविष्ट हो गयी, अन्तः करण तक किसी प्रकार चलकर चली गयी तब तो उस लकीर के सहारे सहारे उसमें प्रभु निश्चय ही प्रवेश कर जाते हैं। प्रवेश करके वहाँ से तुरन्त ही लौट आते हों सो बात भी नहीं। वहाँ जाकर आसन जमाकर बैठ जाते हैं स्थिर हो जाते हैं। ऐसी भव्य भागवत जब समुपस्थित है, ऐसी अत्यद्भुत अमोघ अचूक औषधि जब मिल गई तब अन्य उपायों की आवश्यकता क्या ? जब पीयूषपाणि घर बैठे स्वतः ही आगये तो अन्य क्षुद्र वैद्यों का अन्वेषण क्यों किया जाय। इसी परम सुस्वादु रस का पान करो। बारम्बार भगवान् की करो उनकी प्रार्थना करो। भागवत का एकमात्र साधन " वपूभि विर्दिधन् नमस्ते ही है। हृदय से बार

नमो नमः, नमो नमः, वाणी से बारम्बार कहो हे विभो ! नमस्कार नमस्कार। शरीर से लंब्रेलेट जाओ। साष्टांग प्रणाम करके कहो ते नमः, ते नमः तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है।

छप्पय

व्यास महामुनि सकल शास्त्र रचि पुनि जिह गाई।
सत् पुरुषनि पथ विमल करन अवनी पै आई॥
जो सब जानन वस्तु मधुर रस घोर पिआई।
पीवत प्रभु हिय घुसें बसें संताप नसाई॥
बार-बार बन्दन करो, हिय तनु बानी तें सतत।
सब तजि हरि हिय महँ धरो, पढ़ो सुनो नित भागवत॥

कुन्ती कृत कृष्ण-स्तुति

(२)

नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थिम् ॥*
(श्री भा०१ स्क० ८ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

जनम परीक्षित् भयो असतें कृष्णबचायो ।
पांडु सुतनि करि सुखी श्याम निजरथ सजवायो ॥
चलन द्वारका नाथ विराजे रथ पै आई ।
रथ ढिंग कुन्ती नयन नीर भरि विनय सुनाई ॥
हे अविनाशी, अज, अमित, आदि अनामय अगतिगति ।
करूँ नमन तव चरन महँ, हौं अबला अति अधममति ॥

हम दुखी इसी लिये होते हैं, कि भगवान् को सर्वरूप सर्वज्ञ सर्वव्यापी सर्वत्र नहीं मानते । यदि हमें चराचर में वे ही सर्वान्तर्यामी श्याम सुन्दर दिखायी देने लगें, तो फिर चिन्ता का दुःख

---

*भगवान् वासुदेव की स्तुति करती हुई कुन्ती जी कह रही हैं—"हे प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ । आप प्रकृति से परे आदि पुरुष हैं । आप समस्त प्राणियों के भीतर तथा बाहर भी अलक्षित भाव से सदा अवस्थित रहते हैं ।

का, शोक का तथा खेद का,कोई कारण रह नहीं जाता। हम अनुकूल परिस्थितियों में तो प्रभु को भूल जाते हैं, और प्रतिकूल परिस्थितियों में रोने लगते हैं। जो लोग सुखरूप में भी श्याम सुंदर को देखते हैं और दुःख रूप में भी उन्हीं का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं। वे ही महापुरुष हैं, वे ही सच्चे भगवत् भक्त हैं। वास्तव में भगवत् साक्षात्कार तो दुःख में ही होता है, दुःख में उनकी अधिक अनुभूति होती है। तभी तो बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट् घर की सभी सुविधाओं को संसारी सुखों को त्याग कर स्वतः असुविधाओं को सिर के ऊपर लाद कर निष्किंचन होकर वन वन भटकते रहते हैं। ऐसे ही असुविधाओं को दुःखों को अपनाने वाले व्यक्ति प्रातस्मरणीय बन जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिस समय भगवान् वासुदेव महाभारत युद्ध में पांडवों को विजयी बनाकर अपने निवास स्थान द्वारिका के लिये चलने को उद्यत हुए, तब अश्वत्थामा के ६ ब्रह्मास्त्रों को आते देखा। द्रोणपुत्र इस पृथ्वी को पांडुवंश से विहीन बनाना चाहता था। इसीलिये ५ बाण तो पांडवों को मारने के लिये और एक बाण उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने के निमित्त छोड़ा। भक्त वत्सल भगवान् ने अपने सुदर्शनचक्र के प्रभाव से उन पाँचों को व्यर्थ बना दिया और उत्तरा के उदर में घुसकर उसके गर्भ की रक्षा की।

नियत समय पर उत्तरा ने एक पुत्ररत्न को प्रसव किया जिसका नाम विष्णुरात या परीक्षित् प्रसिद्ध हुआ। परीक्षित् का सकुशल जन्म हो जाने पर घर के लिये साधारण मनुष्यों की भाँति व्यग्रता दिखाते हुए भगवान् ने अपने सारथी दारुक को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। सब सामान बाँधकर रथ को तैयार करके दारुक द्वार पर उपस्थित हुआ। सबसे मिलजुल

कर भगवान् वासुदेव द्वारका के लिये चलने को प्रस्तुत हुए। उसी समय द्रौपदी को साथ लिये हुए कुन्ती जी उस समय आकर भगवान् के सम्मुख प्रस्तुत हुईं और उन्होंने अत्यंत ही मार्मिक शब्दों में भगवान् की स्तुति की। भारतीय सदाचार ऐसा है, कि स्त्रियाँ कभी भी अकेली बाहर नहीं निकलतीं। अपने भाई को पति को भृत्य सेवक को, पुत्र पुत्री को बहू को साथ लेकर कहीं जाती हैं। किसी से प्रत्यक्ष बातें भी नहीं करतीं, किसी को बीच में माध्यम बनाकर बातें करती हैं। कोई माध्यम बनाने को पुरुष न होगा तो बीच में एक तृण को ही रख लेंगी और उसी के माध्यम से बातें करेंगी। स्त्रियों का सबसे बड़ा भूषण लज्जा है। लज्जा रहती है आँखों में। अतः स्त्री जिसका अत्यधिक आदर करेंगी, उसे देखकर लजा जायगी। अँचल से आँखों को-मुख को ढक लेंगी। जैसे हम पुरुष लोग किसी बड़े को आदरणीय व्यक्ति को देखते ही सहसा उठकर खड़े हो जाते हैं, उसके प्रति खड़े होकर उत्थान देकर आदर प्रकट करते हैं। भारतीय स्त्रियाँ अभ्युत्थान के द्वारा आदर नहीं जताती। वे लजाकर आँचल से मुख ढककर या तनिक आँचल को नीचा करके आदर प्रकट करती हैं। वे पर पुरुष की तो बात ही क्या अपने सयाने पुत्र से भी खुलकर प्रत्यक्ष बातें नहीं करतीं। किसी को बीच में रखकर तब बातें करती हैं। ऐसी प्राचीन परम्परा है। वे अपने शील की लज्जा की पग-पग पर रक्षा करती हैं। कितनी भी बूढ़ी क्यों न हो जाँय वे अपने संकोची स्वभाव को तिलाञ्जलि नहीं देती।

इसीलिये अपने निजी महल के द्वार तक भी माँ कुन्ती अकेली नहीं आईं। श्रीकृष्ण उनके सगे भाई के पुत्र थे। भतीजे थे धर्मराज से भी छोटे थे उनके गोद के खिलाये थे, फिर भी वे

समर्थ थे उनके सम्मुख भी माँ अकेली नहीं गयीं, अपनी बहू को साथ लेकर ही गयीं।

अब प्रश्न यह उठता है, कि उनकी बहुएँ तो और भी बहुत सी थीं, द्रौपदी को ही साथ क्यों लिया सुभद्रा को लातीं या दूसरी और किसी को लातीं। सुभद्रा को लाना तो उपयुक्त था किन्तु सुभद्रा भी श्रीकृष्ण से बहुत लजाती थी। छोटी बहिन ही ठहरी। द्रौपदी कुछ ढाठ हो गया थो। भगवान् ने उसे बहिन मान लिया था। सगी बहिन में और मानी हुई बहिन मे अन्तर होताहै जैसे सगे भाई में और मित्रमें अन्तर होता है। भाई यद्यपि सहोदर भाई ही है, किन्तु उससे उतनी खुल कर बातें नही की जा सकती, जितनी मित्र से खुल कर बातें होती हैं। भाई की अपेक्षा मित्र प्यारा भी लगता है। एक माता है, उसका सगा पुत्र है माता संकोच वश उससे खुल कर प्यार नहीं कर सकती। उसके सम्मुख अपने मातृत्व के उमड़ते हुए स्नेह को रख नहीं सकती। किन्तु किसी को पुत्र कह कर अपने सगे पुत्र के रूप में स्वीकार करलिया है,उसे जो भर के प्यार कर सकती है मातृत्व के प्रेम को उड़ेल सकती है, उसे वात्सल्य रस में डुबो सकती है, उसे प्रेम के रस में सराबोर कर सकती है। श्रीकृष्ण ने भी अपनी भगिनीप्रेम द्रौपदी के ऊपर उड़ेल दिया था। वह श्रीकृष्ण के सम्मुख कहनी अनकहनी सभी बातें कह सकती थी। भीतर से अत्यन्त स्नेह भरा रहने पर भी वह रोष में भरकर श्रीकृष्ण को खरी खोटी सब सुना सकती थी। इसी कारण जिसे जो काम श्रीकृष्ण से कराना होता, वह द्रौपदी के ही द्वारा कराता। भगवान् उनको क्रोध भरी बातों को कभी खिल-खिलाकर हंस कर कभी मुसकुरा कर टाल देते, कभी मोठी झिड़की दे देते। इसके उत्तर में द्रौपदी भी उन्हें झिड़की देती, तब फिर श्यामसुन्दर हँसजाते। आज मानोंमाता कुन्ती अपनीशिफारिस के लिये ही द्रौपदी का साथ लेकर श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुई

जब हमें यह ज्ञात हो, कि अमुक व्यक्ति अमुक को बहुत मानता है, तो हम उसे साथ लेकर उसके पास जाते हैं, वह जाकर चाहे एक शब्द भी न कहे, किन्तु उसकी उपस्थिति का ही बहुत प्रभाव पड़ता है। मानों द्रौपदी को इसीलिये माता साथ ले गयीं। श्रीकृष्ण के समीप जाकर महारानी कुन्ती ने जो स्तुति की है, उसका एक-एक शब्द अनमोल है। कुन्ती की भाँति मातायें-उस स्तुति का नित्य पाठ करें तो श्रीकृष्ण उनके मनोरथों को अवश्य पूर्ण करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

संसार में स्त्री के हृदय की व्यथा को कौन जान सकता है। एक स्त्री भी दूसरी स्त्री की व्यथा को नहीं जान सकती। यदि दूसरी स्त्री उसके पति से प्रेम करने वाली हुई तो उसके प्रति सौतिया डाह होगा। यदि स्त्री बाँझ हुई तो वह पुत्रवती की पीड़ा को समझ ही क्या सकती है, यदि वह समृद्ध कुल की हुई, तो उसे दारिद्र दुख का अनुभव ही न होगा। यदि वह निर्धन हुई तो समझ भी नहीं सकती। धनी परिवार की उत्तम कुल की प्रतिष्ठितवंश की स्त्री को कितनी मानसिक पीड़ायें होती हैं। इसलिये स्त्री की विपत्ति को स्वयं वही समझ सकती है या उसका सहृदय पति भी उसका साझीदार हो सकता है। स्त्री उतना कुल पर गर्व नहीं करती, धन का, रूप का, वस्त्र आभूषणों का, संसारी भोगों की प्रचुरता का भी उसे उतना गर्व नहीं होता जितना अपने मनोनुकूल पति का उसे गर्व होता है। यदि स्त्री कोउसके मनोनुरूप पति मिल जाय, तो वह सभी अवस्थाओं में अपने को सुखी समझती है। स्त्री और लता किसी का सहारा चाहती हैं, वे निराधार शोभा नहीं देती। अपने पतिका सहारा पाकर वे प्रफुल्लित हो जाती हैं। अपने को सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य शालिनी समझने लगती हैं। स्त्रियों का एक आधार पति ही है। जिस स्त्री का पति मर जाय, उसकी संसार में कितनी

दुर्दशा होती है, उसे विधवा बने बिना कोई अनुभव कर नहीं सकती। पति के बिना उसका रूप, रंग, आकृति, प्रकृति,वेषभूषा, कान्ति, तेज उत्साह, शोभा आदि सभी नष्ट हो जाते हैं। कलतक जो लोग अत्यन्त ही प्रेम से भाभी जी, चाची जी, बहू जी, बहिन जी करके पुकारते थे। वे देखते हीआँखें फेर लेते हैं। कोई बात तक नहीं करता। जो पहिले उपहार देने का सदा लालायित रहते थे आज माँगने पर उनसे फूटी कौड़ा भी नहीं मिलता। विधवा स्त्री का पतिविहीना नारी का जीवन कोई जीवन नहीं, वह तो किसी प्रकार अपने मृत्यु के दिनों को पूरा करती है।

यदि उस विधवा के छोटे-छोटे बच्चे भी हों तब तो आपत्ति विपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ता है। अपने बच्चे के प्रति माता की कितनी ममता होती है। इसकी न कोई उपमा है न समझाने के लिये कोई दृष्टान्त है। कुछ-कुछ उस दुख का सादृश्य ऐसा है जैसे कोई किसी के वक्षःस्थल को चीर कर उसके हृदय को निकाल ले और फिर उसमें छोटी छोटी-सुइयों को उसकी आँखों के सम्मुख निरंतर चुभोता रहे; वैसी ही कुछ पीड़ा माँ को अपने बच्चों को भूख प्यास से बिलबिलाते देख कर होती है। बहुत सी मातायें तो अपनी संतानों के इन दुखों को न सह सकने के कारण मर जाती हैं। बहुत सी निन्द्य से निन्द्य कार्य करने को उद्यत हो जाती है। यहाँ तक अपने सतीत्व को भी बेंच देती हैं। भीख जैसे अत्यंत निन्दित घृणित कार्य का भी करने लगती हैं। भगवान् ने स्त्री के हृदय में ममता का सागर ही भर दिया है।

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! भगवान् की आप पर बड़ी दया है जो आप घर गृहस्थी के झंझटों से दूर रह कर निरंतर भगवान् की कथा तथा कीर्तन में लगे रहते हैं। नहीं तो भगवन्! यह गार्हस्थ जीवन तो आपत्ति विपत्तियों का घर ही है। मुनियो। आप उस स्त्री के दुःख की कल्पना करें जो एक राजा के घर

में उत्पन्न हुई हो, राजमहल में पली हो। जिसने खुली भूमि का स्पर्श न किया हो। सहस्रों दासदासियों राजारानी के अनन्त प्यार को जिसने पाया हो। जो रूप की खानि हो सुंदरता की साकार प्रतिमा हो। दूसरे चक्रवर्ती शूर वीर राजा से जिसका विवाह हुआ हो। राजरानी बनकर जिसने लाखों करोड़ों पर आज्ञा चलायी हो, सब पर जिसने शासन किया हो। स्वर्गीय देवताओं के साथ जिसका समागम हुआ हो। जिसके शूर वीर, सुंदर तेजस्वी, देवताओं के समान पुत्र हों, फिर वह घर के लोगों द्वारा निकाल दी जाय, भोजन का ठिकाना नहीं, रहने को कोई झोपड़ी नहीं, पहिनने को वस्त्र नहीं। भीख के अन्न पर जिसे पुत्रों सहित निर्वाह करना पड़े। सूर्य की किरणों ने भी कभी स्वेच्छा से जिसे देखा न हो आज वह वैशाख ज्येष्ठ की धूप में संतप्त बालुका में पैदल ही चल रही हो, भूख की ज्वाला जिसके अंदर जल रही हो, प्यास के कारण जो विकल बनी हो, पीने को पानी न हो, पैर छालों से छलनी बने हों, वह पुत्रों सहित विधवा राजरानी अपने समय को कैसे बिताती होगी जब उसे कहीं से किसी का भी कोई अधार न हो। साथ ही जिसे पगपग पर पुत्रों के प्राणों का भय व्याप्त हो रहा हो। ऐसे समय में उसे एकमात्र भगवान् का ही सहारा था। भगवान् के ही सहारे उसने अपनी सम्पूर्ण विपत्ति के दुर्गम पहाड़ को धैर्य के साथ पार कर लिये। पार पहुँच कर उसे अपने भगवान् के सहारे खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त हो गया। बच्चों का विवाह हो गया, उनके भी पुत्र हो गये पौत्र का भी पुत्र हो गया। भगवान् ने उसके दुःख को दूरकर दिया और वही उसका दुखहारी भगवान् उसके सम्मुख हँसता हुआ बैठा है। आज उसके हृदय का सुदृढ़ बाँध कृतज्ञता के आधिक्य से फूट पड़ा। आज वह भगवान् के सम्मुख रो रही है। पुनः हाथ जोड़कर आँसू बहाते हुए विपत्ति की भीख माँग

रही है। इस लिये कि कहीं सम्पत्ति के मोह में मैं उन भय हारी, विपत्ति विदारी वासुदेव को भूल न जाऊँ। जो सम्पत्ति हमें भगवान् की ओर से पराङ्मुख करके संसारी भोगों में फँसा दे तो उस सम्पत्ति से तो विपत्ति लाख गुनी अच्छी है। सम्पत्ति और विपत्ति में समान रूप से हमारा मन भगवान् वासुदेव के चरणारविन्दों में लगा रहे। इसीलिये कुन्ती कह रही है—हे वासुदेव मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

बुआ होकर नमस्कार क्यों करती हो जी ?

अजी, श्यामसुन्दर ! तुम बुआ भतीजे के सम्बन्ध से परे हो, तुम न किसी के पुत्र हो न पिता। तुम तो 'पुरुष' हो।

पुरुष का अर्थ तो होता है, मनुष्य। भिन्न-भिन्न दार्शनिक 'पुरुषका अर्थ भिन्न भिन्न करते हैं, किन्हीं के अर्थ में पुरुष अकर्ता होता है, कोई जीवन को ही पुरुष मानते हैं, तुम्हारा अभिप्राय किस पुरुष से है ?

अजी, पुरुष तो सभी को दिखाई देते हो तुम तो आदि पुरुष हो।

आदि पुरुष तो ब्रह्मा है, क्या मुझे चार मुँह वाला ब्रह्मा कहती हो, मेरे तो एक ही मुख है ?

नहीं, भगवन् ! ब्रह्मा तो उत्पन्न होते हैं, सर्ग के आदि में उनका अन्त भी है, किन्तु आप तो आदि अन्त से रहित सर्व समर्थ ईश्वर हैं। सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले हो।

सम्पूर्ण जगत् को तो प्रकृति बनाती है, जीवभूता प्रकृति ही सम्पूर्ण जगत का कारण है। नहीं, वासुदेव ! आप जीवभूता प्रकृति नहीं हैं, किन्तु प्रकृति से भी परे हैं।

प्रकृति का तो कार्य दिखायी देता है, किन्तु जो प्रकृति से परे

है, उसका तो कोई कार्य दिखाई ही नहीं देता।

इसलिये तो हे मदन मोहन! आप को वेद शास्त्र अलख, अगोचर कहते हैं। आप! इन्द्रियों द्वारा लक्ष्य नहीं बनाये जा सकते।

जो गोचर नहीं, दिखाई नहीं देता वह है ही इसमें क्या प्रमाण? फिर तो वह होगा ही नहीं?

सो बात नहीं, सर्वेश्वर! आप समस्त चर और अचर प्राणियों के भीतर भी अवस्थित हैं और बाहर भी अवस्थित हैं, सबका अस्तित्व आप की सत्ता से ही है। आप की जहाँ सत्ता नहीं, उसका अस्तित्व नहीं। आप ही सर्वालम्ब हैं।

जो सब में भीतर बाहर व्याप्त है, उसका रूप दिखाई क्यों नहीं देता।

दिखायी देत क्यों नहीं माधव! आपने अपने और जीवों के बीच में एक सूक्ष्म सी प्रकृति की यवनिका डाल रखी है। लज्जावती बहू की भाँति प्रकृति परदे के भीतर बैठे हो। पर्दे के भीतर रहने वाले का अस्तित्व तो प्रतीत होता है, किन्तु दिखायी नहीं देता।

जिसका अस्तित्व है, वह दीखता क्यों नहीं?

जिसका अस्तित्व हो वह दिखायी ही दे ऐसी बात तो नहीं हड्डियाँ हमारे शरीर में हैं, उनके ऊपर चर्म मढ़ा हुआ है। वे दिखायी नहीं देतीं। किन्तु एक यन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण हड्डियों के चित्र खींच लेता है। साधारण यन्त्र ऊपर के ही शरीर का चित्र उतारने में समर्थ हैं, किन्तु सूक्ष्माति सूक्ष्म यन्त्र भीतर की हड्डियों को भी देखकर उनका चित्र प्रस्तुत कर देता है। इसी प्रकार मेरे समान जो अक्ष हैं वे तो इन्द्रियों से तुम्हें देख नहीं सकते, क्योंकि अक्ष नाम इन्द्रियों का है इन्द्रिय जन्य-अक्षजज्ञान को अपने अधः-

नीचे कर दिया है। इसीलिये आपको अधोक्षज कहते हैं। तब आपको ये साधारण इन्द्रियों वाले अज्ञानी पुरुष कैसे देख सकते हैं। सब वस्तुओं का अस्तित्व आपके ही अस्तित्व के कारण है। इसीलिये अनुमान कर सकते हैं, कि आप हैं। जैसे किसी भवन में कपूर रखा है। वह हमें दीखता नहीं, किन्तु उसकी सुगन्धि से अनुमान कर लेते हैं, यहाँ अवश्य कपूर होगा।"

कपूर का अनुमान तभी तक कर सकते हैं, जब तक उसका कहीं छिपा अस्तित्व रहे। कभी न कभी तो वह समाप्त हो जायगा, उसका व्यय हो जायगा, फिर उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता ?

कपूर आदि के सम्बन्ध में ऐसा कहा भी जा सकता है, क्योंकि वह व्यय शील है। व्यय होते-होते एक दिन उसकी समाप्ति संभव है, किन्तु आपतो अव्यय हो, हे मेरे अच्युत ! अतः आपकी कभी समाप्ति नहीं। आप कृष्ण के उस धन के समान हो, जो कभी व्यय नहीं किया जाता। या उस अक्षय भंडार के समान हैं, जिसमें से कितना भी व्यय किया जाय, वह सदा सर्वदा ज्यों का त्यों ही बना रहता है।

जिसका अस्तित्व है, जो सबका कारण है, जो सबके बाहर भीतर सदा सर्वदा अवस्थित रहता है, जिसका कभी व्यय नहीं होता वह दिखायी तो देना ही चाहिये। आँखों के सामने रहने पर दीखता क्यों नहीं ?

किसी वस्तु का अस्तित्व तो है, किन्तु वह बहुत दूर है, रहते हुए भी हमें दिखायी नहीं देता। जैसे गंगा पार भरद्वाज मुनि का आश्रम है, उसके अस्तित्व में कोई संदेह नहीं, किन्तु दूर के कारण हमें नहीं दीखता। कोई दूरवीक्षण यन्त्र से देख सकता है। अति समीप की वस्तु भी नहीं दिखायी देती। आँख सभी वस्तुओं

को देखती हैं. किन्तु आँख में तिनका पड़ जाय तो वह स्वतः दिखायी न देगा, आँख मे लगाकर काजर अपनी आँखों को दिखायी नहीं देता। व्यवधान के कारण भी दिखायी नहीं देता। भीत के पीछे दूसरे घर में कौन है, हमे नहीं दीखता, पार दर्शक यन्त्र से उसे देख सकते हैं। मन की अनवस्था के कारण भी वस्तु रहते हुए दिखाई नहीं देती। हमारा मन दूसरे विषय में व्यग्र है, तो वस्तु दिखाई नहीं देती। किसी वृक्ष से गिरने से, विक्षित हो जाने से या अन्य किसी मानसिक रोग से मन को आघात पहुँचा है, तो नेत्र देख नहीं सकते, क्योंकि इन्द्रियाँ मन के ही द्वारा देख सुन सकती हैं।

हे सर्वतोमुख ! इसी प्रकार अविवेकमयी दृष्टि वाले तुम्हें देखकर भी पहिचान नहीं सकते, जो विवेक दृष्टि वाले हैं वे तो पहिचान ही लेते हैं। जैसे कोई नाटक करने वाला नट है, सर्व साधारण लोगों ने उसे कई बार देखा है, फिर भी जब वह वेष बदल कर छत्र चँवर, किरीट मुकुटलगा कर आ जाता है, तो साधारण बुद्धि वाले उसे राजा ही मान बैठते हैं। जो विवेकी हैं, वे तो समझ लेते हैं, यह बहुरूपिया नट है। इसने अपना यथार्थ रूप छिपा रखा है। सो श्याम . सुन्दर तुम ! बहुरूपिया हो, अपने को छुपाकर वासुदेव के पुत्र बन गये हो। जब मायावी नट के छिपाये रूप को ही कोई नहीं पहिचान सकता, तो तुम तो महा मायावी हो, नटनागर तथा नटवर हो, जब तुम स्वयं छिपना चाहते हो, तो कोई अबला चित्त वाले भले ही पहिचान लें। मैं अबला अज्ञानारी कम बुद्धि वाली स्त्री आपको कैसे जान सकती हूँ। आप मन से ही,संकल्प से ही, संपूर्ण सृष्टि को कर सकते हैं।

जब संकल्प से ही सब कुछ कर सकते हैं, तो मैं तो वसुदेव

जी के यहाँ धरा धाम पर अवतीर्ण हुआ हूँ, मेरे अवतीर्ण होने का क्या प्रयोजन ?

नाथ ! आप संसार की सृष्टि, स्थिति तथा लय के निमित्त थोड़े ही उत्पन्न होते हैं। ये काम तो आपके संकल्प मात्र से स्वतः ही हो जाते हैं, इन्हें तो आपके अंशभूत ब्रह्मा, विष्णु महेश करते ही रहते हैं। आप तो अवनि पर केवल अमल विमल बुद्धि वाले परम हंस मुनियों के हृदय में भक्ति योग की स्थापना करने के निमित्त अवतीर्ण होते हैं, रस की धारा बहाने आते हैं, प्रेम का पन्थ दिखाने आते हैं, अनुराग मार्ग का दिग्दर्शन कराने आते हैं। प्रेम, अनुराग, भक्ति की शिक्षा आपके बिना जगत् के अधिकारी पद पर आरूढ़ दूसरा व्यक्ति नहीं दे सकता। अतः आपके अवतार का एक मात्र उद्देश्य भक्तों को सुख देना है, भक्ति का प्रचार प्रसार मात्र करना है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! कुन्ती जी का एक एक बोल अनमोल है, एक-एक शब्द कल्पद्रुम के सदृश है। भगवान् के नामों के जो विशेषण उन्होंने दिये हैं, उनमें सभी दार्शनिक सिद्धान्त निहित हैं। उनकी विस्तृत व्याख्या करूँ, तो एक ही शब्द में पोथे के पोथे बन जायँ, अतः मैं विस्तार में न जाकर इसका वर्णन संक्षेप में ही करूँगा। अब तक मैंने पुरुष, अनादि, ईश्वर, प्रकृति से परे, अलक्ष्य, सब के भीतर बाहर रहने वाले, माया जवनिका से आच्छन्न, अधोक्षज, अव्यय, और नटवर इन नामों की व्याख्या की। अब आप कृष्ण, वासुदेव, देवकी नंदन,

नन्दगोपकुमार, गोविन्द, पंकजमाली, पंकजनयन, तथा पंकजचरण इन नामों के सम्बन्ध में सुनें।

छप्पय

भीतर बाहर बसतु चराचर भूतनि माहीं।
अन्तरपट नट डारि छिपे हो दीसत नाहीं॥
अलख अगोचर अज्ञ अद्गगत नहीं निहारें।
भक्त भक्ति सुख हेतु अवनि पै आपु पधारें॥
अमल विमल मति महा मुनि, प्रभु पदु पदुमनि प्रेम करि।
तरें, किन्तु भव जलधि कूँ, हम अबला कस जायँ तरि॥

कुन्ती-स्तुति (२)

(३)

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ॥*

(श्री भा० १ स्क० ८ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

कृष्णचन्द्र वसुदेव-तनय हे देवकिनन्दन।
हेगोविन्द गोपाल-नन्दनन्दन जगवन्दन ॥
पद्मनाभ पद्माभ पदममाला उरधारी।
पद्मापति पदपदुम पदुम-मुख-पदम बिहारी ॥
वदन, नयन, कर, उर, चरन, आभा लखि सकुचत पदम।
बार बार बन्दन करहुँ, अमल सरस वर पद-परम ॥

हे कृष्ण ! तुम जान में अनजान में प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हो। वस्तुओं में जो आकर्षण शक्ति है। वह तुम्हारा ही अंश है। तुम इतने ढीठ हो, कि हठ पूर्वक सब को अपनी ओर खींच लेते हो. तुम्हें जिसने एक बार देख लिया, पेख लिया, अवलोक लिया, निहार लिया, लख लिया, तुम्हारी झलक जिसकी दृष्टि पथ पर स्वभाव से भी पड़ गयी, तुम्हारी बाँकी झाँकी जिसने प्रसंगवश भी पा ली, वह तुम्हारी ओर आकर्षित हो गया, खिच गया, तुम्हारा हो गया, वह

---

* श्री कृष्ण के लिये वासुदेव के लिये, देवकीनन्दन के लिये, गोपराज नन्द कुमार के लिये और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है, नमस्कार है।

अपना सर्वस्व तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर देता है, मुझे भी तुमने अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इसीलिये मैं लोक-लाज, कुल परम्परा की मर्यादा को छोड़कर तुम्हारे सम्मुख-सब के सामने उपस्थित हुई हूँ। तुम्हारे अनुरूप देने को मेरे पास कुछ भी नहीं है, अतः मैं तुम्हें दोनों हाथ जोड़कर मस्तक को भूमि में टेक कर नमस्कार ही करती हूँ।

हम स्त्रियाँ वेदाध्ययनादि से वञ्चित रहती हैं। हम तो एक मात्र आपका नाम जप कर आपको नमस्कार करके ही तर सकती हैं, क्योंकि आप मोह पटल को विदारण कर सकते हैं, मोह ममता को, अन्धकार तम को मिटाने में नष्ट करने में आप समर्थ हैं। इसीलिये तुम्हें मैं नमस्कार करती हूँ। आप रंग के काले हो, साथ ही अत्यन्त सुन्दर हो, शरद कालीन विकसित नीलोत्पल की आभा वाले अति रमणीय हो, इससे भी कृष्ण कहलाते हो। आप अपनी चलन से चितवन से, उठन से, बैठन से, लटकन से, मटकन से, रास से, विलास से, हास से दर्शन से, स्पर्श से, आलिंगन से, चुम्बन परिरंभण से, वाणी से, व्यवहार से मुकुट से, कुन्डलों से,. वनमाल मुक्तामाल, हार, कंठा आदि कंठ आभूषणों से, बाजूबन्द, करधनी, नूपुर आदि से, मुरली से, लकुट से, पीताम्बर से यहाँ तक कि अपनी समस्त वस्तुओं से, समस्त व्यवहारों से सभी प्रकार से सबको अपनी ओर आकर्षित करते हो। अतः हे कृष्णचन्द्र ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ।

हे कृष्ण ! लोग तुम्हें वासुदेव कहते हैं अर्थात् मेरे भाई वसुदेव के सुत। जब कोई तुमसे तुम्हारा नाम पूछता है तो तुम भी कह देते हो, मेरा नाम वासुदेव है। आप तो स्वयं ही सब को अपनी ओर खींच लेते हो, फिर तुम कैसे खिच गये।

तुम वसुदेव के पुत्र कैसे बन गये ? इससे प्रतीत होता है, कि प्रेमाधिक्य से तुम भी खिँच जाते हो, प्रेम पास में तुम भी बँध जाते हो, जगत् पिता होकर तुम भी प्रेम वश पुत्र बन जाते हो। तभी तो तुम यदुवंश में आकर अवतीर्ण हो गये। और वासुदेव नाम से प्रसिद्ध हुए हो। आप सब के बाह्य और अभ्यान्तर में वास करते हो, इससे वासुदेव कहते होंगे। अथवा आपकी सुवास से यह विश्व व्याप्त है, आप की वासना त्रिभुवन में फैली हुई है, इससे वासुदेव कहावे होंगे। या इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को आच्छादन करके प्रकाशित होते होंगे इससे वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध होंगे, अथवा बलपूर्वक :आप सदा दैत्यों का असुरों का निरसन करते रहते हैं, उन्हें पछाड़ते रहते हैं, इससे वासुदेव कहलाते होंगे। अथवा भक्तों को सुप्रकाशित करने वाले एक मात्र आप ही धन होने से वासुदेव कहलाते होंगे। जो भी हो मैं तो अपने भाई वसुदेव को ही बड़भागी समझती हूँ, जिनके प्रेम के कारण आप वासुदेव कहाये। उनके मन में समाये। ऐसे श्यामसुन्दर आपको बारम्बार नमस्कार है।

हे वासुदेव ! भाई से भी भाग्यशालिनी मेरी भाभी देवकी है, भाई ने तो आपको मन में ही धारण किया था। किन्तु भाभी ने तो आपको गर्भ में ही धारण कर लिया। सम्पूर्ण विश्व जिसके उदर में है, उसे भाभी ने अपने उदर में धारण किया, उसे आनन्दित किया, इसलिये आप देवकीनन्दन कहलाये। अथवा देवकी लक्ष्मी का भी नाम है, उसे आनन्दित करने के कारण आप देवकीनन्दन कहलाते होंगे। अथवा दिव्य गुण वाली वृत्तियों से आप आनन्दित होते होंगे, किन्तु मैं तो तुम सम्बन्ध रहित से सम्बन्ध ही जोड़ना चाहती हूँ। अतः देवकी

भाभी के ही भाग्य की सराहना करती हुई तुम्हारी वन्दना करती हूँ।

हे देवकीनन्दन! भाई-भाई से भी बढ़ कर व्रजवासी नन्द जी, सम्पूर्ण गोप तथा गोपी प्रेम में अधिक हैं। वसुदेव जी के तो आप मन में ही आये, देवकी जी के केवल नौ महीने गर्भ में रहे, किन्तु उन गोप गोपियों के बीच तो आप ग्यारह वर्ष तक रहे। उनके तो आप कुमार ही बन गये। जैसे शरीर में कुष्ठ रोग सबसे भयंकर ऐसे ही मन में यह काम रोग बड़ा प्रबल और भयंकर है। इन्द्रियों के स्वामी इस मन का स्वभाव है आनन्दित रहना प्रसन्न रहना, निर्द्वंद रहना, किन्तु जब से इसे यह कुत्सित काम रोग लग गया है, तब से यह निरानन्द बन गया है, चिन्तित हो गया है। उस कुष्ठ काम को आप मार देते हैं, इसी से आप नन्द गोप कुमार कहलाते हैं। इसलिये हे नन्दनन्दन। आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

गोप गोपियों से से बढ़कर भाग्यशालिनी तो गौएँ हैं, जिन्हें आप चराते चराते वन वन घूमते रहे। कंटकाविद्ध अवनी पर नंगे चरणों से ही उनके पीछे पीछे फिरते रहे। गोष्ठ में ही सोते थे, गौओं में ही रहते थे। चराचर जीव आपकी सदा सेवा के लिये लालायित रहते हैं, किन्तु आप स्वयं गौओं की सेवा करते थे। गौओं की रक्षा के लिये ही आपने सात दिनों तक गोवर्धन पर्वत को धारण किया। तभी आपको 'गोविन्द' की उपाधि मिली। गोविन्द पद पर अभिषेक हुआ। अभिषेक तो युगल का होता है। महारानी के साथ अभिषिक्त मंत्रों का जल छिड़का जाता है। उस व्रज मंडल की एक मात्र अधीश्वरी, नित्य सीमन्तिनी तो वृषभानु नन्दिनी हैं। उनके साथ आपका गोविन्दाभिषेक हुआ। और वहीं मानों आपने समस्त ब्रह्मादि

देवताओं के साथ प्रतिज्ञा की कि पल भर भी मैं अपनी सीमन्तिनी से पृथक् न रहूँगा। सदा वृन्दावन बिहारी बन कर विहार करता रहूँगा। जिनके प्रेम के वशीभूत होकर ब्रज तज कर एक क्षण का भी कहीं नहीं जाते उन वृन्दावन बिहारी, गोपवेषधारी वनमाली गोविन्द के चरणों की मैं बार बार वन्दना करती हूँ।

हे गोपीजन वल्लभ! आप अपने भक्तों के लिये वांछाकल्प तरु हैं, तुम्हारे भावुक भक्त नेत्रों के रोगी होते हैं, उन्हें सुन्दरता निरखने का पीलिया होता है। वे सुन्दर ही देखना चाहते हैं जैसे पीलिया कमला रोग का रोगी सर्वत्र एक ही रंग देखता है इसी प्रकार भक्त गण आपके अंग-प्रत्यंग में अणु-अणु में रोम-रोम में सुन्दरता निहारना चाहते हैं। संसार में सबसे सुन्दर पंकज होता है। यद्यपि इसका जन्म कीच से-सड़ीवस्तु से-है, फिर भी इसमें कुल गत दोष नहीं आये। कीच में दुर्गंध होती है, इस में सुगंध है, कीच असुन्दर होती है, यह सुन्दर है, कीच शरीर में चिपकने पर दुख देती है, इसके स्पर्श से सुख होता है। कीच को देखने से मन में अरुचि होती है, इसके दर्शन से प्रसन्नता होती है। लक्ष्मीवान् पुरुष को प्रायः अभिमान होता है, तनिक सी भी श्री की झलक आने पर मनुष्य मद में मतवाला हो जाता है। किन्तु पंकज में तो चंचलालक्ष्मी सदा सर्वदा निवास ही करती हैं। फिर भी उसे अभिमान नहीं मद नहीं। चाहें जो उसके पास चला जाय चाहे जो जाकर तोड़ लावे। मछलियाँ उसे हिलाती रहती हैं, कभी क्रोध नहीं करता। दानी ऐसा कि सब के लिये इसका द्वार खुला रहता है। जो चाहे सुगन्ध ले, परागले मधुले, फूलले फलले, इसकी ओर से किसी को रोक टोक नहीं विषय भोग की सामग्री सम्मुख आते ही बड़े-बड़े ज्ञानियों का

मन भी विचलित हो उठता है, किन्तु यह सदा सर्वदा जल में रहते हुए भी उससे निर्लेप बना रहता है। प्रकाश को देखते ही खिल जाता है, तम को देखते ही सिकुड़ जाता है। इन्हीं सब गुणों से रीझ कर इसे सर्व रंग, सर्वसौन्दर्य, सम्पूर्ण शोभा प्रदान की गयी है। भक्त चाहते हैं हमारे भगवान् कमल नयन हों,कमल नाभ हो, कमल की माला धारण करने वाले हों, कमल के सदृश, कर चरण हों कमला के पति हों। इसीलिये आप कमलाकान्त बन गये हैं, भक्तों के नयनों को तृप्त करने के निमित्त आपने कमल की सी कमनीयता स्वीकार कर ली है।

आप इस जगत् के एक मात्र कारण हैं। आपने सोचा—" जगत् की सृष्टि भी करें तो कमल से ही करें। जिससे कमल के समान कोमल सृष्टि सभी को सुखकारी हो। सभी इसे देखकर प्रसन्न हों। अतः आपने अपने नाभि कमल से ही कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति की। जिन्होंने सृष्टि का विस्तार किया, इसीलिये आपका नाम कमल हुआ। हे समस्त सृष्टि के एक मात्र कारण कमलाकन्त! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप पद्मासन ब्रह्मा के भी जनक हैं सर्व श्रेष्ठ हैं।

हे पद्मनाभ! कमल वासिनी कमला अपने पिता सागर की गोद से उठकर हाथ में कमल की जय माला लेकर जब वर खोजने चली, तो सम्पूर्ण संसार में अपने अनुरूप सुन्दर कोई मिला ही नहीं। कमल वन में वास करने वाली बाला का दुलहा भी कोई सर्वश्रेष्ठ सुन्दर चाहिये, जिसके कंठ में कमल माला पहिनाकर सदा के लिये उसकी दासी बन जाय। अपने अनुरूप वर न पाकर कमला क्लान्त हो गयी, सहसा आपने अपने कमल नयन की कोट से कमला की ओर किंचित कटाक्ष किया, तुरन्त उसने कमल माला आपके कण्ठ में पहिना दी। वह अम्लान

कमल माला प्रिया का प्रेम चिन्ह समझकर आपने कभी उतारी ही नहीं, उसी दिन से आपको सब पंकज माली कहने लगे। हे रमारमण ! आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे पंकज माली ! आपके नयन भी कमल के समान सुन्दर तथा सदा प्रफुल्लित रहते हैं, जैसे कमल से मधु निकलता है और उसका पान भ्रमर करते हैं, उसी प्रकार आपके नेत्रों में कृपा रूपी रस सदा छलकता रहता है, इससे भक्त सदा परितृप्त रहते हैं। आप जिसकी ओर जिस भाव से देख दें दृष्टि डाल दें तत् चण वही हो जाय, आप सर्वज्ञ सर्व समर्थ दृष्टि से सृष्टि करने वाले हैं। हे नीरज नयनों वाले, हे अमृत रस वर्षिणी दृष्टि वाले ! श्याम सुन्दर मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

हे कमल नयम ! आप के चरण कमल इस भव सागर के पार करने को पोत के समान हैं। नौका या पोता का आश्रय लेने वाले तो कभी कभी झंझावात में पड़कर डूब जाते हैं, किन्तु जिन्होंने आपके चरणारविन्दों का आश्रय ले लिया है, वे कभी डूब ही नहीं सकते क्योंकि कितना भी ज्वार भाटा आवे कमल पानी में डूबता ही नहीं। अतः आपने दो कमल चरण प्रकटित करके जगत् को दिखा दिया है कि तुम चाहे दायीं ओर से आओ या बायीं ओर से। आ जाओ मेरे चरण कमलों के आश्रय में फिर संसार सागर पार होने में संदेह नहीं रह जाता। समस्त संशया, भय, शोक, मोह आदि का नाश हो जाता है अतः हे कमल नयन ! हे वनमाली ! आप के चरण कमलों में पुनः प्रणाम करती हूँ।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो। माँ कुन्ती ने इस प्रकार भगवान् के नामों को स्मरण करके नमस्कार की अब भगवान् की

लीलाओं को स्मरण करके-उनकी कृपाओं को याद कर करके जैसे प्रणाम करेंगी, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

देव ! देवकिहि दयो दुःख निज कंस बन्धु ज्यों।
दुरजोधन सुत सहित दयो मोकूं हरि दुख त्यों॥
माता तैहूं अधिक दया मोपै दरसाई।
विपति थारि ते बार-बार बनवारि बचाई॥
मेरी तो हे कृपानिधि, सुतनि सहित विपदा हरी।
बचि न सके सुत देवकी, रक्षा प्राननि की करी॥

कुन्ती स्तुति (३)

(४)

यथा हृपीकेश खलेन देवकी,
कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजाविभो,
त्वयेव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥*

(श्री भा० १स्क० ८ अ० २३ श्लो०).

छप्पय

मोदक गरल मिलाय भीमकूँ खञनि खवाये।
कृपा कृपानिधि करी सुधा दै प्रान बचाये॥
हमहिँ जरावन हेतु लाख को घर बनवायो।
खुल्यो खलनि षड्यन्त्र, कपट कछु काम न आयो॥
मग महँ मिल्यो हिडम्ब खल, बचे तासु निरभय भये।
कृष्णा करी विवस्त्र जब, कृष्ण वसन तुम बनि गये॥

जीव के साथ भगवान् के कितने अनन्त उपकार हैं, उन्हें जीव

---

* स्तुति करती हुई कुन्ती जी कह रही हैं—"हे हृपीकेश ! दुष्ट कंस ने आपकी माता देवकी को बन्दी गृह में रोक रखा था, आपने जिस प्रकार चिरकाल तक शोक मग्न हुई अपनी माता की रक्षा की थी, उसी प्रकार हे विभो ! पुत्रों के सहित आप अनाथों के नाथ ने मेरी भी विपत्तियों से बारम्बार रक्षा की है।"

भूल जाता है। माता कुन्ती कह रही हैं—'हे हृषीकेश ! आपके उपकारों को कहाँ तक कहूँ । एक दो उपकार हो तो उनकी गणना भी की जा सकती है, किन्तु आप तो पग-पग पर क्षण-क्षण में निरन्तर उपकार करते ही रहते हैं जीवों पर कृपा की वृष्टि अनवरत भाव से बरसाते ही रहते हैं। मेरे ऊपर आप ने इतनी अधिक कृपा की है, जितनी अपनी जननी देवकी के ऊपर भी नहीं की। मेरे ऊपर माता से भी अधिक ममता दरसायी है।

देखिये, देवकी जी के पिता तथा दूसरेभाई तो तथा परिवार वाले तो सब उनके पक्ष में थे, केवल उसका भाई दुष्ट कंस ही उसके विरुद्ध था। इधर हमारे तो सभी कौरव विरुद्ध थे। जैसे कंस देवकी को मारना चाहता था, वैसे ही कौरव हमें भी मारना चाहते थे। देवकी की रक्षा तो एक बार भैया वसुदेव ने की। उन्होंने कंस के हाथ से बचा लिया। किन्तु हे कृपा सागर ! मेरी तो केवल आप ने ही रक्षा की। आप के अतिरिक्त किसी ने मुझे नहीं बचाया, किसी ने सहानुभूति के दो अक्षर नहीं कहे। अतः मेरे तो आपही सर्वस्व हो। मुझे दुख देने वाले अधिक थे, मेरी विपत्तियाँ भी बहुत थीं, किन्तु आपने सभी से मुझे सरलता पूर्वक उबार लिया।

देखिये, कंस ने भाई भाभी को कारावास में बन्दी बनाकर डाल दिया था, वह चाहता था देवकी मर जाय उसने कारागार में बहुत दुःख सहे। हमें भी दुष्ट दुर्योधन वारणावत के लाक्षागृह में रोक रखा था। भीतर से तो हमें वह मारना ही चाहता था, किन्तु उसने प्रत्यक्ष हमें बन्दी घोषित नहीं किया। उस लाख के घर का नाम भी कारावास नहीं था, सभी उसे राजमहल ही कहते थे। वहाँ हमें कोई असुविधा भी नहीं थी। सभी राजसी भोग प्रस्तुत थे। देवकी जी तो कारागार में ११,१२ वर्ष तक रहीं,

किन्तु हमें तो उस वारणावत के राजमहल में कुछ ही दिन रहना पड़ा। कारावास में देवकी के ६ पुत्र हुए कंस ने उन सबको मार डाला। आपने उसके पुत्रों की रक्षा नहीं की, किन्तु हे अशरण-शरण! आपने तो मेरी भी रक्षा की और मेरे पुत्रों की भी रक्षा की।

हे दयासागर! देवकी की तो आप ने एक ही बार रक्षा की। उसकी हथकड़ी बेड़ी एक ही बार कटाई, किन्तु मेरे ऊपर तो विपत्तियों की बाढ़ सी आगयी थी। विपत्तियों की यह प्रतिज्ञा थी हम इसे डुबा कर ही छोड़ेगी और आपकी कृपा का यह निश्चय था कि हम इसे उबार कर ही छोड़ेगी, सो कृपासिन्धो! आपकी कृपा की ही विजय हुई मैं सभी विपत्तियों से बाल-बाल बच गयी, नहीं तो मेरे ऊपर जो विपत्तियाँ आयीं थी वे साधारण थोड़े ही थीं सरलता से मिटने वाली नहीं थीं। आप नाथ कृपा की कोट न करते आप दया न दरसाते, आप हाथ न बढ़ाते, आप यदि न अपनाते तो उनसे बचना असम्भव था।

मेरा प्राणप्रिय पुत्र वृकोदर अधिकाहारी है, उसे सवामन का तो कलेवा ही चाहिये। लड्डू उसे अत्यन्त प्रिय है इसीलिये मैं उसके लिये सदा लड्डू तैयार रखती हूँ। मेरे शत्रु जानते थे। भीम से कोई जीत नहीं सकता। यदि भीम को हम मार देंगे, तो निष्कंटक राज्य का भोग करेंगे। उनसे यह बात भी अविदित नहीं थी, कि भीम मोदक प्रिय है। उन दुष्टों ने बहुत ही सुन्दर मोदक बनाये मोती चूर के। कई मन लड्डू बनवाये। उनमें अत्यन्त तीक्ष्ण हलाहल विष भी मिला दिया था, एक लड्डू में नहीं सभी में। जिस विष की गंध से प्राणों का अन्त हो जाय, उसे न जाने कितनी अधिक मात्रा में उन आततायियों ने लड्डूओं में मिला दिया था। ऊपरी प्रेम प्रदर्शित करके उन्होंने आग्रह पूर्वक

सभी लड्डू मेरे उस नयनों के तारे प्यारे दुलारे पुत्र को खिला दिये। कोई भी व्यक्ति—सदाशिवशंकरको छोड़कर—इतने सारी विष से बच सकता है। किन्तु हे जगदाधार! आपने मेरे बच्चे को मरने नहीं दिया, यही नहीं वह विष उसके लिये अमृत बन गया। उसी विष के कारण उसका शरीर वज्र का बन गया और वह अपराजित हो गया। आप को इस अहैतुकी कृपा के सम्बन्ध में क्या कहा जाय?

हे कृष्ण चन्द्र! तुम्हारी शीतल छाया में महान् अग्नि को लपटें भी चन्दन के समान शीतल बन जाती हैं। दुष्टों ने अपनी करनी में कुछ कोर कसर नहीं छोड़ी थी। वह घृत, चरबी, तेल, सन, गंधक, कपूर, बाँस, घास, लकड़ी तथा और भी तुरन्त भभक उठने वाली वस्तुओं को मिट्टी में मिलाकर बनाया गया था। यदि श्याम सुन्दर! हमें बचाने में आप एक क्षण का भी बिलम्ब करते तो हम माँ, पूत सभी उसमें जलकर भस्म हो जाते, किन्तु अनुग्रह की अपार दृष्टि करके हमें उस दावानल से भी प्रबल वैश्वानर के कोप से बचा लिया और शत्रुओं को पता भी नहीं चलने पाया।

हे विपति भंजन! विपत्तियों ने तो गढ़ बना कर हमें घेर लिया था, किन्तु आप का वरहस्त सदा हमारे ऊपर था। खाई से निकल कर हम कुएँ में गिरने वाले थे, कि आप ने हाथ पकड़ कर खींच लिया। मृत्यु के मुख से बचा लिया। मनुष्यों के मांस को ही खाने वाला पुरुषाद हिडंब हमें घोर वन में मिला। वह अत्यन्त भूखा था। अपने आहार हमें देखकर उसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वह बड़े-बड़े मनसूबे बाँधने लगा। इनका मांस कोमल है। ये सुकुमार हैं,मोटे भी हैं। आज सब को खाकर मैं पूर्ण तृप्त का अनुभव करूँगा। इस प्रकार वह हमें खाना चाहता

था, तुम हमें बचाना चाहते थे, अतः तुमने भीम के हाथ से उस दुष्ट को मरवा दिया, और उसकी बहिन को भीम की बहू बना दिया। वन मे मुझे बहू का सुख पहुँचा दिया। सास बनने में कितना सुख है, यह उस विपत्ति के समय में भी अनुभव करा दिया। कहाँ तक आपके उपकारों का कथन करूँ !

हे प्रणत प्रतिपालक ! धूत सभा में दुष्टों के षड़यन्त्र से मेरे पुत्र अपना सर्वस्व हार गये थे। यहाँ तक कि युधिष्ठिर ने मेरी परम सुकुमारी प्यारी बहू को भी दाव पर लगा दिया था। और उसे भी हार गये थे। तब कुलांगार नीच उसे भरी सभा में नग्न करना चाहते थे। मासिक धर्म में प्राप्त अस्पर्श्या मेरी पतोहू को वे अधम भरी सभा में पकड़ लाये थे,तब हे केशव ! आपने ही उसकी लाज बचायी। तब हे वासुदेव ! आपने ही वसन वेष बना लिया। आपके सजीव अवतार तो सुनने में आये थे, कच्छ, मच्छ, वाराह, सूकर, नरसिंह, हयग्रीव तथा हंस आदि जल चर, नभ चर, भूचर अवतार तो सुने थे, किन्तु वस्त्रावतार के दर्शन उसी दिन सबको हुए। आपने साड़ी में ही अपना अक्षय अपार अनन्त तथा अनादि रूप दिखाकर विपक्षियों को विस्मित बना दिया। सम्पूर्ण सभा स्तम्भित रह गयी। द्रुपद सुता तुम्हारी करुणा को स्मरण करके बारम्बार विलाप करने लगी। आपने स्पर्शास्पर्श का भी विचार नहीं किया। हे पतित पावन ! आपकी प्रणत पालकता की परिधि का पार प्राणी क्या पा सकते हैं ?

हे वनवारी ! हे वन माला धारी ! हे वृन्दावन विहारी ! विपत्तियों ने मेरे पुत्रों को वन में भेज दिया था। बहुत से ब्राह्मण भी स्नेह वश उनके पीछे लग लिये। वहाँ उनके भोजन की व्यवस्था हे विश्वम्भर ! आपने ही की। दुर्योधन ने शाप दिवाने

के निमित्त क्रोधी मुनि दुर्वासा को उनके समीप सिखा पढ़ाकर भेजा था, किन्तु शाकान्न से तृप्त होकर आपने कृष्णा को क्लेश से बचाया। पुत्रों को चिन्ता मुक्त किया। अजगर से बचाया तथा पग पग-पर उनके क्लेशों को मिटाया।

हे महामहिम! महाभारत के युद्ध में तो जैसे माता अपने अबोध शिशु की रक्षा करती है चिड़िया अपने अंडों को हृदय से लगाकर सेती है। वैसे ही तुमने मेरे पुत्रों की अपनी छत्र छाया में रक्षा की। कोई उनका कुछ बिगाड़ नहीं सका। कोई प्रबल प्रहार नहीं कर सका। कोई उन्हें पूर्णतया पराजित नहीं कर सका। कोई उन्हें मार नहीं सका। कोई उनके बल पराक्रम की थाह नहीं पा सका। मैं तो भयभीत हो रही थी। समस्त भूमण्डल को इक्कीस बार नरपति हीन करने वाले अजेय भगवान् के अवतार परशुराम को भी जिन्होंने युद्ध में सन्तुष्ट किया था। उन भीष्म पितामह से कौन लड़ सकेगा। उनके साथ युद्ध करने का साहस किसका है। वे अवश्य ही मेरे पुत्रों को मार डालेंगे। किन्तु वे भी आपकी दया से शरशैया पर सदा के लिये शयन कर गये।

जिन महापराक्रमी द्रुपद को पशु सदृश बँधवाकर अपने शिष्य से जिन्होंने मँगवा लिया था। ब्राह्मण होकर भी जिन्होंने युद्धों करना स्वीकार किया था। देवता भी जिनका नाम सुनकर थर थर काँपते थे, उन मेरे पुत्रों के भी गुरु द्रोणाचार्य के सम्मुख खड़े रहने का साहस कौन शूरवीर कर सकता था। जो क्षण भर में सम्पूर्ण सृष्टि को अपने अमोघ अस्त्र शस्त्रों सेयप्रलय करने में समर्थ थे, उन आचार्य द्रोण से मेरे पुत्रों की रक्षा ही नहीं उनसे विजय करा दी। ऐसे तुम कर्तुमकर्तुं अन्यथा कर्तुं की करुणा का कथन कैसे कर सकते हैं।

हे करुणाकर! कर्ण मेरा ही पुत्र था, किन्तु वह दुष्टों के फंदे

में फँस गया था। मेरे पुत्रों का शत्रु बन गया था। इसमें दोष मेरा ही है, उसने आप की शिक्षा धारण नहीं की। आपकी आज्ञा नहीं मानी। जो आपके विमुख है उसकी रक्षा की भीख मैं किस मुख से माँगती। वह मर गया, इसका मुझे दुख है किन्तु वह जीता तो मुझे अर्जुन से हाथ धोना पड़ता। अर्जुन आपका सखा है, शिष्य है, भक्त है, आप के भक्त का तो कभी नाश होता नहीं। उसकी रक्षा तो आप करते ही हैं। कर्ण सूत पुत्र के नाम से मरा, कुन्ती के तो आप ने सभी पुत्रों की रक्षा की।

युद्ध के पश्चात् भी अश्वत्थामा ने मेरे वंश को निर्बीज करने के निमित्त ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था, उसे भी आपने व्यर्थ बना दिया। मेरे वंश को बचा लिया, अभिमन्यु की थाती की रक्षा उत्तरा की प्रार्थना पर आप ने की। हे माधव! कहाँ तक गिनाऊँ। जब भी विपत्ति पड़ी आप दौड़े आये, दर्शन देकर दुख दूर किया। अब सम्पत्ति का भुलावा देकर हमसे दूर जा रहे हैं। हम ठुकराये जा रहे हैं न भगवन हमें ऐसी सम्पत्ति नहीं चाहिये। इसे आप अपने साथ लेते जाइये। हमें तो आप चाहिये आप।

सूत जी कहते हैं—मुनियो! अब कुन्ती माता एक विचित्रवर माँगेगी, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

वन महँ विपति अपार पार प्रभु तुमनि लगाये।
समर सारथी बने शस्त्र सब व्यरथ बनाये॥
गुरुसुत अवई अस्त्र ब्रह्म कुल नाशक छोरे।
कुल की कानि बचाय बीच महँ सब सर तोरे॥
कब-कब की केशव कहूँ, क्लेश कबहुँ काहू करी।
तबहिँ प्रान, प्रन, धन, धरम, हरन हार हार्यो हरी॥

कुन्ती स्तुति(४)

(५)

विपदः सन्तुनः शश्वत् तत्र तत्र जगद् गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥*

(श्री भा० १ स्क० ८ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

सतत विपति महँ संग रहो शिशु सम अपनाओ ।
दै धन संपति देव ! दूरि अब हम तैं जाओ ॥
ऐसी संपति नाथ ! त्यागि तुमकूँ नहिँ लेवैं ।
दरसन पुनि-पुनि मिलहिँ बिपति वर यदु वरादेवैं ॥
इन्द्रिय सुख सम्पति मिलै, जनम मरन पुनि-पुनि जगत ।
विपति विदारन दरस तब, जग आवन जावन हरत ॥

हे जगत् गुरो ! हे वरदानियों में श्रेष्ठ ! आप द्वारिका जा रहे हैं, तो जायँ। मैं तुम्हारी बुआ हूँ जाते समय मुझे कुछ देते तो जाओ । मैं पल्ली पसार कर तुम से यही वर माँगती

---

* कुन्ती जी स्तुति करती हुई कह रही हैं—'हे जगत् गुरो ! हम पर सदा सर्वदा विपत्तियाँ ही पड़ती रहीं, जिससे आप उन्हें बचाने के लिये आते रहे और संसार की प्राप्ति न कराने वाले आप के देव दुर्लभ दर्शन हमें बार-बार मिलते रहें ।'

हैं, कि हम पर जितनी भी अधिक विपत्तियाँ आवें उतनी ही उत्तम हैं। पग-पग पर सदा सर्वदा हम पर विपत्तियाँ आवें। क्योंकि जो आपके अनन्य उपासक हैं, उनकी विपत्तियों को आप देख नहीं सकते। आप भक्तों की पुकार सुनकर अपने स्थान पर स्थिर रह नहीं सकते। उस समय आप अपने आश्रितों को दर्शन अवश्य देते हैं। तभी तो आपके शरणागत प्रपन्न विपत्तियों में आपके दर्शन होते हैं। प्रह्लाद जी को उसके पिता ने विष दिलाया सर्पों से कटाया, पर्वतों से गिराया, समुद्र में गिराया, हाथियों से रुँदवाया, अग्नि में जलवाया किन्तु वे सभी समय प्रसन्न ही रहे। हँसते ही गये। क्योंकि उन्हें जल में, थल में अनल में, गरल में, नग में तथा गगन आदि में सर्वत्र तुम दिखायी देते थे, किन्तु जब वे राजा हो गये तो नैमिषारण्य में साक्षात् नर नारायण रूप से तपस्या में निरत आप से ही युद्ध करने को तैयार हो गये। आपको पितृहा मानकर सेना सजाकर आपसे युद्ध करने चल दिये। धन सम्पत्ति का अभिमान होता ही ऐसा है। इसलिये हे निर्धनों के धन! जिस विपत्ति में आपके दर्शन हों वह विपत्ति सहस्रों सम्पत्तियों से श्रेष्ठ है और जो सम्पत्ति हमें आप से पृथक् कर दे आप हमें भुला दें। वह सम्पत्ति लाख विपत्तियों से बढ़कर है। अबतक आप छाया की भाँति प्राणों की भाँति हमारे साथ रहे। मेरे पुत्र महाभारत के युद्ध में युद्ध करने के अनन्तर अपने-अपने शिविरों में सुख से सो जाते थे। किन्तु हे हृषी केश! आपके नयनों में नींद कहाँ। अर्जुन के घोड़ों को मलकर उन्हें दाना पानी खिलाकर, उनके घावों को धोकर उनमें का ओषधि उपचार करके धनुष बाण लिये रात्रिभर वीरासन से शिविर के सम्मुख बैठे रहते थे। कहीं कोई विपत्ति न आ जाय, कहीं मेरे भक्तों का कोई अनिष्ट न कर दे। भक्त सोते थे भगवान् जाग कर पहरा देते थे। यह तो विपत्ति की संभावना में ऐसा था। साक्षात् विपत्ति के

समय तो आप स्वयं दृष्टि गोचर होते थे। विपत्ति में तो हम थे, किन्तु उसकी चिन्ता आपको थी। किन्तु आज आप निश्चिन्त होकर हमें छोड़कर जा रहे हैं। इसीलिये न कि अब तो धर्मराज को सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ मिल गयीं। अब तो वे भूमंडल के राजा हो गये। अब तो उनकी समस्त विपत्तियों का अन्त हो गया। जिस सम्पत्ति के पाने पर आप पीठ फेर लें, आप दूर चले जायँ और आप के द्वारा विपत्ति भंजन होने पर भक्त आपको भूल जायँ तो वह सम्पत्ति तो विपत्ति से भी बढ़कर क्लेश कारिणी है। ये संसारी विपत्तियाँ यथार्थ विपत्तियाँ नहीं हैं और न इन्द्रिय सुख जन्म सम्पत्तियाँ यथार्थ सम्पत्तियाँ ही हैं। जिसके द्वारा आपका स्मरण हो, वह सम्पत्ति और जिसके द्वारा आप विस्मरण हो जायँ वही विपत्ति, सम्पत्ति तो संसृति का हेतु है. किन्तु आप का दर्शन अपुनर्भव कारक है, आवागमन का छुड़ाने वाला है। जन्म मरण को मिटाने वाला है, चौरासी के चक्कर को चुकाने वाला है। भवसागर से पार लगाने वाला है। इसलिये हमें बार बार संसार में गिराने वाली सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं। हमें तो भव को भंजन करने वाले आपके देव दुर्लभ दर्शन चाहिये और अभिमानियों को आप दर्शन देते नहीं। अतः अभिमान की जड़ इस सम्पत्ति को किसी और को दे दीजिये मुझे। तो वे ही वनवास की विपत्तियाँ चाहिये।

हे अकिंचन गोचर ! संसार में चार अभिमान सबसे बड़े माने गये हैं। *जन्मका अभिमान, ऐश्वर्यका अभिमान, विद्या का अभिमान,* और श्री-शोभा का अभिमान। इन अभिमानों में मद वाला पुरुष आपको आर्त होकर पुकार नहीं सकता। आपके नाम संकीर्तन को नहीं कर सकता। सबके सम्मुख ताली बजाकर नाच नहीं सकता। जाति का अभिमान इस अर्थ में हो, कि हमारा जन्म उत्तम कुल में हुआ है, हमें जिन कार्यों से प्रभु की प्राप्ति हो उन

उन उत्तम कार्यों को ही करना चाहिये। किसी भी परिस्थिति में चोरी जारी परनिंदा आदि अधम कार्य न करना चाहिये। तब तो उचित भी है किन्तु हमारा कुल श्रेष्ठ है, किसी को क्यों नवें, किसी से क्यों बोलें, सब हमारा पूजा करें हम जो चाहें सो करें, हमें रोकने टोकने वाला कौन है। जिन्हें ऐसा कुलागत अभिमान हो जाता है, उनसे आप दूर चले जाते हैं। उनके हृदय में आप सबसे प्रबल दस्यु अभिमान को बिठा देते हैं, जिससे आपका नाम लेने में भी संकोच करता है।

संसारी ऐश्वर्य का भी बड़ा अभिमान होता है। जब हम पर कुछ नहीं था, तो प्रत्येक आवश्यकता के समय आपका ही स्मरण करते थे। पूर्ति होने पर आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते थे। कि ऐसे समय भी भगवान् हमारी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं, किन्तु ऐश्वर्य हो जाने पर आप को लोग भूल जाते हैं। यही सोचते हैं। यह काम मैंने अपने पुरुषार्थ से किया। अमुक शत्रु को मैं अपने अपार ऐश्वर्य से परास्त कर दूँगा। मेरे पास प्रचुर ऐश्वर्य है, मेरे समान दूसरा कौन हो सकता है। इस प्रकार ऐश्वर्य के मद में मत्त हुआ मानव अन्धा हो जाता है। उसे आप तो दीखते नहीं। आपके भक्तों का भी वह अपमान करता है। अतः हे अखिल ऐश्वर्य के एकमात्र नियामक! हमें अन्धा बना देने वाला ऐश्वर्य नहीं चाहिये।

हे वेदान्तवेद्य वासुदेव! विद्या का भी बड़ा भारी अभिमान होता है। वैसे विद्या का मुख्य कार्य तो मुक्ति का मार्ग दिखाना ही है, किन्तु मनुष्य विद्या पढ़कर बौरा जाते हैं, वाद विवाद में ही इसका उपयोग करते हैं। अभिमान बढ़ाने का ही साधन बना लेते हैं। हम बड़े पण्डित हैं, विद्वान् हैं, ज्ञाता हैं, शास्त्रज्ञ हैं, सुधी हैं, मेधावी प्राज्ञ तथा सुधी हैं। इसी अभिमान में—समस्त

विद्याओं के एकमात्र आश्रय आपको वे भूल जाते हैं। संसार में कुलागत अभिमान अत्यन्त ही कठिन है। उससे भी बढ़कर ऐश्वर्य का अभिमान है। ऐश्वर्यशाली व्यक्ति कुलीनों का भी अपमान करता है। ऐश्वर्य से भी बढ़कर अभिमान विद्या का है। विद्वान् कहता है, कुलीनोंके कोई सींग होते हैं, ऐश्वर्यशाली होंगे तो अपने घर के होंगे। उन्हें उनके आस पास के परिचित लोग मानते होंगे। मेरे पास वह विद्या है, कि जहाँ भी जाऊँ वहीं पुज सकता हूँ। "स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते"। कितना भी ऐश्वर्यशाली नरपति-शासक-हो, उसकी पूजा उसी के प्रदेश में होगी। बाहर उसे कोई पूछता भी नहीं,किन्तु विद्यावान् तो अपनी विद्या के प्रभाव से सर्वत्र आदर पावेगा। इस कारण विद्या का अभिमान सबसे बड़ा है।

हे कमलाकान्त! भगवती श्री तो सदा आपके ही चरण पलोटती रहती हैं। सच्चे श्रीमान् तो आप ही हैं, श्री आपकी दासी है। समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री और ज्ञान, वैराग्य इन ६ का नाम 'भग' है जिस पर ये हों वही 'भगवान्' है। इसलिये भगवान् तो आप ही हैं। यथार्थ श्री की कुछ छाया संसारी वस्तुओं पर पड़ी है। उसी छाया को पाकर लोग बौरा जाते हैं। कोई स्त्री या पुरुष तनिक सुन्दर हों, चेहरे मोहरे का कटाव-छटाव कुछ आकर्षक हो, चतुरचितेरे ने चमड़ी पर कुछ रङ्ग गोरा आकर्षक चढ़ा दिया हो। नेत्रों में पानी कुछ चटकीला फेर दिया हो। फिर देखो उसके अभिमान को। बारम्बार दर्पण में मुख देखेगा। सदा सुन्दरता के अभिमान में डूबा रहेगा। कोई कार्य किया, उसमें शोभा आ गयी। सभी से पूछेगा, मेरे कार्य की कैसी अनुपम शोभा है। ऐसी शोभा कहीं अन्यत्र आपने देखी है। श्री के अनेकों रूप हैं। सम्पत्ति श्री,राज्य श्री, ब्राह्मी श्री, स्वच्छता की श्री, कान्ति, ह्री, लक्ष्मी, शोभा आदि सभी चित्त को अपनी ओर

आकर्षित करने वाली सामग्री श्री के ही अन्तर्गत हैं। इसलिये संसारी श्रीमानों को अभिमान भी अधिक होता है। उसमें मादकता की मात्रा विशेष रहती है। हे निष्किञ्चन ! जन प्रिय यदुनन्दन ! इन मदों से मत्त पुरुष सकल सुखसार आपके सुमधुर नामों का संकीर्तन भला किस प्रकार कर सकता है।

हे दीन दयालु ! आप माया प्रपञ्च से सदा सर्वदा रहित हैं। निर्धनों के धन हैं, अशरणों के शरण हैं, अकिंचनों के कञ्चन हैं, स्वयं ही आत्मा में रमण करने वाले हैं, शान्ति के तो स्वयं स्वरूप ही हैं। शान्ति देवी ने आपको सर्वथा अपने अनुरूप बना लिया है। या आपने ही उन्हें अपने में मिलाकर अर्धनारी नरेश्वर शान्तस्वरूप बन गये हैं। मोक्ष के आप एकमात्र अधिपति हैं। आपकी अनुमति के बिना मोक्ष किसी की ओर दृष्टिपात भी नहीं कर सकती। इसलिये हे अपवर्ग पति ! आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। आपको बारम्बार नमस्कार है।

हे सर्वनियन्ता ! बर्बरीक ने ही आपका यथार्थ रूप देखा था। वर्वरीक ने जब अणुचूर्ण की पिटारी खोलकर समस्त सेना को क्षण भर में ही भस्म करने का अभिनय करना चाहा। तो आपने तुरन्त उसका सिर काट लिया। युद्ध देखने की इच्छा करने पर आपने उसके सिर को शमी के वृक्ष पर लटकादिय और केवल सिर से ही सम्पूर्ण युद्ध देखने की शक्ति भी प्रदान की। तब उसने युद्ध के अन्त में यही बताया, कि कालरूप होकर आप ही समस्त प्राणियों का संहार कर रहे हैं। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई किसी को मार नहीं सकता। अतः हे काल स्वरूप ! आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार है।

हे नायक ! आप ही चराचर के नियन्ता हैं। हे अनादि ! आप के आदि का पार पाना सभी की बुद्धि के बाहर की बात है।

शशक शृंग का कहीं धनुष बन सकता है? वन्ध्या के पुत्र का कहीं विवाह हो सकता है? वट पीपल के पुष्पों की कहीं माला बन सकती है? आकाश कुसुम से कहीं देवार्चन सम्भव है? आकाश में फूल खिलते ही नहीं तो अर्चन कैसे हो। इसी प्रकार जब आपका आदि ही नहीं तो कोई कैसे कह सकता है। कि आप अमुक समय से हैं। इसी प्रकार आप का कभी अन्त भी नहीं। सदा सर्वदा समान रूप से रहते हैं। इसीलिये अनन्त कहलाते हैं।

हे समदर्शी! हे सर्वव्यापक! विश्वमें कहीं भी कोई ऐसा स्थान नहीं,जहाँ आप न हों। आप भेदभाव से रहित हैं। आप के लिए न कोई ऊँचा है न नीचा। न कोई छोटा है न बड़ा न कोई हेय है न उपहेय, न कोई त्याज्य है न ग्राह्य। जो आप में भेद देखते हैं, वे स्वयं ही भेद-भाव को प्राप्त होते हैं। विषम दृष्टि वालों को ही आप में विषमता के दर्शन होते हैं। आप ने इस अपनी दासी माया को ऐसा सिखा पढ़ा रखा है। कि यह जीवों के संमुख ऐसा परदा डाल देती है कि जो होता नहीं वह दीखने लगता है। आप में विषमता का लेश नहीं किन्तु उन माया के कारण जिनकी बुद्धि विषम बन जाती है उन्हें सर्वत्र आप में विषमता दृष्टिगोचर होती है। आप का न कोई प्रिय न अप्रिय, न कोई शत्रु न मित्र आप प्राणी मात्र के समानभाव से सुहृद हैं। फिर भी कुछ लोग आप को शत्रु ही मानकर आप से व्यवहार करते हैं। हे नटवर! आप भी तो पूरे लीला धारी ही हो बहुरूपिया हो। जब आपकी इच्छा होती है, तभी विचित्रलीला रच देते हो। उसी से प्राणी विमोहित बन जाते हैं। मानव शरीर धारण करके मानवाकृति बना कर ऐसा स्वाँग रचते हो, कि सब मंत्र मुग्ध होकर उस लीला में सब कुछ भूलजाते हैं। क्या न करोगे क्याकर डालोगे इसका किसी को पता ही नहीं चल सकता। ऐसी ऐसी मनमोहिनी लीला करते हो कि वहाँ मानवीय विशाल बुद्धि भी विमोहित बन जाती है।

हे विश्वम्भर ! मनुष्य ही बन कर लोगों को मोह में डालते हो, सो भी बात नहीं। कभी आप मछली बनकर जल में रेंगने लगते हो। कभी कछुआ बनकर पीठपर मन्दराचल को धारण करके निद्रा का सुखलेते हो। कभी सूअर बनकर खों खों करते फिरते हो। कभी मूँछ बढ़ा कर मुँह फाड़ कर नखों से अँतड़ियों को कुरेदते हुए वीभत्स रूप दिखा देते हो। कभी वामन बनकर भीख माँगने लगते हो। कभी फरसा लेकर निर्दयता का नाटक दिखाकर मार धाड़ मचा देते हो। कभी पर्वतों में जाकर ऋषियों की भाँति आसन बाँधकर तपस्या करने लगते हो। कभी स्त्री के वियोग में वन वन में रोते हुए घूमते हो, कभी पक्षी बनकर उड़ने लगते हो। कभी दाता बनकर देने लगते हो, कभी भोक्ता बन कर खाने लगते हो। ये सब आपकी लीलायें तो मैंने सुनी हैं, देखी नहीं। किन्तु इस अवतार में जो आपने विश्वविमोहन नाटक किया, उससे तो बड़े-बड़े ज्ञानियों की बुद्धि चक्कर में पड़ गयी। वेदगर्भ सर्वज्ञ चतुर्मुख ब्रह्मा भी मोह में फँस गये, कि यह गँवार गोपों का जूठा खाने वाला बालक अवतार कैसे हो सकता है। हे नट नागर! एक दृश्य मुझे कभी भी नहीं भूलता उस नाटक को रचकर तो आपने संसार में सरसता की धारा ही बहा दी। अपनी भक्तवत्सलता का अनावरण दर्शन ही करा दिया। हे नाथ! जब मुझे वह लीला स्मरण हो आती है, तो हृदय गद् गद् हो जाता है। आँखों में आँसू आ जाते हैं। चित्त चंचल हो उठता है। मुझे आपकी भोली-भाली बाल्यकाल की वह मन भावनी सुंदर सलौनी सूरत जब याद आती है। तो अन्तःकरण सरस हो उठता है। उस समय कौन कहेगा, कि आप अवतार हो। साक्षात् जगन्नियन्ता, अपवर्गपति तथा जगबन्धन से छुड़ाने वाले हो। प्रभो! आप की वह भोली भाली मनोहर मूर्ति मेरे मन मंदिर में आगे आगे बाल क्रीड़ा करती रहे। उसे मैं कभी भुला न सकूँ।

सूत जी कहते हैं—मुनियो आगे कुन्ती जी स्तुति करती हुई बाल्यकाल की यशोदानंदन की एक लीला झलक प्रस्तुत करेगी। उस प्रसंग को मैं आगे वर्णन करूँगा।

छप्पय

जनम, विभव, श्रुति सिरी अहंता मद उपजावैं।
बनि मतवारे मनुज मधुर तव नाम न गावैं॥
निरधन के धन श्याम काल के काल कहाओ।
निराकार निरलेप सृष्टि साकार कराओ॥
शत्रु, मित्र-निज भाव तैं, समुझैं सबके ईश हो।
पुनि-पुनि पद पदुमनि परूँ, जगन्नाथ जगदीश हो॥

कुन्ती-स्तुति (५)

(६)

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दामतावत्,
यावे दशाश्रुकलिलाञ्जन संभ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भय भावनया स्थितस्य,
सा मां विमोहयति भीरपि यद् बिभेति ॥*
(श्री भा० १ स्क० ८ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

जल, थल, नभ चर बनो भाव भगवान् सुनाओ।
नर पशु पक्षी रूप धारि लीला दरसाओ ॥
कौतुक क्रीड़ा कलित करी कर कज्जल भरिकें।
बाँधे यशुमति छरी देखि रोये तुम डरिकें ॥
कजरारे लोचन कमल, चंचल कातर भय भरे।
मीड़ि मीड़िकें युगल कर, माँ भयतें करे करे ॥

हे दामोदर ! सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी होकर भी आपने कैसी-कैसी कमनीय कलित क्रीड़ायें कीं। जिनके स्मरण मात्र से बुद्धि को मोह हो जाता है प्रज्ञाकुंठित बन जाती है। ब्रज में तो आपने वात्सल्य रस की सरिता ही बहा दी।

---

* कुन्ती जी स्तुति करती हुई कह रही हैं—"हे यशोदा नन्दन ! आपने गोपी यशोदा का अपराध किया था। अतः आपको बाँधने के लिये उसने हाथ में दाम रस्सी ली थी। उस समय आप अधिक भयभीत

भक्तवत्सलता की पराकाष्ठा ही प्रकट कर दी। अपनी भगवत्ता सर्वथा भुला दी, बालकपन के अद्भुत छटा दिखादी, जग के कर्ता ब्रह्माजी भी चक्कर में फँस गये।

हे यशोदा नन्दन ! आप बालक बन गये थे, बालक भी इतने भोरे भारे कि माँ के बिना किसी को अपना रक्षक समझते ही नहीं थे। *माँ के खिलाने से खाते, माँ के पिलाने से* पीते, माँ के बिठाने से बैठे जाते और माँ के डराने से डर जाते। सर्वस्वतन्त्र आज ब्रज में आकर सर्वथा परतन्त्र बन गया। *अनिल अनल, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश को डराने वाला* आज माता के आधीन हो गया। उसकी भृकुटि विलास के संकेत पर नाचने लगा। अपनी प्रभुता सर्वथा स्वतंत्रता को खो बैठा। यदि कभी भूलसे भी कोई स्वतंत्र आचरण करता तो पिटता, परतन्त्र ही जो ठहरा।

एकदिन आपने धृष्टता कर डाली। परतन्त्रता के प्रति आपने *सनातन स्वभावानुसार विद्रोह कर दिया। माता की बिना आज्ञा* के अपने को स्वतन्त्र कर्ता मानकर दही के भांड को क्रोध में भर कर फोड़ डाला। यह आपने परतन्त्रता के सर्वथा विरुद्ध *आचरण किया।* जो परतन्त्र है, *उसे क्रोध भी न करना चाहिए* और जिसके अधीन है, उसके बिना पूछे विरुद्धाचरण भी न करना चाहिये। आपने ये दो अपराध आवेश में आकर कर तो डाले, *किन्तु तुरन्त अनुमान करने लगे, कि मुझसे अपराध* बन गया है, किन्तु डरने मात्र से ही तो काम चलने का नहीं, अपराध के लिये दंड भोगना पड़ेगा माता आप को प्रताड़ना करेंगी, *समुचित शिक्षा देंगी।*

से होकर अपनी काजल से भरी आँखों से आंसू बहाते हुए नीचा मुख करके खड़े थे। भय भी जिनसे भय मानता है। ऐसे आपकी इस प्रकार की दशा देखकर आज भी मैं मोह में पड़ जाती हूँ।

हे गोपी जन वल्लभ ! आज आप की सिट्टिपिट्टी भूल गयी नित्य ही ब्रज बालाओं को खिझाने वाले आप पकड़े गये। अपराधी के कठहरे में खड़े कर दिये गये। अब अपने अपराध का स्पष्टीकरण करो। किन्तु करते क्या ? अपराध तो प्रत्यक्ष है, चोर तो घटनास्थल पर ही पकड़ा गया है। दंड देने के लिये साक्षी की आवश्यकता नहीं। माँ ने तो दंड देना स्थिर कर लिया, छड़ी आकाश में उठायी। आप सहर उठे, इतने भयंकर दंड को सहन करने में अपनी असमर्थ व्यक्त की। माँ भी समझ गयी, न्यायाधीश के हृदय में भी दया दिखायी देने लगी, छड़ी फेंकदी, फिर कर्तव्य ने प्रेरणा की। माता ने रस्सी उठायी, अच्छा तुझे आज बाँधूगी। छड़ी की मार से रस्सी का बन्धन कुछ सरल दंड है ही, भय तो बना ही हुआ है। माता ने पुनः एक बार स्पष्टीकरण का अवसर दिया—"क्यों रे ! तू बोलता क्यों नहीं ? बता तैने दधि भांड क्यों फोड़ा ?"

कुछ सूझे तो उत्तर दे भी—"मन में आया कह दूँ मैंने ही बनाया, मैंने ही फोड़ दिया। मैं स्वेच्छा से बनाता हूँ, इच्छा होती है तब तक स्थिति रखता हूँ, पालन करता हूँ, इच्छा होती है, तब फोड़ देता हूँ। नष्ट कर देता हूँ मैं सर्व स्वतंत्र हूँ। मुझे किसी से पूछना नहीं, किसी के अधीन नहीं, काल का भी काल हूँ।"

फिर सोचा—"माँ इस बात को मानेगी नहीं, वह मेरी स्वतंत्रता स्वीकार ही न करेगी। पाँच वर्ष से छोटा बालक जो बना हुआ हूँ। मेरी ही वचन है —"ताडयेत् पंच वर्षाणि" पाँच वर्ष तक के बालक को ताड़ना देने का अधिकार है। माँ मारेगी अवश्य। मारेगी न भी तो बाँधने में तो कोई सन्देह नहीं। अब तो माँ के मन में किसी प्रकार यह गाड़ दया आजाय। दया आती है, भोरे पन को देखकर, कातरता को निहार कर, भय विह्वलता को अवलोकन करके लाओ इन तीनों का प्रदर्शन करूँ। इसलिए

आप अति चपल होने पर भी परम भोरे बन गए। सदा प्रसन्न होने पर भी परम कातर हो गए। निर्भय निगले होकर भी भयभीतों की सी आकृति बना ली। माता को द्रवित करने के लिये आपने मन मोहक विस्मय कारक अभिनय रचा। उस समय जो आप तनिक कम्हर को झुकाकर, दोनों पैरों को जमाकर, मुख नीचा किये कारे कारे कजरारे नयनों से मोतियों की भाँति अश्रु विन्दु ढरकाते हुए, दोनों बड़े-बड़े नयनों को मींड़ते हुये भोली सूरत बना कर खड़े हुए बड़े ही भले लगते थे। नेत्रों ने आपका क्या बिगाड़ा था, उन्हें आप अकारण क्यों दंड दे रहे थे। दोनों हाथों की लाल हथेलियों से मींड़ मींड़ कर उन्हें अपनी ही भाँति कृष्ण वर्ण की क्यों बना रहे थे ?

बात यह थी, कि भीतर से तो आप को भय था नहीं। भय का अभिनय कर रहे थे। अश्रु आते हैं आन्तरिक दुख के कारण—हृदय द्रवीभूत होने पर—इसलिये नेत्र खिल रहे थे। आप चाहते थे आंसू आवें तो माँ का हृदय पसीजे। नेत्र कह रहे थे, भीतर से भय लाओ। अन्यथा अश्रुविमोचन हम नहीं करते। आप उनको इसी अपराध पर बराबर दबा रहे थे, ताड़ना दे रहे थे, निकालो आंसू। दबाव से कुछ तो काम होता ही है तनिक से आंसू निकले उन्हें आँखों में लगे काजर ने पी लिया। न जाने काजर कब का प्यासा था, इसलिये वह चिरकाल से नयनों में बैठा था, हथेलियों ने सोचा कृष्ण का सभी अंग तो काला है, हम लाल लाल हैं, क्यों नहीं हम भी कृष्ण के रंग में रंग जाय। कृष्ण रंगत तभी चढ़ता है जब नयन अश्रु दान दें। नयनों के अश्रु दान को पाकर वे भी अपने को कृष्ण रँग में रँगने लगे। सभी अपनी अपनी ताड़ में बैठे थे।

मुख को आप क्योंनीचा किये हुए थे ? आपने सोचा हत्या की

जड़ यह मुँह ही है। इसी ने माखन दूध के न मिलने पर मुझे दही का पात्र फोड़ने को प्रेरित किया था। अब इसे ऊपर कैसे उठा सकता हूँ, जिसने रसको—दही को—नीचे लुढ़कवा दिया उसे ऊँचा उठाया नहीं जा सकता। दंड देना चाहिए। इसीलिये हथेलियों से मीड़ मीड़ कर मुख को काला कर रहे हैं उस पर कालिख पोत रहे हैं।

हे सूत्रधार! आज आप माता के वेणी सूत्र को धारण करके यथार्थ सूत्रधार बन गये। उस सूत्र को ही देख कर आप भय भीत हो गये कि जगत् के सूत्रों के झंझटों को छोड़कर तो यहाँ ब्रज में बालक बने माँ फिर भी—यहाँ भी हमारे उदर में सूत बाँधना चाहती है। यहाँ जगजंजाल से बाल बाल बचे थे। माता बालों से ही अब बाँधना चाहती है। मैं कुछ समझ न सकी आप उस तनिक सी रस्सी से इतने भयभीत क्यों हो गये? क्यों सिर नीचा कर लिया? क्यों रोने लगे? आपने यह बाल वेष बनाया ही क्यों? आपने अवनि पर अवतार लिया ही किस लिये निर्गुण से सगुण क्यों बने? निराकारसे साकार रूप क्यों धारण किया? अजन्मा ने जन्म क्यों लिया? आप की वह भयवाली लीला और ये प्रश्न मुझे अब तक विमोहित बनाये हुये हैं।

हे यदुकुल चन्द्र! मैं पंडितों से पूछती फिरी मुझे कोई बता दो, अजन्मा ने किस कारण से जन्म लिया है? अखिलेश का अवतरण अवनि पर किस प्रयोजन के लिये हुआ है, गोलोकवासी मर्त्यलोक में क्यों पधारे हैं? हे लीलाधारी! सबसे मैंने पूछा किसी ने सर्वसम्मत उत्तर नहीं। दिया किसी ने कुछ कहा, किसी ने और ही कुछ कहा।

किसी ने तो कहा—"मलयाचल पर चंदन क्यों होता है? इसीलिये कि अपनी सुगंधि से आस पास के सभी वृक्षों को

सुगंधित बना दे। यही उस चन्दन का उद्देश्य है। अपने लिये तो उसे कुछ सुख चाहिये नहीं। स्वयं उसके ऊपर तो विषधर सर्प लिपटे रहते हैं। दूसरों को सुगंधित करता है, अन्यों का यश वह बढ़ाता है। अपनी जाति को छोड़कर दूसरी जाति वालों के यश सौरभ को विख्यात करता है। इसी प्रकार आप अजन्मा का जन्म तो हुआ यदुवंश में और कीर्ति बढ़ायी पांडवों की। पवित्र कीर्ति धर्मराज युधिष्ठिर का यश ही दिग दिगन्तों में फैलाने के निमित्त आपका अवतरण हुआ है।

किसी ने कहा—नहीं जो कृष्णका अर्थ है जो सब को अपनी ओर खींच ले। आपने सुतपा और पृश्नि को भी अपनी ओर खींच लिया। फिर आप के मनमेंआयो कि सब मेरी ओर खिंचे आते हैं लाओ मैं भी किसी की ओर खिंचूँ। खिंचने का भी सुख देखलूँ। वे ही सुतपा पृश्नि देवकी और वसुदेव बने उनके आप वासुदेव पुत्र बन गये।

किसी ने कहा—नहीं जी, यह तो केवल निमित्त मात्र है, अवतार की भूमिका मात्र है। दैत्य जब अत्यधिक उपद्रव करने लगते हैं। देवता जब बहुत दुखी हो जाते हैं। तो क्षीर सागर में सुख से सोये हुए आपका वे द्वार खट खटाते हैं, जगत के कल्याण करने की प्रार्थना करते हैं, तो आप उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके विश्व कल्याणार्थ तथा दैत्यों के दमनार्थ अवतार धारण करते हैं।

कोई कहते हैं—"नहीं जी, दैत्यों का वध तो भगवान् के संकल्प मात्र से हो सकता है। भगवान् का अवतार तो जगत की स्थिति के निमित्त होता है। यदि संसार में अधर्म ही होता रहे तो संसार स्वतः ही नष्ट हो जाय। विश्व की स्थिति धर्म पर ही अवलम्बित है। धर्म स्वरूप श्री हरि ही हैं। श्री हरि इस अवनि

पर अवतरित हुआ करें तब तो यह पृथ्वी बच सकती है, नहीं तो जैसे समुद्र में तैरती हुई नौका किसी दिन वेग की हिलोर आते ही डूब जाती है वैसे ही जल के ऊपर अवस्थित यह छोटी सी पृथ्वी किसी भी दिन समुद्र में चली जाय। यह जगत् ऐसे ही निरंतर चलता रहे इसके लिये भगवान् आते हैं।

कोई कहते हैं—"नहीं जी, भगवान तो इस भवसागर से प्राणियों को पार कराने आते हैं, इस संसार का *अत्यन्ताभाव* हो जाय आत्यंतिक प्रलय का रहस्य प्राणी समझ जायँ। मुक्ति के मार्ग का प्राणी अनुशरण करें इसके निमित्त अखिलेश का अवतार होता है। जो जैसी बातें करता है वह वैसा ही बन जाता है। *नित्य निरंतर संसार की ही बातें करेंगे, संसारी बातें सुनेंगे,* संसारी प्रपञ्चों का ही कथन मनन श्रवण करने से इन अविद्या नाना कामना और भाँति-भाँति के कर्मों के बन्धनों में पड़े हुए प्राणियों को संसार की ही प्राप्ती होगी। वे संसारी विषयों को भुलाकर आपकी ही कथा कहें, आपके ही चरित्रों का श्रवण करें आपकी ही लीलाओं का मनन करें इसी के निमित्त आप का अवतार होता है। अवतार धारण करके आप जो जो भी लीलायें करते हैं। जो जो भी कौतुक रचते हैं उनको नरनारी श्रद्धा भक्ति के साथ श्रवण करते हैं, संसारी प्रपञ्चों की ओर से मन को हटा कर आपकी कथाओं में ही मन लगाते हैं अन्त में वे आप को ही प्राप्त हो जाते हैं। अतः आपके अवतार का हेतु प्राणियों को अपनी ओर बुलाना है, अपनी लीलाओं से आकर्षित करना है। उनके कर्म बन्धनों को छुड़ाना है।

हे पुण्यश्लोक ! यह बात सर्वथा सत्य है कि जो लोग बारम्बार आपको ललित लीलाओं का श्रद्धा के साथ श्रवण करते हैं भागवती कथाओं को भक्ति के साथ सुनते हैं। भक्तों के सँग मिलकर कर गाजे बाजे के सहित या वैसे ही गान करते हैं, एकान्त

में स्मरण मनन करते हैं, स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं, वे अवश्य ही संसार सागर से पार हो जाते हैं, आप के कमल के सदृश चरणारविन्दों को पकड़ कर तर जाते हैं। जन्म मरण के बन्धन से छूट जाते हैं। अतः प्रभो ! आप के अवतार के अन्य अनेकों कारण गौण हैं, निमित्त मात्र हैं, आप के अवतार का मुख्य कारण तो भक्तानुकम्पा ही है। आप अपनी त्रैलोक्य पावन कथाओं को प्रकटित करने के निमित्त ही धराधाम पर पदार्पण करते हैं भक्तों के भय हरण के निमित्त ही निराकार से साकार होते हैं। अपने यश का सेतु बनाकर संसार सागर में बहते हुए, बिलखते हुए, डूबते हुए प्राणियों को पार जाने के लिए पथ प्रशस्त करते हैं, उन्हें अपनी ओर आने को आह्वान करते हैं। हे विश्वेश्वर ! आप के पावन चरितों में हमारा भी अनुराग हो। हमें भी वे प्रिय प्रतीत हों। आप हमारे हृदय में सदा बस रहें, आप हमें छोड़ कर कहीं अन्यत्र जायें ही नहीं।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार कुन्ती माता ने और भी जो आगे स्तुति की उसे भी मैं आप से कहता हूँ।

छप्पय

वह मनहर मुख मधुर मोह मोकूँ उपजावै।
बाल माधुरी माँहि मत्त मन मम फँसि जावै॥
कारन तव अवतार विज्ञजन विविध बतावैं।
धरमराज यश करन हरन दुख भू पै आवैं॥
धरम हेतु थिति जगत हित, कठिन अवनि प्रभु अवतरहिं।
करत चरित भव सेतु हित, सुनि गुनि नरनारी तरहिं॥

कुन्ती स्तुति(६)

(७)

त्वयि मेऽनन्याविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥

(श्री भा. १ स्क. ८अ. ४२ श्लो.)

छप्पय

यदुनंदन ! यदि जायँ, जीयँगे कैसे सब हम ।
भरतवंश यदुवंश देह द्वै प्रान एक तुम ॥
भवभय रिपुभय सकल भयनितें नाथ ! छुड़ाओ ।
सम्बन्धी सर्वेश सुहृद् सरवस्व कहाओ ॥
तव पद अंकित अवनि अब, तुम बिनु विधवा विभु ! बने ।
वन, परबत, सर, नदी, नद, प्रभु शोभा बिनु अनमने ॥

हे भक्तभयभंजन ! हे भक्तानुग्रहकातर ! क्या आप सचमुच द्वारिका जारहे हैं ? क्या आप हमें यथार्थ में छोड़ रहे हैं ? क्या आप हमारी आखों से वास्तव में ओझल हो रहे हैं ? प्रभो ! ऐसा न कीजिए, आप हमें छोड़िये नहीं । हमें अनाथ न बनाइये, आप मत जाइये । आप पूछेंगे कि क्यों न जाऊँ ? तो देखिए

---

* स्तुति करती हुई कुन्तीजी कह रही हैं—"हे मधुपते ! मेरी आपके चरणों में उसी प्रकार प्रीति बढ़ती जाय, जैसे भगवती भागीरथी का प्रवाह निरन्तर समुद्र की ही ओर बढ़ता जाता है ।"

आप अपने भक्तों के हित में सदा संलग्न रहते हैं। हम आपके भक्त हैं, हमारी इच्छा है. हम सदा सर्वदा आपका दर्शन करते रहें। इसलिए आप हमारी इच्छा को पूर्ण करें। आप हमारे स्वामी हैं, स्वामी के बिना सेवक का महत्व ही क्या ? सेवक का अपना निजी तो कोई महत्व रहता नहीं। सब उसे स्वामी के ही कारण जानते मानते हैं। अतः हमें भी सब लोग श्री कृष्ण सेवक कहके ही आदर करते हैं। आप ही चले जायँगे तो हमें कौन पूछेगा।

हम आपके सुहृद् हैं हमारा हृदय आप में लगा है। आप के बिना तो हम हृदय हीन हो जायँगे। हम आपके अनुजीवी हैं। हमारा जीवन आपके पीछे पीछे घूमता है जैसे स्वामी के पीछे उसका श्वान घूमता है। जब आपही चले जायँगे, तो हमारा जीवन किसके पीछे घूमेगा, हम निर्जीव हो जायँगे। अतः आप हमें सदा साथ रखिए हमसे वियुक्त न होजिये।

हे हमारी अनन्यगति प्रभो! आप कह सकते हैं, मैं तो विपत्तियों से बचाने को आता हूँ। दुःख दमन करने दौड़ा आता हूँ। भय भगाने को भक्तों के समीप रहता हूँ। तुम्हारी सभी विपत्तियों का अन्त हो गया। दुष्टों द्वारा दिये दुःख दूर हो गये। बलवीर्य से बने मदोन्मत्त राजाओं का भय भाग गया। अब मैं रहकर भी क्या करूँगा ? सो, ऐसी बात नहीं है प्रभो! अभी हमारा भय भागा कहाँ ? अभी हम सर्वथा निर्भय नहीं हुए, राजाओं का भय तो अभी बना ही हुआ है। इस अवनि पर लाखों राजा हैं, उन सबकी राजधानियाँ हैं। सबके वंशज राज्य कर रहे हैं। महाभारत युद्ध में सभी राजागण आये थे. हमने सभी का संहार करा दिया है। किसी राजा के पिता को परलोक पठाया है, किसी के भाई को मारा है, किसी के पुत्र को, पौत्र को, नाना को मामा को, फूफा को बहनोई को, जामाता को तथा अन्य सगे सम्बन्धियों को मारा है।

सभी तो हम से द्वेष करते हैं, जिसका सम्बन्धी जिसके द्वारा मारा जायगा, स्वभावतः वह उससे द्वेष करेगा। अब हमारी स्थित तो ऐसी है जैसे बत्तीस दाँतों के बीच में अकेली जिह्वा की। जिस दाँत को भी अवसर मिला, जो भी तनिक तीक्ष्ण हुआ उसी ने काट लिया। मुख्य स्थान में आप ही हैं। आपके ही भीतर सब निवास करते हैं। अतः प्रभो! हमारा भय तो अभी ज्यों का त्यों बना है, पहिले एक दुर्योधन ही शत्रु था, अब तो सभी शत्रु बन गये हैं। अतः इन समस्त भीतर बाहर के शत्रुओं से हमारी रक्षा कीजिए। हमारे समीप रहकर हमें निर्भय बनाइये। आप सोचते होंगे अब तक हमने किया, अब किसी अन्य का आश्रय ले लो, सो हमारी तो आप ही एक मात्र गति हैं। इन अरुण मृदुल सुखद चरण कमलों को छोड़कर हमारा अन्य आश्रय ही नहीं।

आप कहोगे, कि पांडव तो बड़े बली हैं, बड़े शूर वीर हैं। वे तुम्हारे पुत्र हैं। यादव बड़े रणदुर्मद हैं, अजेय है। संख्या मे भी अधिक हैं। वे तुम्हारे पितृकुल क हैं। ऐसे दो समर्थ कुलों से तुम्हारा सम्बन्ध है। फिर डरती क्यों हो? सो, हे हृषीकेश! कौरव पांडव तो केवल देखने दिखाने और कहने कहाने मात्र के ही हैं। शरीर में जब तक जीव है, तभी तक कहते हैं, इनकी आँखें बड़ी सुन्दर हैं, कमल के समान प्रफुल्ल हैं। मुख चन्द्रमा के सदृश है, नासिका कितनी मनोहर है। दन्तावली कितनी चमकीली सुघर और सघन है। नाम भी सुन्दर और रूप भी सुन्दर किन्तु जहाँ जाव देह से पृथक हुआ नहीं कि वे सभी इन्द्रियाँ भयानक बन जाती हैं। श्रीहीन हो जाती हैं। देखने से भय प्रतीत होता है। नाम वही है। वे ही हाथ हैं, वे ही पैर हैं, किन्तु एक जीव के बिना वे शोभा रहित अदर्शनीय बन जाते हैं। इसी प्रकार हे केशव! हमसे आपका वियोग हो जायगा तो इन कौरव

पांडवों की सत्ता केवल नाम रूप के लिए ही रह जायगी। ये सभी सारहीन श्रीहीन शोभारहित बन जायगे। इन्हीं की नहीं यहाँ की सम्पूर्ण भूमि श्रीहीन सूनी-सूनी दिखाई देगी।

हे श्रीकान्त! आप जब वज्रांकुश ध्वजादि से चिन्हित अपने चरणारविन्द को अवनि पर रखते है, तो भूदेवी के रोमांच हो जाते हैं, इसी से इसकी शोभा बढ़ जाती है। हे गदाधर! जब आप अपनी गदा के आधार से चलते हैं तो आप की गदा को देखते ही पृथ्वी गीली हो जाती है, उसके नयनों में नीर छा जाता है, प्रेमाश्रु ढुलक पड़ते हैं, शरीर पुलकित हो उठता है। आपकी दृष्टि से ही सम्पूर्ण सृष्टि हरी हो जाता हैं। औषधियाँ फलने फूलने लगती हैं। लतायें झूमने लगतीं हैं, वृक्षों के स्कन्ध पुष्पित लताओं को चूमने लगती हैं, वन हरे हो जाते हैं। उपवन शोभा युक्त बन जाते हैं, पर्वत प्रसन्न हो जाते हैं। सरितायें कल-कल करके गान करने लगती हैं। वे वेग से हँसती हुई बहने लगती हैं। समुद्र उमड़ने लगते हैं। उनमें बारम्बार हिलोरें आती हैं। गर्ज-गर्ज के वह अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हैं। सब कुछ स्वामिन्! तुम्हारे ही कारण हो रहा है। हे सदा प्रसन्न प्रभो! प्रसन्नता के एक मात्र कारण आप ही हैं। आप के बिना ये झंडी पताका और बन्दन वारों से सजे बजे भवन निरानंद सूने-सूने से प्रतीत होंगे। अतः आप द्वारिका न जायँ।

हे यदुकुल शिरोमणि! आप कहेंगे कि द्वारिका वाले भी तो मेरा दर्शन चाहते हैं। वे भी तो तुम्हारे भाई भतीजे हैं। उनकी भी तो चिन्ता करो। सो, हे विश्वेश। आप तो विश्व की विभूति हो, आप सभी को प्रिय हो सभी आप को चाहते हैं। मेरे सम्मुख यही कठिनाई है। हे विश्वात्मन्! मेरा मन कभी पांडवों की ओर जाता है, कभी यदुवंशियों की ओर जाता है। कभी

उनके सम्बन्ध सोचती हूँ। कभी इनके सम्बन्ध की। कभी सोचती हूँ, आप के बिना पांडवों का कौन अन्य आश्रय है। आप ही उनके प्राणदाता, जीवनरक्षक तथा सर्वस्व हो। फिर सोचती हूँ। आप यहाँ हैं तो यादवों की क्या दुर्दशा हो रही होगी। इस प्रकार मेरा मन हिंडोले की भाँति इधर से उधर झोटा खाता है। इसका कारण है, सम्बन्ध स्नेह अपनापन, मोह ममता सम्बन्धी स्नेह। हे विश्वमूर्ते! ये पांडव ही मेरे अपने आत्मीय हैं। ये यदुवंशी ही मेरे पितृकुल के कारण परम प्रिय हैं। मेरे इस ममता पूर्ण स्नेह बन्धन को काट दीजिये। इस मोहमयी स्नेह रज्जु को छिन्न-भिन्न कर दीजिये।

हे मधुपते! आप ही तो संसार में सब से अधिक मीठे हो। आप से बढ़ कर मधुर कौन होगा? आप कहोगे, कि यदुवंशी तो मैं भी हूँ, यदुकुल में तो मेरा भी जन्म हुआ है। तो क्या मुझसे भी स्नेह नहीं रखना चाहती, इस स्नेह बन्धन को भी काटना चाहती हो? सो बात नहीं मदनमोहन! मैं चाहती हूँ, सबकी मोह ममता को बटोर कर उस स्नेह रज्जु को आप के चरणों में बाँध दूँ। केवल आप के ही चरणारविन्दों में मेरी भक्ति बनी रहे। आपके चरणों में मेरा प्रेम उत्तरोत्तर बढता ही रहे। वह किसी प्रकार के विघ्नों की चिन्ता न करे। जैसे गंगा जी निरन्तर समुद्र की ओर बढ़ती ही जाती हैं, बढ़ती ही जाती हैं। बहुत सी नदियाँ दौड़-दौड़कर उनसे मिलने आती हैं किन्तु वे रुकती नहीं। कोई बीच में अन्तराय डालता है, रोक थाम करता है, तो चुपके से दूसरी ओर से निकल भागती हैं जब तक समुद्र में जाकर घुलमिल नहीं हो जातीं तदाकार नहीं बन जातीं तब तक शान्त नहीं होतीं। इसी प्रकार किसी दूसरी ओर नहीं, केवल आप की ओर आपके पदारविन्दों की ओर विश्वमूर्ति में मेरी सदा सर्वदा सार्वकालीय स्थायी अनन्य प्रीति

हो जाय। हे वरद ! यही मेरी विनय है। हे परमास्पद ! यही इस अबला की प्रार्थना है।

हे श्याम सुन्दर ! तुम सब को अपनी ओर खींचते हो। तुम सर्वशोभा सम्पन्न हो, इसीलिये श्रीकृष्ण कहलाते हो। सम्पूर्ण विश्व से आपका समान सम्बन्ध है, सर्व भूतों के आप सुहृद हैं। जीव के सच्चे सनातन सखा हैं, फिर भी आप अर्जुन के अनन्य सखा करके विख्यात हैं। इसलिये आप को सभी कृष्ण सखा ! पार्थ सारथी कहते हैं। मुझ पृथा का गौरव बढ़ाते हैं। किसी भी सम्बन्ध से आप के नाम के साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ते हैं। हे कृष्णवंशावतंश ! उस विख्यात कृष्ण वंश में मेरा भी जन्म हुआ है। आपने भी उसी कुल को गौरव प्रदान किया है। उसी को परम पावन बनाया है। इसीलिये आप वार्ष्णेय कहलाते हैं। वृष्णिऋषभ इस नाम से बोले जाते हैं। कुल के सम्बन्ध को भी ध्यान में रखकर आपको मुझ मुखी का ध्यान रखना चाहिये। हे धर्मावतार ! धर्म संस्थापक ! आप दावाग्नि के समान प्रचंड पराक्रम युक्त दुर्धर्ष वीर्य वाले हो। वन में जब दावाग्नि लगती है, तो भले बुरे का विचार नहीं करती। जो भी उसके सम्मुख हरा, सूखा, बिन फूलफल वाला या पुष्पित फलित कैसा भी वृक्ष आ जाता है सभी को भस्मसात् कर डालती है। किन्तु आप सब वंशों को नहीं जलाते। दावाग्नि बाँसों से ही उत्पन्न होकर अपने वंश को और आस पास जितने वंश हों सभी को स्वाहा कर देती है किन्तु आपतो भू के भारभूत राजपूतों के वंश को दग्ध करते हैं अधर्मियों के लिये अग्नि के समान हैं। अग्नि का वीर्य तो कभी न कभी क्षय भी हो जाता है, किन्तु हे अमोघ शक्ति वाले स्वामिन् ! आपका वीर्य तो अक्षय है त्रिकालवाधित है। किसी भी दशा में किसी भी काल में कभी भी क्षय होने वाला नहीं।

हे गोपाल ! आप इन्द्रियों के अधीन नहीं। किन्तु इन्द्रियाँ ही आपके अधीन हैं। आप गोविन्द हैं। इन्द्र ने कामधेनु ने गोलोक से आकर आपका अभिषेक किया है। आपने गौओं की रक्षा की उन्हें वात, वर्षा तथा शीत से बचाया। इन्द्र के प्रबल कोप से उनका उद्धार किया। उनके महान् दुःख को मिटाया। जिस प्रकार आप गौओं के रक्षक हैं वैसे ही ज्ञान दाता विप्रों के भी आप ही एक मात्र बल हैं। अनन्य रक्षक हैं। क्षत्रिय बल से वैश्य धन से और शूद्र सेवा के बल पर अपनी-अपनी रक्षा कर सकते हैं। किन्तु ब्राह्मण तो मुट्ठी भर चावल का भी संग्रह अपने लिये नहीं रखता। कोई कार्य भी नहीं करता। निरंतर आप की ही आराधना में लगा रहता है, तब उस अनन्य चिन्तन करने वाले विप्र के योगक्षेम के वहन का भार आप स्वयं अपने कंधों पर ले लेते हैं। इसीलिये आप ब्रह्मण्यदेव कहलाते हैं। विप्रों की ही भाँति सुरों के भी सर्वस्व आप ही हैं। आप के बल पर देवता फूले-फूले फिरते रहते हैं। संसार द्वारा पूजे और माने जाते हैं। सभी उन्हें बलि देते हैं। यज्ञों में भाग पाते हैं। हे सुरेश्वर ! आप सर्वदा उनके दुःख दूर करने के लिये व्यग्र बने रहते हैं। आपके अवतार का कारण ही विप्र धेनु सुर संत परित्राण हैं। हे माधव ! योगी जन ही अपने संकल्प से नूतन सृष्टि रच लेते हैं। जो चाहें सो कर लेते हैं आप तो योगियों के भी ईश्वर हैं। इसीलिये योगेश्वर कहलाते हैं। यही नहीं योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। योगेश्वरेश्वर हैं।

हे जगद्गुरो ! गुरु तो कुछ ही व्यक्तियों के हृदय के अज्ञान को दूर करते हैं। किन्तु आपतो गुरुओं के भी अज्ञान को दूर करने वाले हैं, इसीलिये गुरुणांगुरु कहलाते हैं। सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र गुरु आप ही हैं। आप समस्त ऐश्वर्य समस्त वीर्य, समस्त श्री और समस्त ज्ञान के एक मात्र आलय

है। सब के स्वामी हैं इसीलिये आप ही एक मात्र भगवान् हैं। हे भगवन्! मेरी विनय को स्वीकार करो। हमें त्यागो नहीं। हमारे ऊपर सदा कृपा बनाये रखो। अपने स्नेह पाश में जकड़े रहा करो।"

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार माता कुन्ती जी की स्तुति सुनकर मायापति मदनमोहन बुआ की ओर देखकर हँस पड़े और बोले—"अच्छी बात है मैं नहीं जाता।" इतना कह कर रथ से उतर पड़े महलों में लौट गये। शरशैया पर पड़े अपने भक्त भीष्म पितामह का उन्होंने स्मरण किया। अब भीष्म पितामह ने जो भगवान् की अद्भुत स्तुति की है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

पितु पति कुल को मोह मेंटि माधव! मम माया।
तव पद पदुम प्रनाम करैं नित-नित यह काया॥
गो द्विज-सुर दुख दूरि करो गोविन्द कहाओ।
दरपित नृप कुल होहिं अगिनि सम तिनिहिं जराओ॥
हे विश्वम्भर! वेदवित! विभु! विश्वेश्वर! विश्वपति!
गंग प्रवाह पयोधि सम, बढ़हि सतत तव चरन रति॥

—:*:—

भीष्मपितामहकृत–भगवत् स्तुति

(८)

विशुद्धया धारणया हताशुभ—
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधश्रमः।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम—
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥*
(श्री भा० १ स्क० ९ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

करिकें कुन्ती विनय अश्रु जल अरघ चढ़ायो।
मोहन मृदु मुसकाय मातु मद मोह मिटायो॥
उतरे रथ तैं तुरत महल महँ माधव आये।
पांडु सुतनि हठ करी दिवस कछु अरु ठहराये॥
शंतनु-सुत शर सेज पै सोवत तिनि पीरा हरी।
दये दरस दुख दलन तिनि, गद्गद् स्वर इस्तुति करी॥

जीवन की समस्त साधनायें इसीलिये हैं कि अन्त काल में भगवान् का नाम लेते हुए शरीर शान्त हो। अन्त समय में

* सूतजी बोले—"मुनियो ! शरशैया पर, पड़े जिन भीष्म पिता के सम्पूर्ण अशुभ विशुद्ध धारणा से क्षीण हो गये हैं श्रीकृष्ण भगवान के दर्शनमात्र से जिनकी असह्य शस्त्र व्यथा सर्वथा शान्त हो गयी है वे गागेयभीष्म अपनी समस्त इन्द्रियों के वृत्ति विलास को रोककर तनु त्यागते समय सावधानता पूर्वक जनार्दन भगवान् वासुदेव की स्तुति करने लगे।

भगवान् का नाम तभी आवेगा, जब उसका पहिले से ही अभ्यास हो। मरते समय प्राणी को अपने समस्त पूर्वकृत कृत्य याद आते हैं, जिन कर्मों का संस्कार प्रबल होता है, उन्हीं में मन अटक जाता है और अन्त में जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। परीक्षार्थी वर्ष भर परिश्रम इसीलिए करता है, कि परीक्षा के दिन हमें प्रश्नपत्रों के उत्तर याद आजायँ। परीक्षा तो एक दिन ही होती है, वह सोचले परीक्षाके दिन ही लिख देंगे अभी से प्रयत्न क्यों करें, तो वह कभी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकता। लड़कियाँ बाल्यकाल से ही साज शृंगार करती हैं, घर गृहस्थी के काम सीखती हैं, गुड्डा गुड़ियों से प्यार करती हैं, पति के सम्बन्ध में सोचती हैं। उनकी इच्छा यही होती है हमें पति का प्रेम प्राप्त हो। जो बाल्यकाल से ही शिक्षा प्राप्त न करेगी, घर में सब के साथ सद्व्यवहार करना न सीखेगी, घर के कार्यों में मन न लगावेगी, उसे सहसा ससुराल में जाते ही पति प्रेम कैसे प्राप्त हो जायगा। जैसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने को पति प्रेम प्राप्त करने को पहिले से ही प्रयत्न करना होता है, चिरकाल तक अभ्यास करना होता है, वैसे ही मृत्यु काल में भगवत् स्मरण हो, इसके लिये सम्पूर्ण जीवन को विशुद्ध बनाना पड़ता है। पग पग पर ध्यान रखना पड़ता है। हमसे किसी का अपकार न हो, हम किसी के साथ कभी कठोर व्यवहार न करें, कभी असत्याचरण न करें असत्य भाषण न करें, अपने अन्तः करण को सदा अपने अधीन रखें, सदा सर्वदा धर्म पूर्वक सभी कार्य करें, बड़ों की वेदज्ञों की पूज्यों की सदा सेवा करें, उनके प्रति श्रद्धा भक्ति का भाव रखें, कभी कार्य करने में आलस्य न करें, कर्तव्य कर्मों में सदा सर्वदा लगे रहें। इस प्रकार जो सदा संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करता है, सदाचरण करता है, अन्त में उसीको सद्गति प्राप्त होती है, उसी को भगवत् स्मरण होता है और वही पुण्यश्लोक [illegible]

जाता है। सत्य व्रत भीष्म उन्हीं पुण्यश्लोक महापुरुषों में से हैं। उनको अन्त में भगवत् स्मरण ही नहीं हुआ स्वयं साक्षात् भगवन् ही अन्त समय में उनके सम्मुख समुपस्थित हो गये, वाणी से भगवन्नामों का उच्चारण करते हुए, मन बुद्धि को उनमें ही लगाये हुए, नेत्रों से उनके ही लोकाभिराम दर्शनों को करते हुए उन्होंने अपनी इच्छा से इस शरीर का त्याग किया और परमपद को प्राप्त किया। उन शन्तनुसुत गंगानन्दन,परम धर्मात्मा सत्य व्रत भीष्म की हम वन्दना करते हैं।

सूतजी बोले—मुनियों ! महाभारत युद्ध के अनन्तर जब भगवान् द्वारका जी को चलने लगे तो कुन्ती माता ने उन्हें रोक लिया। धर्मराज को शिक्षा दिलाने के लिये भगवान् वासुदेव सर्व धर्मज्ञ भीष्म पिता जी के समीप ले गये। धर्मराजने जो जो भी जिस जिस विषय के प्रश्न किये पितामह ने सभी का संक्षेप और विस्तार के साथ वर्णन किया। वह सभी प्रश्नोत्तर महाभारत के शान्ति तथा अनुशासन पर्वों में विस्तार से वर्णित है वह उपदेश संस्कृत वाङ्मय का कोष है। उसीका विस्तार सभी नीति धर्म शास्त्रों में वर्णित हैं। वह उपदेश सभी शास्त्रों का निचोड़ है।

धर्मोपदेश देने के अनन्तर पितामह ने धर्मराज से कहा—बेटा ! तुम अब राजधानी में जाओ। मृत्यु मुझे मेरी इच्छा के बिना मारने में असमर्थ है, मैं जब सूर्य उत्तरायण होंगे, तब शरीर का त्याग करूँगा। जब सूर्य उत्तरायण हो जायँ, तब तुम पुनः आजाना।"

यह सुनकर धर्मराज राजधानी में चले गये, वहाँ कुछ राजकाजों में फँस गये। उन्होंने पंडितों से पूछा—"सूर्य उत्तरायण कब होंगे ?"

पंडितों ने कहा—"महाराज ! सूर्य तो उत्तरायण हो भी गये मकर की संक्रान्ति बीत चुकी।"

यह सुनकर भगवान् वासुदेव ने कहा—"धर्मराज ! चलो चलो, गंगानन्दन भीष्म का अन्तकाल अब सन्निकट ही है, हम सब चलकर उनके अन्तिम दर्शन करें।"

इतना सुनते ही धर्मराज ने कहा—"पितामह ही हमारे सर्वस्व हैं। हमारे इस सम्पूर्ण राज्य के वे ही यथार्थ स्वामी हैं, मेरे पिता पितामह तो केवल न्यासरक्षक थे। हमारे कुल के वे ही श्रेष्ठ हैं, मैं उनका अन्तिम संस्कार सम्राटों के उचित करना चाहता हूँ, अन्तिम संस्कार की सम्पूर्ण सामग्री विपुल मात्रा में पहुँचायी जाय। वेदज्ञ ब्राह्मण अग्नि लेकर चलें। सूत मागध बन्दी मेरे पूज्य पितामह की विरुदावली गावें, हम सब परिवार के लोग अत्यन्त धूम-धाम से उनका अन्तिम संस्कार करेंगे, उनका अन्तिम उपदेश सुनेंगे, उनसे पुनः धर्म का मर्म ग्रहण करेंगे।"

धर्मराज की आज्ञा सुनते ही अन्तिम संस्कार का सामान विपुल मात्रा में गाड़ियों पर लदकर भेजा जाने लगा। बड़े बड़े पात्रों में शुद्ध गौ का घृत भेजा गया। बहुत सा चन्दन, खस, अगर, तगर, छारछबीला तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य भेजे गये। दान देने को बहुत से रेशमी वस्त्र, सुवर्ण मुद्रायें, विविध भाँति के सुन्दर सुन्दर पात्र, हाथी, घोड़ा, रथ तथा वाहन भेजे गये। सुन्दर पुष्प मालायें फल तथा पूजनकी समग्र सामग्री भेजी गयी। पितृमेध कार्यों में कुशल बहुत से पंडित पहिले ही वहाँ सुन्दर सवारियों पर बिठाकर भेज दिये गये।

धर्मराज अपने समस्त परिवार वालों को साथ लिये हुए पितामह के समीप चले। उनके साथ भगवान् वासुदेव भी थे। सबके साथ धर्मराज युधिष्ठिर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शरशैया पर शान्तनुनन्दन पड़े हुए थे। उनके दोनों नेत्र बन्द थे, ओष्ठ कुछ

कुछ हिल रहे थे. और वे शान्त मुद्रा में पड़े हुए थे। उनके चारों ओर पंक्तिबद्ध सैनिक उनकी सभा में तथा सम्मान में खड़े हुए थे। उस नरशार्दूल को शान्तभाव से शरशैया पर पड़े देखकर सभी के नयनों से जलधारा बहने लगी। रोते रोते धर्मराज ने हाथ जोड़कर उच्च स्वर से कहा—"पितामह! मैं आपके पाद-पद्मों में प्रणाम कर रहा हूँ, मेरा नाम युधिष्ठिर है, यदि आप मेरी बात सुनते हों,तो तनिक नेत्र खोलकर मुझे दर्शन दें और मुझे आज्ञा दें मैं आपके लिये क्या करूँ। मैं आपके परिवार के छोटे बड़े सभी लोगों को आपके दर्शनों के लिये लेता आया हूँ, अन्तिम संस्कार की सभी सामग्री भी समुपस्थित है अब आप हमें कुछ आज्ञा दें।"

यह सुनकर उस मानवसिंह ने अपने बड़े बड़े विशाल नेत्र खोले। चरणों में सिर रखकर सुबकते हुए धर्मराज का विशाल हाथ पकड़कर वे बोले—"धर्मराज! तुम समय से मेरे पास आ गये, यह मङ्गल की बात है। देखो, मुझे आज शरशैया पर पड़े पड़े अट्ठावन दिवस हो गये। अब सूर्य उत्तरायण हो गये हैं माघ का महीना आ गया है। आज माघ कृष्णा अष्टमी है अभी माघ मास के तीन भाग और शेष हैं। अब मैं इस शरीर को त्यागना चाहता हूँ। भगवान् वासुदेव भी आये हैं न?"

तभी भगवान् ने कहा—'पितामह मेरा भी प्रणाम स्वीकार करें, मैं उपस्थित हूँ।"

धर्मराज ने कहा—"महाराज! ये तो सदा उपस्थित रहते ही हैं। हमें कुछ अन्तिम उपदेश दीजिए।"

पितामह अपनी उसी मेघ गंभीर वाणी से बोले—"बेटा! तू धर्म के मर्म को भली-भाँति जानता है, तैंने अपने समस्त संशयों को जिज्ञासा द्वारा दूर कर दिया है। तू चारों वेदों का ज्ञाता है, तैंने वृद्धों की विद्वानों की गुरुओं की श्रद्धा पूर्वक सेवा की है

तुझसे अब कहना ही क्या ? तू सब के साथ भेद भाव से रहित होकर व्यवहार करना, किसी को शत्रु मत समझना, अपने सभी आश्रितों का निरंहकार होकर पालन पोषण करना, भगवान् को कभी भी न भुलाना, धर्म का आचरण करना, प्राणी मात्र से प्रेम रखना भगवान् वासुदेव तेरा मंगल करेंगे। अब तू मुझसे कुछ मत पूछे। मैं अब भगवान् वासुदेव की स्तुति करना चाहता हूँ और उनका ही ध्यान करते-करते इस पांच भौतिक शरीर का परित्याग करना चाहता हूँ। भगवान् को तनिक मेरे सम्मुख बिठा दे।"

यह सुनकर नन्दनंदन भगवान् वासुदेव स्वयं ही उठ कर पितामह के सम्मुख आ गये और उनके

विशाल हाथ को अपने हाथ में लेते हुए तथा उन्हें शनैः-शनैः सुहलाते हुए बोले—"हे धर्मज्ञ ! हे महाबाहो ! मैं वासुदेव कृष्ण समुपस्थित हूँ।"

भगवान् श्रीकृष्ण को सम्मुख उपस्थित देखकर बूढ़े के दोनों नयन भर आये और नेत्रों की कोरों से टप-टप आंसू गिरने लगे। भगवान् वासुदेव ने उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछ दिया। तब गद् गद् वाणी से भीष्म बोले—"हे पुरुषोत्तम! आप क्षर अक्षर दोनों से परे हो। हे वैकुण्ठ! आप सर्वोत्तम स्थिति में सदा स्थित रहते हो। हे कृष्ण! आप सभी प्राणियों को तथा विशेष कर अपने अनुगत भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हो। हे पुण्डरीकाक्ष! आप की चितवन अमृत मयी है उस से मुझे अन्तिम समय देख लो। हे सनातन-पुरुष! आप सबके कारण हैं। आप का कारण कोई नहीं। हे परमात्मन्! आप प्राणी मात्र के प्रेरक नियामक हो। हे सर्वरूप! आप इस चराचर जगत् में विराट् रूप से, पुरुषरूप से, जीवरूप से तथा अणुरूप से व्याप्त हैं। हे वासुदेव! आप सर्वत्र निवास करते हैं! हे हिरण्यात्मा! सम्पूर्ण भूत आपके ही भीतर विद्यमान हैं। हे देवदेवेश! आप सभी सुरासुर द्वारा वन्दित हैं। हे शंखचक्र-गदा-धारिन्! आपको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ। स्वामिन्! आप भक्तवत्सल हैं। ये पांडव आप के आज्ञाकारी भक्त हैं इसलिये आप इन पर इतनी कृपा करते हो। मैंने दुष्ट बुद्धि दुर्योधन से बारम्बार कहा—"तू भगवान् वासुदेव की शरण में जा, वे तीर्थ स्वरूप हैं। उनकी शरण में जाने से कल्याण ही है। किन्तु वह मूर्ख माना ही नहीं। अपनी मूर्खता से स्वयं तो मरा ही धराधाम के अनेकों लोगों का भी विनाश कर गया। होनी तो होकर ही होती है जो आप कराना चाहते हैं, वह होकर ही रहता है। उसे कोई टाल नहीं सकता। आप साक्षात् नारायण हैं भक्तों को सुख देने के लिये मानव शरीर से धराधाम पर अवतरित हुए हैं। अब आप मुझे शरीर त्यागने की आज्ञा प्रदान करें।

जब आप आज्ञा देंगे तभी मैं इस शरीर का परित्याग करूँगा जब तक आप आज्ञा न देंगे ऐसे ही पड़ा रहूँगा।"

भगवान् ने कहा—"हे नरशार्दूल! अब आप प्रसन्नता पूर्वक अपने शरीर का परित्याग करें अब स्वच्छन्द मृत्यु योगियों को जो उत्तरायण काल अभीष्ट है, वह समुपस्थित है।"

भीष्मजी ने कहा—"अच्छी बात है, यदि आपकी आज्ञा है, तो एकबार मैं आपकी अन्तिम स्तुति और कर लूँ फिर आपके नामों का स्मरण करते-करते मनसे आपका ही ध्यान धरते-धरते इस शरीर की इहलौकिकलीला समाप्त करूँगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कहकर पितामह ने अपनी समस्त चित्त की वृत्तियों को रोक लिया। वे अन्य प्रकार की सभी बातों से मौन हो गये। अपने बड़े-बड़े उत्फुल्ल कमल के समान विशाल नयनों से अपने कर में करको थामे सम्मुख बैठे चतुर्भुज मूर्ति पीताम्बरधारी वनमाली को एक टक भाव से निहारते रहे। अन्तःकरण में उन्हीं की मनोहर मूर्ति को धारण करके अपनी समस्त इन्द्रियों के वृत्ति विलास को रोककर सावधानी के साथ स्तुति करने लगे। मुनियो! भीष्म पितामह की अन्तिम स्तुति का एक-एक शब्द अनमोल है। उन का वर्णन मैं यथामति आगे करूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करें।

छप्पय

हे विराट ! वैकुण्ठ ! विश्वव्यापक ! विख्याता !
त्रिभुवनपति ! त्रयजनक ! त्रिविक्रम ! त्रिभुवन त्राता ॥
करी कामना रहित बुद्धि बनवारी ! विधिवत ।
सो अब विषय भुलाय होहि तव चरन सतत रत ॥
परमानन्द स्वरूप प्रभु, तऊ विविध क्रीड़ा करो ।
प्रकृति-पुरुष आश्रय बनो, लीलाहित भुवननि भरो ॥

भीष्म स्तुति(१)

(६)

इति मतिरूपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुम्
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥

(श्री भा० १ स्क० ९ अ० ३२ श्लो०)

छप्पय

श्याम तमाल समान सुखद तनु सरस सजीलो।
मोरमुकुट छहराय छपक छवि छैल छबीलो॥
त्रिभुवन-वर कमनीय कलित कर कमल रँगीले।
नयन सरस सुख सदन सुधा-रस सने कँटीले॥
रथ हाँकत मुख भरि हँसत, लसत पीत पट लट ललित।
पारथ हित चित चलित अति, ममचित उत धावै सतत॥

भगवान् की अद्‌भुत लीलाओं को स्मरण कर करके उनकी पूर्व-दृष्ट या श्रुत छवि को नयनों में भरि भरि के जो स्तुति की जाती है उससे पूर्व मानसिक चित्र हृदय पर ज्यों का

स्तुति करते हुए भीष्म पितामह कह रहे हैं—अब इस अन्तिम समय में नाना उपायों द्वारा कामनारहित मेरी यह बुद्धि उन महाविभूति वाले सात्वत श्रेष्ठ श्रीकृष्ण में ही लग जाय जो यद्यपि सदा स्वसुख में ही निमग्न रहते हैं, किन्तु कभी-कभी मनोरंजन के लिए लीला के निमित्त जिस प्रकृति से संसार प्रवाह बहता है उसका आश्रय लेकर क्रीड़ा भी करने लगते हैं।

स्यों अङ्कित हो जाता है। उस चित्र को मन से ही निहारते हुए जो स्तुति की जाती है उसका एकाग्र चित्त से चिन्तन स्मरण मनन और पाठ किया जाय तो पाठकों की दृष्टि के सम्मुख भी वैसा ही चित्र खिंच जायगा। जिससे जीवन भरके सभी अशुभ मिट जायँगे। मुमूर्षु पुरुषों के लिए भीष्म स्तुति से बढ़कर दूसरी साकार सजीव प्रत्यक्ष स्तुति दूसरी नहीं है। भीष्म जी ने भगवान् की जो अद्भुत अलौकिक त्रिभुवन सुंदर ललायें प्रत्यक्ष देखी हैं उन्हीं को मरते समय वर्णन किया है, और उन्हीं लीलाओं का चिन्तन करते करते इस पांचभौतिक देह का परित्याग किया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मृत्युमय सम्मुख विराजमान भगवान् वासुदेव के दर्शन करते हुये पितामह भीष्म कह रहे हैं—हे श्यामसुंदर! मुझे जो करना था, वह मैं कर चुका। मुझे सदा यही चिन्ता बनी रहती थी, मेरा मन विषय वासनाओं में न फँसे, मैं संसारी भोगों से सदा बचता रहूँ, तथा अपने स्वधर्म का भी पालन करता रहूँ। वनों में कन्द मूल, फल खाकर मुनिव्रत साधकर हिंसा विग्रह युद्धादि से विरत होकर वास करना यह क्षमाशील ब्राह्मणों का धर्म है, किन्तु मेरा जन्म उन क्षत्रियों में हुआ जिनका शासन करना ही धर्म है। कुपथगामियों तथा वीरमानियों के दर्प को दमन करना ही जिनकी कुल परम्परा है, सनातन मर्यादा है। अतः कुल परम्परा का पालन करते हुए राज्य का शासन चलाते हुए भी—मैं जल में रहने वाले पद्मपत्र की भाँति उसके भोगों से सदा पृथक ही रहा। ऋषि महर्षियों ने भगवान् वेद व्यास ने मुझे जो उपाय बताये उनका मैं यथासाध्य पालन करता रहा। नाना प्रकार के धर्माचरण करता रहा। उनका फल यह हुआ कि मेरी बुद्धि सर्वथा कामनाहीन बन गयी। मेरी भोगेच्छा विलीन हो गयी। बुद्धि विषयविरत बन गयी।

उनमें जो विषय सुख जन्य कामनायें भरी हुई थीं वे निकल गयीं किन्तु रिक्त पात्र में से अशुद्ध वस्तु निकाल कर उसमें गंगाजल या अमृत कोई रस तो भरना ही चाहिये। विषय विरत-बुद्धि को कहीं भी तो लगना चाहिये। मन को कहीं भी तो अटकाना चाहिए। चित्त के लिये चिन्तन का कोई भी तो विषय होना चाहिये। इसलिये इन पार्थ सारथी प्रभु के पादपद्मों में यही प्रार्थना है, कि मेरी यह कामनारहित बनी बुद्धि उन यदुकुल चन्दन देवकीनन्दन, मोर मुकुटधारी, बाँके बिहारी भगवान् वासुदेव में लग जाय जो परमानन्द स्वरूप हैं, अज हैं, अव्यक्त हैं माया प्रपच से पृथक हैं। जिन्हें आनन्द के लिये अन्य उपकरणों की अपेक्षा नहीं, इच्छा नहीं, जो स्वसुख में ही सदा सन्तुष्ट रहते हैं। जिन्हें दूसरे की आवश्यकता ही नहीं। जो आत्मरति हैं आप्तकाम आत्माराम हैं। फिर भी कभी लीला के लिये प्रकृति को आश्रय दे देते हैं क्यों कि वे लीलाधारी ही ठहरे। विहार के लिये प्रकृति के साथ खेल करने लगते हैं। क्योंकि विहार करना उनका स्वभाव है। आश्रय पाकर प्रकृति अपना तानाबाना पूरने लगती है। यह सृष्टि परम्परा आरम्भ हो जाती है। सृष्टि रचना के खेल का भी गणेश हो जाता है। यह जगत् प्रवाह बहने लगता है। लीला धारी विहारी उसमें घुल मिल कर खेलते हुए भी तटस्थ बने रहते हैं। उसमें लिप्त नहीं होते। निर्लिप्तमात्र से साक्षी बने रसास्वादन करते रहते हैं। नाटक में सम्मिलित होते हुए भी निर्विकार निरंजन निर्लेप बने विद्यमान रहते हैं। ऐसे उन लीलाधारी इन श्यामसुंदर में मेरी बुद्धि चिपक जाय। इनके अतिरिक्त किसी के सम्बन्ध में विचार ही न करें।

जो श्याम तमाल के समान कृष्ण वर्ण के हैं, जिनकी कान्ति जल भरे मेघ के समान वर्षा कालीन दूर्वा के समान, पुष्पित अतसी के समान, तथा मयूर के कमनीय कंठ हैं।

जो सुवर्ण वर्ण के रेशमी पीताम्बर को धारण किये हुए हैं। सूर्य की रश्मियों के समान जो चम-चम करके चमक रहा है। वायु के कारण हिलने से जो दम-दम दमक रहा है, उस पीताम्बर को जो बारम्बार सम्हालते जाते हैं। जिनका मंद मुसकानमय मधुर मुख शरद् कालीन कमल के समान प्रफुल्लित है, जो शोभा का धाम है, आभाका अयन है, चातुरी का चयन है, नयनों का शयन-अयन है। जिस पर काली-काली सटकारी घुँघराली अलकावली लटक रही है। हिल-हिल कर भ्रमरावली की भाँति अरविन्दानन के रस का पान करती सी दिखायी दे रही हैं। कुंडलों की आभा से गोल-लोल कपोल द्वय आरसी के समान चमक रहे हैं। ऐसे भुवनमोहन, सकलजगत्सोहन रूप को धारण करने वाले पार्थ सारथी श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र में मेरी अहैतुकी भक्ति हो, निष्काम प्रीति हो।

युद्ध के समय को जो अद्भुत अलौकिक झाँकियाँ मैंने समय-समय पर की है, जिनकी छाया मेरे हृदय पटल पर उतर गई है और अब जो कुछ धुँधली सी पड़ गयी है, वे स्मृतियाँ इन्हीं की कृपा से पुनः चमक उठें। अब वे पुनः अन्तःकरण की भित्ति पर सदा सर्वदा के लिये बज्रलेप से अंकित हो जायँ। जो न कभी मिटि सकें न कभी फीकी हो पड़ सकें। अहा! युद्ध में एक दिन कैसी अद्भुत झाँकी इन लीला धारी की मुझे हुई थी। शरद् कालीन उत्फुल्ल कमल के समान मुख पर घोड़ों की टाप से उड़ी हुई धूलि के छोटे-छोटे कण अलकों पर, पलकों पर, कपोलों पर आवृत थे। मानों कमल पर किसी ने मट मैला पराग बिखरे दिया हो। घुँघराली अलकावली कपोलों का स्पर्श करती हुई निरन्तर हिल रही थी,

मानों धूलि को झाड़ रही हो, कि और चाहे कहीं भले ही जम जाओ कपोलों के समीप मत आओ इन पर हमारा अधिकार है अथवा हिल हिल कर श्यामसुन्दर को निषेध कर रही हों कि इतना श्रम मत करो कपोल रो रहे हैं, उनके छिद्रों से पानी बह रहा है, अथवा कपोलों के निकले स्वेद बिन्दुओं से मना करती हैं कि इस समय तुम मत निकलो नहीं तो धूल तुमसे मैत्री करके आर्द्र बनकर कपोलों पर अधिकार जमालेगी। कैसे भी हो वे घुँघराली काली सुगंधित तैल से सनी लटें हिल रही थीं। मैं रथी को छोड़ कर सारथी के ही शरीर को अपने तीक्ष्ण बाणों से बेध रहा था। मैं सोच रहा था आज लाल जी को लाल ही बनाकर छोड़ूँगा। आज इन्हें रक्त रांजत बनाकर दर्शन करूँगा। आज इनकी इन्हीं के रक्त से पूजा करूँगा। आज मैं रक्त का ही पाद्य अर्घ्य आचमनीय और स्नानीय जल चढ़ाऊँगा। मेरे तीक्ष्ण बाणों से उनका दृढ़ कवच छिन्न-भिन्न हो रहा था। रक्त की धारायें शरीर से निकल रही थीं। उन रक्त रंजित, भग्न कवचधारी, वृन्दावन विहारी, वैजयन्तीमालाधारी जनमनसुखकारी श्यामसुन्दर में मेरा चित्त स्थिर हो जाय। मन उन्हीं की मनोहर मूर्ति का ममता के साथ मनन करता रहे।

अहा! वह कैसी छटा थी, युद्ध के पूर्व मैंने कभी वैसी छटा देखी ही नहीं थी मैं तो अवाक् रह गया, सारथी के स्थान में उन्हें बैठा देखकर चकित रह गया।

मैं अपनी समस्त सेना को सजाकर, वृहद् व्यूह बनाकर सैनिकों को समर सम्बन्धी शिक्षा देकर, सेनापति के पद पर अभिषिक्त होकर, धनुष बाण से सुसज्जित होकर रथ में बैठ-

कर वीरता के साथ पांडव सेना के सम्मुख खड़ा होगया। मेरे पीछे लाखों सैनिक खड़े थे, वे मेरी आज्ञा की ही प्रतीक्षा में खड़े थे, उन सब को युद्ध करने का अत्यन्त उत्साह था। दुर्योधन के सभी भाई पूर्व वैर को स्मरण करके मतवाले बने हुए थे। पांडव भी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे, उनका सेनापति धृष्ट द्युम्न भी सैनिकों को आज्ञा देने को प्रस्तुत ही था, रण के बाजे बज रहे थे, बाजों पर बजते हुए वीरगान को सुनकर योद्धाओं के हृदयों में हिलोरें उठ रहीं थीं। उस समय हमने देखा वानर की विशाल ध्वजा वाला, चार श्वेत घोड़ों से युक्त एक रथ आकर उभय सेनाओं के बीच में खड़ा हो गया। सभी सैनिक चकित हो गये। सब समझने लगे यह सन्धि सन्देश लेकर युद्ध को बन्द करने का तो अभियान नहीं है, उस रथ का रथी तो बैठा रहा केवल सारथी ने उठकर एकबार कौरव पक्षीय सेना को अपनी तिरछी चितवन से देख भर लिया। जिस पार्थ सारथी की तनिक सी दृष्टि से विपक्षी वीरों के उत्साह भंग हो गये, जो गतायुष बन गये, उन पार्थ सारथी युगल अरुण चरणों में मेरा अनन्य अनुराग हो।

क्या कहूँ, उस समय की शोभा का, वह तो दर्शनीय ही घटना थी। सारथी ने उठकर विपक्षी वीरों के बल, उत्साह तथा आयुको दृष्टि पात से ही समाप्त कर दिया और वह पुनः अपने आसन पर बैठ गया, किन्तु अबके रथी उठा, उसने सेना के अग्रभाग में यह देखना चाहा कि मैं युद्ध करूँगा किस से। सब से पहिले उसने मुझे देखा; बोल उठा—ये तो मेरे पिता के भी पिता बाबा हैं, जिनकी शरीर को मैं सदा अपने धूलि भरे वस्त्रों सेमैला कर देता था,जो मुझे कमकर छाती से लगा लेते थे और मेरे गालों को चूमते हुए अघाते नहीं थे। क्या देवस्वरूप मैं अपने बाबा के ऊपर बाण छोड़ूँगा। अरे, ये तो मेरे आचार्य भगवान् द्रोण भी अस्त्र शस्त्रों

से सुसज्जित मुझसे ही लड़ने के लिये खड़े हैं। जिनके कमल चरणों को हम सुगंधित सुमनों से ढक देते थे, जिनका कंठ हम सब भाइयों की श्वेत पुष्पों की सुगंधित मालाओं से भर जाता था, जो अपने अमृतस्रावी कर कमलों से हमारे सिर को छू देते थे, जिनके कृपा भार से हम सदा दबे ही रहते थे, कभी जिनको ऊँचा सिरकर के देखा नहीं जिनके सम्मुख आते ही हमारे कंधे आप से आप झुक जाते थे, दोनों हाथ अपने आप एक साथ बँध जाते थे, उन दयाके सागर कृपा के समुद्र विद्या के वारिधि दूसरे प्रजा पति के समान भगवान् द्रोण से हमें लड़ना पड़ेगा। उनके सुन्दर वृद्धावस्थापन्न शरीरको बाणों द्वारा मुझे बेधना पड़ेगा। अरे, यह क्या य तो मेरे मामा शल्य हैं, क्या आज ये भी भानजे का प्राण लेंगे। क्या आज ये मुझे अपनी गोद में बिठाकर प्यार न करेंगे। जिनके दिये हुए खिलौनों को देखकर अब भी मुझे बाल्य काल की वे मीठी मीठी स्मृतियाँ हृदय को द्रवीभूत करती हैं, उन्हीं अपने माननीय मामा से हमें युद्ध करना पड़ेगा। अरे यह क्या सेना के अग्रभाग में चाचा, ताऊ भैया, भतीजे, मामा नाना, बहनोई, साले, श्वसुर, दौहित्र, भानजे तथा सभी सगे सम्बन्धी ही तो अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित खड़े हैं। छिः बड़ा अनर्थ है, अत्यंत ही अन्याय है, जघन्य पाप है। तनिक सी पृथिवी के लिये, सेर भर अन्न के लिये ऐसा अनर्थ। राम ! राम ! कैसा बीभत्स कृत्य करने को मैं समुपस्थित हुआ हूँ।" उसने धनुष उतार कर रथ में फेंक दिया। और गर्ज कर कहा—"गोविन्द ! रथ को लौटा ले चलो, मैं युद्ध नहीं करूँगा। सम्बन्धी संहार करने की मेरी इच्छा नहीं है।'

अहा ! उस समय उनकी मुद्रा कितनी मनोहर थी। उस समय उन्होंने सारथी-धर्म का उल्लंघन किया। रथी की आज्ञा का पालन

नहीं किया। क्रोध भी नहीं किया। हँसते रहे और खड़े रहे। हँसते हुए बोले—"अर्जुन! यह तेरी कुमति है, अज्ञान है।

अर्जुन ने कहा—"कुमति है तो उसे दूर करो।" हँस पड़े भगवान् और बोले—चेला बने बिना कुमति दूर कैसे होगी? चेला बन जा। अर्जुन ने कहा—शिष्यस्तेऽहं" हाँ बन गया चेला अब इस कुमति रोग का वैद्य बनकर अमोघ ओषधि दीजिये। अब अज्ञान अन्धकार को मेंट कर ज्ञानालोक प्रदान करके गुरु के गौरव को सार्थक कीजिये। अहा! उस समय अर्जुन की आँख में छाये तिमिर को जिन्होंने ज्ञानाञ्जन शलाका से छिन्न भिन्न कर दिया, जिन्होंने भूले भटके पार्थ को परिष्कृत पथ पर पहुँचाया, जिन्होने अंधकारमयी अर्जुन की अविद्या को आत्म विद्या से अपहरण किया जिन्होंने युद्ध से विरथ पार्थ को पुनः युद्ध में प्रवृत्त कराया। उन भवभयहारी, शत्रुसंहारी, लीलाधारी गीता ज्ञान के प्रवर्तक प्रभु के पादपद्मों में मेरी अनन्य भक्ति हो, सब से अधिका अनुरक्ति हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भीष्म पितामह भगवान की पूर्व काल में देखी हुई मनोहर झाँकियों का वर्णन कर करके भगवान् से भक्ति की भिक्षा माँगने लगे। आगे कुछ थोड़ी सी झाँकियों को वे और कहेंगे उनका वर्णन मैं आगे करूँगा। आप सब इस अनुपम अनुराग प्रसंग को दत्तचित्त होकर सावधानी के साथ श्रवण करेंगे।

छप्पय

हय-खुर रज अति उड़त करत तम दशहु दिसनि महँ।
आश्रय गगन न पाइ आइ पुनि लौटि लटनि महँ॥
अलकनि पलकनि परसि कपोलनि अति सुख पावै।
गुल गुल गद्दी पाइ सिहावै तहँ जमि जावै॥

शोभा सुन्दर श्याम के, धूरि धूसरित वदन की।
मिटहि न हिय लिखि जाय हठि, झाँकी मोहन मदन की॥

पद

झाँकी ऐसी मम मन भावै।
नील तमाल सरिस रँग कारी, कारी कमल लजावै॥ १ ॥ झाँ०
रवि किरननि सम पट अति पोरो, पवन लगे फहरावै।
फर फर करि इत उत उड़ि उड़िके, अपनो ओर बुलावै॥ २ ॥ झाँ०
मुख मनहर मदमातो मधुमय, मधुर मधुर मुसिकावै।
कमल सरिस मधुकरअवली लट, लटकि लटकि लहरावै॥ ३॥ झाँ०
अरजुन सखा! समय सब बीत्यो, प्रान पखेरू जावै।
होहि प्रीति प्रभु चरन कमल में, बूढ़ो कर फैलावै॥ ४॥ झाँ०

भीष्म स्तुति (२)

(१०)

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा—
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु —
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥
(श्री० भा० १ स्क० ६ अ० ३७ श्लो०)

छप्पय

गोल लोल कमनीय कपोलनि रज सटि जावे।
तिनि पै लटकी कुटिल ललित लट ताहि भगावै॥
स्वेद बिन्दु तहँ आइ धूरि कूँ देहि सहारो।
रज-कन शोभित सुघर लगे मुख अति ई प्यारो॥
मेरे तीखे शरनि तें, कवच सारथी को कटहि।
रक्त सुरंजित अंग मम, आतताइ के हिय बसहि॥

भीष्म पितामह शरशैया पर पड़े ही पड़े प्रभु की स्तुति कर रहे हैं, हे श्यामसुन्दर! युद्ध की उस दिन की वह शोभा मैं कभी भूल नहीं सकता। भूलना चाहता

भीष्म पितामह भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—"मैंने प्रतिज्ञा की थी कि भगवान् का भगवान् से अस्त्र ग्रहण कराके छोड़ूँगा। भगवान् की प्रतिज्ञा अस्त्र ग्रहण न करने की थी जिन्होंने मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करने के निमित्त हाथ में रथ का पहिया लेकर रथ से कूद कर सिंह जैसे गज को मारने चलता है वैसे मुझे मारने को वेग से चले, उस समय पृथ्वी काँपने लगी। कंधे से पीताम्बर गिर पड़ा। उन पार्थ सारथी में मेरी भक्ति हो।

भी नहीं। हे अच्युत! आप से यही विनती है कि वह छवि मेरे हृदय पटल पर निरन्तर लिखी रहे। उसी छवि का चिन्तन करते-करते मैं इस जरा जरजरित, बाणों से विद्ध शरीर का परित्याग करूँ। उसमें तो आपने भक्तवत्सलता की पराकाष्ठा ही करदी थी, करुणा के बाँध को ही छिन्न-भिन्न कर दिया, कृपा की सीमा ही तोड़ दी। आपने यह सिद्ध कर दिया कि मैं अपने आश्रितों के लिए सब कुछ कर सकता हूँ। अपने गन्तव्य पथ से मन मोड़ सकता हूँ, अपनी की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ सकता हूँ अपने निज के प्रण को भक्त के प्राण के सम्मुख छोड़ सकता हूँ।

सबके सम्मुख आपने प्रतिज्ञा की थी, "कि मैं किसी भी दशा में युद्ध नहीं करूँगा, शस्त्र लेकर किसी पर आक्रमण न करूँगा, केवल अर्जुन के रथ को ही हाकूँगा।" मैंने प्रतिज्ञा की थी, यदि मैं श्रीकृष्ण का भक्त हूँगा, तो उनकी प्रतिज्ञा को तुड़वा दूँगा, उन से शस्त्र ग्रहण कराके छोड़ूँगा।"

स्वामी सेवक की दो परस्पर में प्रतिज्ञायें थीं। एक ओर ये ब्रह्माण्ड नायक सृष्टि स्थिति तथा संहार के कर्ता भर्ता और हर्ता दूसरी ओर था एक अधम पामर प्राणी। सुमेरु और राई की लड़ाई थी। समर्थ और असमर्थ का सामना था।

मैंने धर्म के विरुद्ध नीति के विरुद्ध युद्ध मर्यादा के विरुद्ध उसदिन सबके ऊपर दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया था। मेरे प्रहार को न सह सकने के कारण पांडव पक्षीय वीर रणक्षेत्र त्याग कर दशों दिशाओं में भागने लगे। मेरे प्रबल पराक्रम से पांडवों को परम विषाद और कौरवों को महान हर्ष हुआ। उस समय मेरे शरीर में रुद्र का आवेश आगया था, ऐसा लगता था, कि पांडवों की सेना तो है ही क्या आज मैं विश्व का संहार कर सकता हूँ। अपने सैनिकों के मेरे भय से भागते देखकर श्याम

सुंदर अर्जुन के रथ को मेरी ही ओर बढ़ा लाये। मैंने कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचा। युद्ध में रथी पर ही प्रहार किया जाता है, सारथी पर भूल से प्रहार हो जाय दूसरी बात है। मैंने आज सारथी पर ही प्रहार किया। श्यामसुंदर के शरीर को तीखे बाणों से वेध दिया, उनके सुदृढ़ कवच को तोड़ दिया और अर्जुन को भी बाणों से ढक दिया। उस दिन मैंने इतने बाणों की वर्षा की कि कृष्ण अर्जुन और उनका रथ किसी को दिखाई ही नहीं देता था, किन्तु श्रीकृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए उन के विचलितहोने का तो प्रश्न ही नहीं था, किन्तु वे लीलाधारी आज अत्यंत व्यग्र थे। पांडवों के ऊपर और मुझ आततायी के ऊपर कृपा करने को कातर हो रहे थे। जब मैंने पांडवों की समस्त सेना को भगा दिया और कौरवों ने मेरे जय जयकार से दशों दिशाओं को भर दिया तो श्यामसुंदर ने अपनी कृपा की गठरी को खोल दिया। भक्तवत्सलता ने उन्हें प्रतिज्ञा छोड़ने को विवश कर दिया। आप सात्यकी से ललकार कर बोले—"वीर! हत्या की जड़ यह बुड्ढा ही है। तुम भागते हुये सैनिकों को रोको मत। सबसे कहदो जिसे भागना हो भाग जाय आज मैं अकेला ही इस बूढ़े सिंह को मारकर गिरा दूँगा। आज भीष्म बच नहीं सकते। मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ता हूँ अपने अस्त्र ग्रहण न करने के प्रण को छोड़ता हूँ, आज मैं अपने सुदर्शन चक्र से इस बूढ़े का सिर काटकर पांडवों को सुखी बनाऊँगा। आज मैं पृथ्वी को भीष्म हीन अभी बनाता हूँ, अभी मैं इस बूढ़े को रथ के नीचे गिराता हूँ।"

इतना कह कर उन्होंने घोड़ों की रासों को छोड़ दिया। वे सिंहशावक के समान रथ से तुरन्त कूद पड़े। उन्होंने रथ के पहिये को ही आज सुदर्शन चक्र बना लिया। अहा! उस समय सुदर्शन चक्र धारी, चक्रधारी की कैसी [illegible]

शोभा थी। उनका नीलवर्ण शरीर नीले रंग से भरा पत्थर मारने से क्षुभित नील सरोवर के समान प्रतीत होता था। ऊपर उठा हुआ हाथ नील कमल नाल सा दिखाई देरहा था। उसपर हिलता हुआ चक्र उफुल्ल कमल सा प्रतीत हो रहा था। सिंह जैसे अपनी माँद से मदमाते मतंग पर उछल कर झपटता है वैसे ही वे वेग से मेरी ओर दौड़े आरहे थे। मैं तो उस छवि को देखकर मुग्ध हो गया, अपने को धन्य धन्य माना। कृतार्थ हो गया। मैंने तो मानव जीवन का फल पालिया। उनके चरणों की धमक से धरा धसी सी जाती थी उनके तेज पूर्ण प्रभाव से सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गयी थी। सुदर्शन चक्र की चमक सहस्रों विजलियों के प्रकाश को तिरस्कृत कर रहीं थी। घनश्याम के कर कमल में तेजपूर्ण चक्र जल भरे मेघों में चमकती विद्युत के समान प्रतीत हो रहा था। क्रोध से उनके युगल नेत्र अरुण कमल के समान प्रतीत होते थे। वे मुझे मारने को ही मेरी ओर दौड़े आरहे थे। उस समय उनका पीताम्बर कंधों से खिसक गया था। उस पुनीत पट का छोर भूमि पर किड़र रहा था। चक्र धारी श्री कृष्ण उस समय युगान्त कारी सवर्त के मेघों के समान प्रलयकारी अग्नि के समान साक्षात् युगक्षयकारी कालके समान प्रतीत हो रहे थे।

अपनी ही ओर माधव को आते देख मेरा हृदय बाँसो उछलने लगा। मैंने धनुष तान कर उनका स्वागत किया। मैं भयभीत नहीं हुआ। भक्तवत्सल भगवान् की वह रुद्र मूर्ति मुझे साक्षात् करुणा की सजीव प्रतिकृति हो प्रतीत हुई। मेरे दोनों नयन प्रेमाश्रुओं से भरे हुए थे, इस कारण उस करुणामयी मूर्ति का मैं अपलक भली भाँति दर्शन नहीं कर सकता था। स्वर गद् गद् होजाने से मैं भली भाँति

स्तुति भी नहीं कर सकता था। मैंने इतना ही कहा—हे चक्रपाणि! आइये। हे माधव! मुझे सनाथ बनाइये। हे जगन्निवास! मुझे रथ से नीचे गिराइये। हे वासुदेव! मेरे हृदय में वास कीजिये। हे सर्वशरण्य! मुझे अपने चरणों की शरण में रख लीजिये। हे घनश्याम! मुझे मार कर मेरा उभय लोकों में कल्याण कीजिये। अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर मुझे गौरवान्वित कीजिये। हे भक्तवत्सल! अपनी भक्तवत्सलता का अद्भुत अपूर्व अनुपम आदर्श उपस्थित कीजिये।

अहा! उस समय की छवि को यह मुमूर्षवाणी कह ही कैसे सकती है। तीक्ष्ण वाणों से जिनका सम्पूर्ण श्री अंग विद्ध था, जो टेसू के पुष्पित वृक्ष के समान रक्त रंजित दीख पड़ते थे, जिनके तन का कवच छिन्न-भिन्न हो रहा था। पीताम्बर अस्त व्यस्त हुआ कहीं का कहीं लटक रहा था। जो भीतर करुणा भरे होने पर भी ऊपर से कृत्रिम क्रोध का प्रदर्शन कर रहे थे, जो मेरी प्रतिज्ञा को सत्य बनाने के निमित्त अपनी पूर्वकृत प्रतिज्ञा को भूल गये थे। वे भक्त वत्सल भगवान् मरते समय में भी मुझे बिसारें नहीं। वे ही मुकुन्दमाधव 'मुमुक्षु मुमुर्षु' की ममता को मेंट कर मेरे मन में बस जायँ। वे ही मतिहीनों के मति, गतिहीनों के गति मेरी भी गति हों।

मैंने तो रणभूमि में जिस छवि के दर्शन किये हैं वही मेरे हृदय में समायी हुई है। वही मेरे हृदय पटल पर लिखी हुई है। वही मरते समय ज्यों की त्यों ही बनी रहे। अन्त समय में वह अद्भुत छटा विस्मृत न हो। कैसी अनुपम छटा थी उस सारथी स्वरूप की। भक्तवत्सलता का वह साकार स्वरूप था। भगवत्ता वहाँ से भागी हुई सी प्रतीत होती थी। अर्जुन के रथ पर वे वीरासन से अत्यन्त ही सावधानी के

साथ हटे थे। एक हाथ में चाँदी के वर्णके-दूध के भागों के समान बगुलों के पंखों के सदृश, कर्पूर के समान स्वच्छ सफेद वर्ण के चार घोड़ों की आठ रेशमी रास पकड़े हुए थे। दूसरे हाथ में बेत में रेशम लगा लम्बा तोत्र (चाबुक) शोभा दे रहा था। मुख से घोड़ों को हाँकने का अव्यक्त किह-किह शब्द कर रहे थे। जो अपने रथी के हित में सचेष्ट-सावधान थे, जिनके नेत्र चंचल हो रहे थे, चारों ओर शंकित दृष्टि से निहार रहे थे, उन्हीं वीर रस की शोभा के धाम, घनश्याम के चरणारविन्दों में मुझ मरने वाले बूढ़े का अधिकाधिक अनुराग हो। उस छवि को निहार कर मरने वाले शत्रु भी सारूप्य मोक्ष के अधिकारी हो गये हैं। फिर मैं तो उनका भक्त हूँ, किंकर हूँ, अनुचर, दास हूँ, शरणापन्न हूँ, प्रपन्न हूँ। वात पित्त कफ के प्रकोप से अन्तिम वेलामें, मरणकालमें वह छवि हृदय से निकल न जाय। वह अनुपम रूप बिसर न जाय। यही पार्थ सारथी के पाद पद्मों में पुनीत प्रार्थना है।

यद्यपि मैं वीर रस का उपासक रहा हूँ, किन्तु श्रीकृष्ण तो सर्व रस हैं। ये मूर्तिमान शृंगार हैं। मधुर रस की पराकाष्ठा उन्हीं में हुई है। मधुर रस ने अपना आश्रय अच्युत को ही बनाया है। मन्मथ के मन को भी मथन करनेवाले मदनमोहन मदनगुपाल, मदनबिहारी, मायवमुरारी अपनी ललित लीलाओं के लिये ब्रज में परम प्रसिद्ध हैं। उनका मधुर रूप तो ब्रज में ही देखने को मिलता है। वे ब्रज सीमन्तिनी महाभागा ब्रजबाला धन्य हैं, जिनके साथ इन श्यामसुन्दर ने अलौकिक रास विहार किया। सदा उनके साथ रहकर हास परिहास करते रहे। अपनी सुललित गति से उनके मन को आलोड़ित करते रहे। उनकी गति में गति मिलाकर अंग से अंग सटाकर परस्पर

मुँह मटकाकर, अंगों को फड़काकर, नेत्रों से नेत्र मिलाकर, नूपुर बजाकर नृत्य दिखाते रहे। सखियों के संग सुखद हास परिहास मनहर दिव्य विलास, और लताकुंजों में उनके साथ निवास करके उन्हें सुखी बनाते रहे। मंद-मंद मनोहर मुसकान द्वारा, आलिंगन, चुम्बन, परिरंभन तथा प्रेममयी चारुचितवन द्वारा उनको सदा सम्मानित करते रहे, उनके चंचल चित को हरते रहे। उनके साथ रसमय रासविलास करते रहे। उनके हृदय प्रेमपात्र को नेह नीर से भरते रहे। सहसा बीच में ही अन्तर्धान हो गये। दृष्टिपथ से परे से प्रतीत होने लगे। अदृश्य हो गये।

उस समय विरह वेदनासे विकल बनकर व्रजकी व्रजाङ्गनाओंने जो गीत गाये हैं, प्रेमोन्माद की दशाओं में उन्होंने जो जो चेष्टायें की हैं विरह सन्ताप को मिटाने के लिये उन्होंने जो पूर्व कृत लीलाओं का अनुकरण किया है, जिस ममता तथा तन्मयता के साथ तुम्हें पुकारा है, जैसे तुम्हारा आह्वान किया है, वैसे ही मैं भी तुम्हें मरते समय विकल होकर बुलाऊँ, उन्हीं की भाँति मेरी भी तन्मयता हो जाय। जैसे वे सब व्रजाङ्गनायें घर, द्वार कुटुम्ब परिवार की सुरति बिसार कर आपके ही गुणगान में लगी रहीं, आप की ही स्मृति में संसार से विस्मृत हो गईं। सम्पूर्ण जगत को कृष्णमय ही निहारने लगीं, उसी प्रकार मेरा मन भी जगत् भर में आप को ही सर्वत्र देखे, आप का ही [illegible]।

हे विश्वेश्वर! आप प्राणिमात्र के [illegible] साक्षात् मूर्ति ही हो। जगत में [illegible] है, यह आप प्रेम सागर में से ही [illegible] उन्हीं के कारण व्याकुल बने [illegible] सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है। [illegible] ही मेरी सर्वदा गति हो। मेरी [illegible]

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भीष्मपितामह भगवान की पूर्व की की हुई झाँकियों का स्मरण कर करके प्रेम की भीख माँगने लगे। आगे एक दो झाँकियों का उल्लेख करके यह भीष्म स्तुति के प्रकरण को मैं समाप्त करूँगा।

छप्पय

सखा वचन सुनि सपदि शत्रु सेना के मधिमहँ।
रथकूँ ठाढ़ो करयो लखे सब सगे समर महँ॥
भयो पार्थ मन मोह धनुष सर कर तैं डार्यो।
दै गीता को ज्ञान मोह तम शत्रु विदार्यो॥
निज प्रन तजि प्रनरखन मम, चले चक्र लै बध करन।
धरा धँसत गिरि पीत पट, लटकि भगत सो मम सरन॥

पद

मेरो प्रन प्रनतपाल प्रभु राख्यो।
अस्त्र शस्त्र रन महँ नहिँ लैहूँ बार बार हरि भाख्यो॥ १॥मेरो॰
निज प्रभुता तजि पारथ के हित हरषि हरषि रथ हांक्यो।
शर बरसा करि अश्व सारथी हौं रथ अरजुन ढाँक्यौ॥ २॥मेरो॰
श्याम सारथी कुपित भयो अति कुटिल भ्रुकुटि करि ताक्यो।
रथ तैं कूदि चक्र लै प्रन तजि मोकूँ मारन भाज्यो॥ ३॥ मेरो॰
धँसत धरा पग पग पै पीरो पट फहरावन लाग्यो।
भगतवछल भागत पग पकरे पारथ किङ्रिन लाग्यो॥ ४॥ मेरो॰
फट्यो कवच तनु रक्त सुरंजित अंग सरनि बिंधि डार्यो।
शोभा अकथ झपटि पंचानन अबहिँ मत्तगज मार्यो॥५॥ मेरो॰
लखि छवि अनुपम भयो कृतारथ-त्र्यो-नाथ! हौं तार्य।
धन्य धन्य प्रभु करुना सागर तन मन तुम पै वार्यो॥६॥ मेरो॰

भीष्म-स्तुति (३)

(११)

मुनिगण नृपवर्य संकुलेऽन्तः
सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो-
मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥१

(श्री भा० १ स्क० ९ अ० १४ श्लो०

छप्पय

सुललित गति अति मधुर मनोहर मंद हँसनिवर ।
चंचल चितवन चारु चपल चतुराई चितहर ॥
मनवनिता बस भईं मधुर रस माहिँ डुबाईं ।
अन्त रहित पुनि भये करीं लीला मिल गाईं
पाँडव मख पूजा प्रथम, लखि मम मन आनंद अति ।
मरन समय सो दीठि पथ, रहें अगति की एक गति ॥

भीष्म पितामह सम्मुख अवस्थित भगवान् श्यामसुन्दर के प्रति कह रहे हैं—"हे भक्तवांछाकल्पतरो ! आप सबकी भावना को समझ कर उसी के अनुरूप दर्शन देते हैं आप एक होने पर भी

१भीष्म जी स्तुति करते हुये कहते हैं—"मुनिगण और श्रेष्ठ राजाओं से सुशोभित महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के सभाभवन में जिनकी सर्वप्रथम पूजा हुई थी, वे ही प्राणिमात्र के परम दर्शनीय भगवान् श्याम सुन्दर मेरे नयनों के सम्मुख समुपस्थित हैं । अतः मुझसे बढ़कर भाग्य शाली और कौन होगा ?

नाना भावों में नानारूपों में नाना नामों से प्रसिद्ध हैं। आप विश्व-वन्द्य हैं, जगत्गुरु हैं सभी के सम्माननीय हैं। इसका निर्णय तो मेरी आँखों के सम्मुख धर्मराजके राजसूय यज्ञमें ही हो गया था।

उस महान् यज्ञ में उस समय के सभी विद्वान् पधारे थे। कर्मकांड में पारङ्गतमुनि, उपासना के मर्म को जानकर उसके अनुसार आचरण करने वाले उपासक, तथा ज्ञान की पराकाष्ठा में पहुँचे हुए ज्ञानी, वेदों के ज्ञाता ऋषि, मननशील मुनि, स्मृतियों के रचयिया स्मृतिकार, दर्शनों को बनाने वाले दार्शनिक, व्याकरण में परिगत वैयाकरण तथा सभी संशयों को छेदन करने वाले सर्वशास्त्रविद विद्वान् महर्षि, महर्षि राजर्षि तथा देवर्षि उस यज्ञ में समुपस्थित थे।

ज्ञानियों के अतिरिक्त पराक्रमी भी कोई नहीं बचा था, भूमंडल के किसी देश का, कोई भी छोटा बड़ा राजा ऐसा नहीं था, जो उस यज्ञ में उपहार लेकर उपस्थित नहीं हुआ हो। अपने को सर्वश्रेष्ठ कहनेवाले, दशों दिशाओं को जीतने का साहस करने वाले, अपने को सर्व स्वतन्त्र माननेवाले ऐसे सभी राजा उस यज्ञ में आये थे, जिनकी चतुरंगिणी सेना के भार से यह पृथिवी काँप उठती थी। मुनिगण तथा नृपतिगण के अतिरिक्त प्रजा के सभी वर्ण के गणनायक उपस्थित थे।

उस समय यही प्रश्न उठा था, कि इस इतने भारी समाज में, सर्व गुणों के पारदर्शियों के समूह में सर्व प्रथम पूजा उसी की होनी चाहिये जो सर्व श्रेष्ठ हो, सर्वमान्य सर्ववन्द्य हो, सर्वेश्वर हो, सर्वगुण सम्पन्न हो, सर्व विजयी हो, सर्व समर्थ हो, सर्व विद्या विशारद हो, सर्व सत्तावान हो। विचार विमर्श के अनन्तर सर्व सम्मति से ये ही सर्वेश्वर प्रथम पूजार्ह माने गए जो सकुचाए हुए मेरे सम्मुख बैठे हैं। अहा! मैं कितना भाग्यशाली हूँ मेरे

पूर्वकृत सुकृतों के सम्बन्ध में क्या कहना है, जिनके नाम का स्मरण मरते समय बड़े-बड़े योगी करना चाहते हैं, किन्तु वात पित्त कफ से कण्ठावरोधन होने के कारण जिनका नाम तक नहीं आता। वे स्वयं साक्षात् श्यामसुंदर रूप से मरने के समय मेरी दृष्टि के सम्मुख आगये हैं। अब मेरे उद्धार में क्या सन्देह है।

जिस समय सुवर्ण की झारी से द्रौपदी जल डालने लगी और धर्मराज प्रेमभरित हृदय से साश्रु नयनों से इनकी छवि को निहारते हुए सुवर्ण के पात्र में पादप्रक्षालन कर रहे थे तो ऐसा लगता था, एक अपर गंगा नन्दनंदन के पादपद्मों से निसृत हो रही है, वह गंगा सुवर्ण पात्र में ही नहीं छलकती थी, सभा में समुपस्थित सभी जनों के नयनों में भी वह आविर्भूत होकर छलक रही थी; प्रवाहित हो रही थी। अहा ! उस समय श्यामसुन्दर की उस विश्ववन्दनीय छवि को देखकर मैं कृतार्थ हो गया, धन्य बन गया, उस समय मुझे भगवान् वासुदेव कितने महान् दिखाई दे रहे थे, वे ही महतोमहीयान अपनी महत्ता को छोड़ कर पैदल ही मेरे समीप आगये और मरण समय में इस वृद्ध की दृष्टि के सम्मुख उपस्थित होकर मुझे दर्शन दे रहे हैं, कृतार्थ कर रहे हैं।

यद्यपि ये एक हैं, अद्वितीय हैं, इनके समान दूसरा कोई नहीं है। कैवल्य हैं, निष्कल हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, निराकार हैं, निरुपम हैं, असङ्ग हैं, अच्युत हैं, अद्वय हैं तथापि अपने ही आप रचे हुए अनेकों प्राणियों के हृदयों में उसी प्रकार अनेक से प्रतीत होते हैं जैसे एक ही सूर्य भिन्न-भिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न से प्रतीत होते हैं।

रंग बिरंगे काँचों में रंग बिरंगे भिन्न-भिन्न प्रकार के बहुत से सूर्य दिखाई देते हैं। काले रंग के कांच में सूर्य भी काले ही

दीखते हैं। लाल रंग में लाल, पीले रंग के में पीले, हरे में हरे नीले में नीले और सफेद में सफेद। यद्यपि सूर्य एक ही हैं किन्तु रंग भेद से दृष्टि भेद से वे भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।

पानी के भरे बहुत से पात्र रखे हैं। हिलते हुए पानी के पात्र में सूर्य भी हिलते हुए दीखेंगे। चलते हुए पात्र में सूर्य भी चलते से दिखायी देंगे, स्थिर पात्र में वे भी स्थिर दिखेंगे। कुछ मनुष्य मध्याह्न के समय समुद्र के किनारे बैठे हैं तो उन्हें भी सूर्य अपने अपने सिरों पर ही दीखेंगे, दूसरे हिमालय के शिखर पर बैठे हैं तो उन सबको भी वे अपने अपने सिरों पर ही दिखाई देंगे। इसी प्रकार उस समय जहाँ भी जो बैठे होंगे सभी को एक ही सूर्य अपने अपने सिरों के ऊपर दीखेंगे।

एक ही सूर्य को अपनी अपनी भावना के अनुसार बुरा भला या लाभकारक अलाभकाकर भी समझते हैं। कोई पथिक है, सूर्यताप से तप रहा है तो उसे सूर्य दुखद प्रतीत होते हैं। दूसरा कुंभकार है, उसके गीले पात्र सूर्य के कारण सूख रहे हैं, उसे सूर्य सुखद प्रतीत होते हैं, कोई जाड़े से काँप रहा है, उसे सूर्य आनन्द देने वाले लगते हैं। एक ही सूर्य भिन्न-भिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न से लगते हैं। इसी प्रकार इन श्यामसुन्दर को जरासन्ध शिशुपाल आदि शत्रु प्रतीत होते हैं। नन्द यशोदा, वसुदेव देवकी को बच्चे दिखायी देते हैं। व्रज-वनिताओं को परमप्रेष्ठ, कान्त और रमणीय लगते हैं, वे मधुर भाव से कान्त भाव से इनकी उपासना करती हैं, व्रज के श्रीदामा, मधुमंगल तोककृष्ण तथा अन्य सखा गण इन्हें अपना सखा समझते हैं, उद्धव, अर्जुन तथा दूसरे लोग इन्हें अपना स्वामी, सखा तथा सर्वस्व मानते हैं। सब अपनी-अपनी भावना से माना करें। जिनकी वात्सल्य भाव की उपासना है उनके

लिये ये भले ही बच्चा बन जायँ, जिनकी सख्य की उपासना है, उनके गले में गलवैयाँ डाल कर ये उनसे भले ही लड़ें भिड़ें जो मधुर भाव से कान्त भाव से इनकी उपासना करती हो उनके साथ ये भले ही हास विलास तथा रास करें, जो इन्हें स्वामी मानते हों उन्हें ये दास मानकर भले ही आज्ञा दें, किन्तु मैं तो पार्थ सारथी के ही रूप का उपासक हूँ, मेरी दृष्टि में तो इनकी वही बाँकी झाँकी गड़ गयी है। मेरे अन्तः करण में तो इनकी वही छवि लिख गयी है, मेरी रति तो पार्थसारथी के पुनीत पाद पद्मों में बनी रहे। अब मेरे मन में किसी प्रकार का भेद भ्रम नहीं रहा। अब मेरा मोह क्षय हो गया। मोह क्षय का ही नाम मोक्ष है। पवर्ग के नाश का ही नाम अपवर्ग है। पाप पुण्य, फलेच्छा, बन्धमोक्ष, भद्र मद, ममता मोह इन्हीं भावों का नाम पवर्ग है। जहाँ इनका नाश हुआ अपवर्ग सुख मिल गया। इन श्यामसुन्दर की अहैतकी कृपा से मेरा मोह क्षय हो गया है, मैं इन अजन्मा भगवान् वासुदेव में भेद भ्रम से रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार मन से, वाणी से, तथा समस्त इन्द्रियों की वृत्तियों के द्वारा अपने मन को उन सच्चिदानन्दघन परमप्रेमास्पद, परमकारुणिक, करुणावरुणालय भगवान् श्यामसुन्दर में लगाकर अन्त में पितामह भीष्म शान्त हो गये, वे उन निष्कल निरंजन परब्रह्म में लीन हो गये। भीष्म के चले जाने से सभी को बड़ा दुःख हुआ। पांडव सभी उनके विरह में रोने लगे, स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। श्यामसुन्दर

की आज्ञानुसार धर्मराजने उनके सभी और्ध्वदेहिक कृत्य कराये ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भीष्मपितामह के शान्त हो जाने पर धर्मराज के राज्य को निष्कंटक करके भगवान् पुनः द्वारका के लिये चलने को प्रस्तुत होकर रथ में बैठ गये। सभी ने समझ लिया भगवान् अब जायँगे ही। सभी रोते रोते उनके पीछे चले नगर। की नारियाँ अटा अटारियों से श्यामसुन्दर की शोभा निहार कर परस्पर में जो उनकी महिमा गा रही हैं, अब मैं उसी का वर्णन करूँगा।

छप्पय

मकरी मुखतैं सूत निकारै जालो तानै ।
कीड़ा तामें करै मोद मन माहीं मानै ॥
त्यों जग रचि अज करैं खेल माया भरमावत ।
रवि तो एक अनेक दीठि भ्रम—वश ज्यों दीखत ॥
श्याम रूप महँ भेद-भ्रम-रहित भयौ हौं लीन अब ।
स्तुति करि यों भीष्म ने, प्रान तजे लखि दुखित सब ॥

पद

सो छवि नयननि माहिं समावै ।
सारथि-थल रथ माहिं विराजत आनन रज लपटावै ॥१॥ सो०
रथके चलत हिलत बानर धुज फहर-फहर फहरावै ।
करधृत रास रेशमी खींचत, कोड़ा कलित फिरावै ॥२॥ सो०
धरे कनपटे रथी चरन युग, इत उत तिनहिं घुमावै ।
चलन कहै रथ हाँकै ततछिन, ठहरो सुनि ठहरावै ॥३॥ सो०
निज दल अरिदल मग्न समर महँ, तिनि हठि दरस दिखावै ।
प्रभु दरसन करि मरै शूर सो, अनसि परम पद पावै ॥४॥ सो०

पद

कीन्हीं स्तुति भीषम भारी।
इन्द्री मन वानी वश करिकें करी चलन की त्यारी ॥१॥ की०
भेद भाव भव भय भ्रम त्यागे धारे हिये मुरारी।
श्याम सारथी, सर्वेश्वर कहि, अन्तिम सांस निकारी ॥२॥ की०
सुरगन बरसा सुमन करहिं नभ, ऋषि मुनि जयजयकारी।
भीषम गये सुनत नर नारी सबई भये दुखारी ॥३॥ की०
विलपत पांडव धीर बँधावत, वृन्दाविपिनविहारी।
अन्त समय करुना सागर प्रभु, बिसरै सुधि न हमारी ॥४॥ की०

हस्तिनापुर की महिलाओं द्वारा माधव की महिमा (१)

(१२)

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो–
य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥१

(श्री भा० १ स्क० १० अ० २१ श्लो०)

छप्पय

हथिनापुर तैं चले द्वारका रथ चढ़ि हरि जब।
अटा अटारिनि चढ़ीं नारि बतरावति मिलें सब॥
सखि ! ये जो रथ जात प्रेम बरसात सजलघन।
प्रेम पयोधि परेश प्रकृति-पर पुरुष पुरातन॥
नाम रूप तैं रहित पर, स्वय जगत बनि जात हैं।
जीव मोहिनी प्रकृति तैं, जग जीवनि भरमात हैं॥

भीष्म पितामह के महा प्रस्थान के अनन्तर, धर्मराज के राज्य की समुचित व्यवस्था करके, सब को प्रसन्न करके, सभीको

---

१ हस्तिनापुर की महिलायें—परस्पर में एक दूसरी से कहरही हैं—सखि ! ये जो रथ में बैठे हुए जा रहे हैं ये वे ही पुरातन पुरुष हैं जो निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप से प्रलय काल से पूर्व जब तक गुणों में क्षोभ नहीं था प्रकृतिकी साम्यावस्था में भी स्थित थे। उस समय समस्त सत्वादि शक्तियाँ प्रसुप्त थीं अतः जीव इन जगदात्मा ईश्वर में ही लीन थे।

सब प्रकार से सान्त्वना देकर श्यामसुन्दर द्वारका चलने को प्रस्तुत हुए। उस समय भावी वियोग का स्मरण करके सभी के हृदय भरे हुए थे, धर्मराज प्रेम के कारण अधीर हो रहे थे, अर्जुन की दशा तो वर्णनातीत थी, आज उसे अभी से सम्पूर्ण संसार सूना सूना प्रतीत हो रहा था। श्यामसुन्दर सम्मुख थे, फिर भी अर्जुन उन्हें देख नहीं सकते थे। अन्तःपुर की स्त्रियाँ रुदन कर रही थीं, हृदय तो श्यामसुन्दर का भी भरा हुआ था, किन्तु वे ऊपर से हँस रहे थे। जिनके प्रति अपना प्रेम होता है, उन्हें अधिक से अधिक सुख पहुँचाने की, ऊँचे से ऊँचा सम्मान देने की सभी की हार्दिक इच्छा होती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। श्यामसुन्दर जब द्वारका के लिये प्रस्थान करने लगे तो धर्मराज की इच्छा हुई, उन्हें पूर्ण सम्मान के साथ विदा करना चाहिये। हमें जो राज्य, पाट, धन, ऐश्वर्य शासन वैभव जो भी कुछ प्राप्त हुआ है, सब श्याम सुन्दर की ही कृपा से तो प्राप्त है, उन्हीं का तो कृपा प्रसाद है। यथार्थ राजा तो भगवान् वासुदेव ही हैं, हम तो उनके बनाये रक्षक हैं, राज्य किंकर हैं। आज सम्राटों के समान ही श्यामसुन्दर की विदाई हो।" ऐसा विचार प्रकट करते ही राज्यके जो मृदङ्ग, शंख, भेरी वीणा पड़व, गोमुख, धुन्धुभि, आनक, घण्टा और दुन्दुभि आदि जितने भी बाजे थे नन्दनन्दन के रथ के आगे बजने लगे। प्रशस्त राज पथों पर छिड़काव हो गया। स्थान स्थान पर धूप, तथा कपूर घृत मिलाकर अगरु आदि सुगन्धित पदार्थ जलाये गये, बन्दनवार बाँधे गये, दुकानें सजायी गयीं बड़े बड़े फाटक लगाये गये केले के सकून खंभे लगाये, गये। पथ के दोनों ओर पंक्ति बद्ध भवनों की छतों पर रंग बिरंगी साड़ियाँ ओढ़ कर आओ

में काजल लगा कर माँगों में सिन्दूर भर कर सोलह शृंगार करके वस्त्राभूषणों से सज धजकर नगर की सभी स्त्रियाँ हाथों में सुगन्धित सुमनों की मालायें लेकर श्याम सुन्दर के दर्शनों के लिये बैठगयीं।

भगवान् को खुले रथ पर सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाया गया। मौ तानों वाला दुग्ध फेन के समान श्वेत छत्र जिसका दंड रत्नों से विभूषित था, तथा जिसमें बड़े बड़े मोतियों की लड़ियाँ लटक रही हैं उसे अर्जुन ने उन पर तान दिया। दोनों ओर गंगा यमुनी चँवर लेकर सात्यिकी और उद्धव चँवर डुलाने में अपनी विचित्र अद्भुत चातुरी दिखाने लगे। स्थान स्थान पर मंगल पाठ करने वाले स्वस्त्ययन करने वाले तथा शुभाशीर्वाद देने वाले ब्राह्मण उनके

सम्मान के लिये खड़े थे। वे उन्हें तिलक लगाते आशीर्वाद देते मंगल पाठ करते। भगवान् सिर झुकाकर उनके लिये प्रणाम करते। रथ के घोड़े इतने शनैःशनैः चल रहे थे कि किसी को प्रतीत ही नहीं होता था, कि वे चल रहे हैं या खड़े हैं। उस समय की श्यामसुन्दर की शोभा परम दर्शनीय थी।

अटा अटारियों पर चढ़ी सौभाग्यवती कुरुवंशकी कुल वधुएँ तथा अन्य नगर की नारियाँ स्नेह लज्जामयी मद मुसकान के सहित भगवान् को अपलक नयनों से निहारती हुई उनपर फूलों की वर्षा कर रही थीं। पुष्पों के स्पर्श से भगवान् की शुभ्र मुसकान बिखर जाती जिससे सभी दिशायें आनन्दमयी बन जाती। उस मन्द मन्द मधुर मधुमयी मुसकान से उन मानवती महिलाओं का मन मनमोहन की ओर भी अधिक आकर्षित हो जाता।

सकलगुणगणनिलय, सौन्दर्यसागर आन्दकन्द नन्दनन्दन भगवान् वासुदेव के शांति कान्ति तेज, रूप ऐश्वर्य और श्री सम्पन्न स्वरूप को देख कर नगर निवासिनी की नारियाँ परमविस्मित हो गयीं और एक दूसरी से पूछ ने लगीं—"बहिनों! नर शरीर में ऐसा सौंदर्य, ऐसा ओज इस प्रकार का तेज, ऐसी मधुरता, इस भाँति की लावण्यता तो हमने आज तक देखी नहीं। यह आभा तो मानवता के परे की प्रतीत होती है?

इस पर अपर कहती—"अरे, तुम्हें पता नहीं है, ये साधारण पुरुष थोड़े ही हैं, पुरातन पुरुष हैं!

कोई पूछती—"एक भी तो इनका बाल सफेद नहीं

हुआ। दाढ़ी तक निकली नहीं। सर्वथा किशोरावस्थापन्न प्रतीत होते हैं, फिर तुम इन्हें पुरातन पुरुष कैसे बता रही हो?

इस पर वह हँसती हुई कहती—"दुत पगली कहीं की, पुरातन पुरुष का अर्थ बूढ़ा मनुष्य थोड़े ही है। देखो, भूत भविष्य और वर्तमान तीन काल हैं। ये इन तीनों कालों की कल्पना से भी पूर्व थे और जब इन तीनों की कल्पना न रहेगी, तब भी रहेंगे।

दूसरी पूछती- हमने तो सुना है, प्रलयकाल में कोई जीव रहता ही नहीं, उस समय सृष्टि करने वाली सम्पूर्ण शक्तियाँ सिमिट जाती हैं, गुणों की साम्यावस्था हो जाती है, तब कोई रहता ही नहीं उस समय सत्व, रज तथा तम जिनसे सृष्टि होती है, अथवा भूदेवी श्रीदेवी और दुर्गादेवी जो शक्तियाँ हैं ये भी सो जाती हैं। उस समय ये कैसे रहते होंगे, रहते भी होंगे तो कहाँ रहते होंगे?

इसका उत्तर देती हुई अपर कहती है—"उस समय ये अपनी ही महिमा में रहते हैं। निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप से अवस्थित रहते हैं। अपनी आत्मा में ही रमण करते हैं, इन्हें अन्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं रहती। जब प्रपंच का नाम भी नहीं रहता तब ये केवल निष्प्रपंच श्रीकृष्ण ही कृष्ण अपने आप में क्रीड़ा करते रहते हैं। सम्पूर्ण जगत् इन्हीं में अन्तर्हित था। प्रकृति चुपचाप पड़ी थी उसके गुण सभी साम्यावस्था में पड़े शयन कर रहे थे। जैसे वृक्ष के बीज में उसके पत्ते स्कन्ध शाख, फल फूल आदि छिपे रहते हैं और उपयुक्तकाल तथा परिस्थिति आने पर उसमें से अंकुर हो जाता है और विशाल वृक्ष बन जाता है। ये श्रीकृष्ण सभी कारणों के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं है। ये ही सबके प्रेरक हैं, इन्हें प्रेरणा करने वाला कोई

नहीं हैं। ये ही सब के सृजन करने वाले हैं, इनका सृजन कर्त्ता कोई नहीं है। सभी के रक्षक ये ही हैं, इनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। सभी का संहार इन्हीं की प्रेरणा से होता है,किन्तु इनका कभी संहार होता नहीं। ये सदा एक रस अखंड निर्विकार निर्लेप निरञ्जन निर्गुण, निरीह निर्विकल्प बने रहते हैं। फिर भी क्रीड़ा के लिये सृष्टि रचते हैं, या रचाते हैं। निष्प्रपंच होने पर भी सृष्टि के समय सप्रपंच से प्रतीत होते हैं।

दूसरी पूछती है—"निष्प्रपंच से सप्रपंच कैसे 'हो जाते होंगे सखि ?

अपर कह रही है—"देखो, सखि ! सृष्टि के पूर्व सम्पूर्ण समस्त जीव इन जगदात्मा जगदीश्वर में लीन थे। उस समय जगत् अनाम रूप था। न किसी का कोई नाम ही था न रूप ही। जैसे नमक नाम रूप छोड़ कर क्षार समुद्र में विलीन'हो जाय।

समय आने पर शिल्पी की प्रेरणा से जल को पुनः क्यारियों में भरा जाता है, फिर जल से नमक बन जाता है, उसके भिन्न-भिन्न नाम और भिन्न-भिन्न आकृतियाँ हो जाती हैं। नमक बनने से समुद्र का जल घटता नहीं, न बनने से बढ़ता नहीं। उसे बनने से कोई हानि नहीं, न बनने से कोई लाभ नहीं। फिर भी बनाने वाले बनाते हैं, समुद्र इसमें आनन्दानुभव करता है, उमड़ कर प्रसन्नता प्रकट करता है।

इसी प्रकार माया काल पाकर सृजनोन्मुखी होती है। जब सृष्टि का काल उपस्थित होता है और काल रूपाशक्ति से प्रेरित होकर जीवों को मोहित करने वाली माया प्रकृति में क्षोभ होता है, उसकी साम्यावस्था भंग होती है, गुणों में वैसम्य होने का

समय आता है तो ये अपनी उस माया रूपा प्रकृति को सहारा देते हैं।"

क्यों सहारा देते हैं सखि ?

क्यों का क्या उत्तर है सखि ! क्रीड़ा में क्यों का प्रश्न ही नहीं उठता। उस की इच्छा होती है, मैं एक से बहुत हो जाऊँ। अनाम रूप से नामरूप वाला हो जाऊँ। फिर प्रसुप्त पड़े जीवों के कर्म भी तो भुगवाने हैं। उन कर्मों के विधान के निमित्त स्वयं ही शास्त्रों की रचना करते हैं, कर्मों के भोगों का कर्मों से छूटने का विधान भी वे बनाते हैं बताते हैं। इस लिये जीवों के कर्मों को भोगार्थ अथवा क्रीड़ार्थ इस सृष्टि की वे रचना करते हैं। निष्प्रपंच से सप्रपंच से दिखायी देने लगते हैं। ये ही काल रूपा शक्ति बनकर अवसर उपस्थित करते हैं, माया शक्ति बनकर इच्छा करते हैं, प्रकृति में क्षोभ कराते हैं,गुणों में विषमता करते हैं, नाना नाम रूपों में हो जाते हैं। स्वयं ही व्यवहार के लिये वेदादि शास्त्रों के रचयिता बन जाते हैं और सृष्टि प्रवाह को पुनः प्रवाहित करने लगते हैं।

एक पूछती है—"सखि ! जब यह गुण प्रवाह अनादि है, कर्म, फल और भोगों का तारतम्य लगा ही हुआ है, तो फिर इससे छुटकारा कैसे हो ?

दूसरी कहती है—"इनका दर्शन अति दुर्लभ है, ये ही कृपा करें, तभी इस जगत् के आवागमन से छुटकारा मिल सकता है। जितने तपस्वी तप करते हैं, योगीगण यम, नियम आसन आदि करके प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान धारणा और समाधि का अभ्यास करते हैं, याज्ञिक यज्ञों द्वारा उपाना करते हैं, कर्मकांडी विविध वैदिक कर्मों द्वारा जिसे पाना चाहते हैं वे ये ही हैं। ये मलिन अन्तःकरण वालों को नहीं मिलते, जिनका

मन शुद्ध नहीं है, उन्हें इनके दर्शन दुर्लभ हैं। सूक्ष्मदर्शी लोग अत्यंत पैनी दृष्टि से बहुत सी सूक्ष्म दृष्टि से इन्हें देखने का प्रयत्न करते हैं, उसके द्वारा ये देखे भी जा सकते हैं। क्योंकि ब्रह्मा ने इन इन्द्रियों के द्वार तो बाहर की ओर बनाये हैं। अतः ये इन्द्रियाँ बाहरी वस्तुओं को ही देख सकती हैं, कोई ऐसा विरला ही शूर वीर होता है, जो बाहिरी दृष्टि को फेरकर अन्तर्दृष्टि करके-भीतर छिपे इन परात्पर प्रभु को देखते हैं, जो इन्द्रियों और प्राण को जीतकर अपने मन को निर्मल बना लेते हैं। कोई अपने पुरुषार्थ से केवल कर्मों के ही बल पर इन्हें पाना चाहे तो नहीं पा सकता। मन के निर्मल होनेपर भी इनकी कृपा अपेक्षित है, चित्त निर्मल भी और साथ भक्तिभाव से भरा ही हो, प्रभुप्राप्ति की अत्युत्कट उत्कंठा भी हो। अतः चित्तकी पूर्णतया विशुद्धि भी प्रधान कारण इनके चरणारविन्दों की अनुरक्ति ही है। हमारा बड़ा भाग्य है कोई पूर्व जन्म के परमसुकृत हैं जो इनके परमदुर्लभ दर्शन हमें घर बैठे ही प्राप्त हो गये, किन्तु ये तो अब द्वारका जा रहे हैं फिर हमें इनके दर्शन कैसे होंगे, इनके दर्शन के बिना पूर्णतया तृप्ति नहीं हो सकती। यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये न हो तो हम इनके साथ ही साथ द्वारका को चलें। जहाँ भी ये जायँ इनके पीछे ही लगी रहें। क्षण भर को भी इनका पीछा न छोड़ें। इनका साक्षात्कार तो निर्मल चित्तवाले योगी गण इसी जन्म में इसी शरीर से करलेते हैं। और वे फिर सब कुछ छोड़कर इन्हीं के हो जाते हैं, जब हमें इनके दर्शन हो ही गये तो फिर हमें घर द्वार कुटुम्ब परिवार से प्रयोजन ही क्या है?

एक ने कहा—सखि! हमने तो सुना है, सृष्टि तो चतुर्मुख ब्रह्मा करते हैं, रक्षा चतुर्भुज विष्णु करते हैं और संहार त्रिनेत्र शिव करते हैं। इनके न चार मुख न चार हाथ और न तीन नेत्र

हैं। ये तो किशोरावस्थापन्न परम सुकुमार अत्यंत रूपलावण्य युक्त महापुरुष हैं, घनश्याम हैं ?

इस पर दूसरी बोली—"तुमने शास्त्रों को सुना नहीं क्या ? व्यास जी के बनाये पुराणों को पढ़ा नहीं क्या ? ब्रह्म वादियों के बताये ज्ञान का मनन नहीं किया क्या ? यदि मनन किया होता तो ऐसी बात कभी भी न कहती। देखो ब्रह्मादि तो इन्हीं की प्रेरणा से सृष्टि स्थिति और प्रलय कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, सबके मूल कारण तो ये ही हैं, जितने वेद्व्यास आदि रहस्य वादी ऋषि महर्षि हुए हैं और अब हैं उन सब ने वेदों में तथा अन्य सभी गुह्य शास्त्रों में इन्हीं के यशका गान किया है। यों तारतम्य से तो बहुत से ईश्वर हैं जो सामर्थ्यवान हो वही ईश्वर है, किन्तु सबसे श्रेष्ठ सबके एक मात्र स्वामी तो अकेले ये श्रीकृष्ण चन्द्र ही हैं। इनमें यही विशेषता है कि ये खेल खेल में सहज भाव से बिना प्रयास के जगत की सृष्टि स्थिति और प्रलय करते हैं किन्तु स्वयं सदा निर्लेप बने रहते हैं उसमें आसक्त नहीं होते।"

किसी ने कहा—सखि ! अबोधबालकभी खेलता है तो मनोरंजन की इच्छा से खेलता है। कैसा भी मंद से मंद मति वाला मानव हो प्रयोजन के बिना तो वह भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। इन्हें क्या पड़ी है जो इतने बड़े संसार को बनाते हैं। रक्षा करते हैं फिर बिगाड़ते हैं ?

इस पर हँस कर दूसरी सखी बोली—खेल में कोई प्रयोजन देखा जाता है क्या ? विवाह के समय तुम जो अपने दुलहा का छड़ी से मारती गयी उसमें क्या प्रयोजन था ? उन्हें चोट पहुँचाना तो प्रयोजन नहीं था। एक क्रीड़ा थी घर की स्त्रियों का विनोद था। केसर से तुम्हारे पति ने तुम्हारा मुँह पोत दिया इसमें क्या प्रयोजन था। तुम्हारे ऊपर अनुराग प्रदर्शित करना यही तो उसका हेतु था।

कर्मबन्धन में पड़े जीव हमारी लीलाओं को सुनें पढ़ें। कवि गण उनका गान करें, वर्णन करें उनको सुनकर गाकर मनन करके इस संसार सागर से पार हों, यही भगवान् की इस क्रीड़ा का प्रयोजन है। उनकी सभी क्रीड़ाओं में जीवों के ऊपर उनकी असीम कृपा निहित है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हस्तिनापुर की महिलायें माधव की और महिमा का जैसे वर्णन करेंगी उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

वेद बनावैं विघ्न रचैं पालैं संहारैं।
जनम अजन्मा लेहिं सुखद लीला विस्तारैं॥
भक्ति भाव जो धारि चित्त निर्मल करि लेवें।
तिनकूँ ये अखिलेश भक्तिवश दरसन देवें॥
जिनके यशकूँ जगत महँ, वेद शास्त्र नित गात हैं।
तेई अज अच्युत अगम, रथ चढ़ि निजपुर जात हैं॥

पद—

सखि ! ये रथ चढ़ि इतको आवें।
पुरुष पुरान पुरातन पावन पूरब पुन्यनि पावें॥१॥
प्रलयकाल महँ शक्ति सिमिटि सब, इनमें ही सो जावें।
लीला हित जगकरन चहहिं जब माया प्रकृति जगावें॥२॥
जोगी जुग-जुग जोन जतन करि इनि जगपति कूँ ध्यावें।
इन्द्रिय मन निर्मल करि इहि तन भक्ति भावतैं पावें॥३॥
महामहिम व्यासादि महामुनि, वेद विदित यश गावें।
यह दरसन नित-नित पावें प्रभु, पद पदुमनि सिर नावें॥४॥

महिलाओं द्वारा माधव की महिमा-(२)

(१३)

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो—
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे॥❀

(श्री भा० १ स्क० १० अ० २५श्लो०)

छप्पय

तेहिं अवनि अवतार धरैं पापी नृप जब जब।
धारें भग, ऋत, सत्य, दया, यश जगहित तब तब॥
यदुकुल महँ अवतरित भये करि कीरति गावै।
भयो धन्य कुल सकल स्वरगमहँ अमर सरावै।
मधुवन अतिशय धन्य तम विहरे जहँ राधा रमन।
भई धन्य द्वारावती निवसत जहँ प्रभु प्रति सदन॥

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! माधव की महनीय महिमा का गान हस्तिनापुर की महिलायें महलों की छत पर बैठी परस्पर में कथन कर रही हैं। उनमें से कोई बोली—"सखियो ! यह क्या [illegible]

❀ हस्तिनापुर की स्त्रियाँ भगवान की महिमा का [illegible] करती हुई कह रही हैं—"सखि ! जब पृथिवी का [illegible] राजा लोग [illegible] तब [illegible] ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, [illegible] और यश को धारण करते हैं।

विषय छेड़ दिया। गुणोंसे पहिले क्या था, प्रकृति की साम्यावस्था में गुण कैसे रहते हैं प्रकृति में क्षोभ होने पर गुणों में वैसम्य कैसे होता है। सृष्टि, स्थिति प्रलय क्या है। इन बातों में बुद्धि को क्यों फँसा रही हो। सम्मुख जो मन मोहक मूर्ति दृष्टि गोचर हो रही है, उसकी चर्चा करो। प्रत्यक्षप्रभु के सम्बन्ध में वार्तालाप करो। निर्गुण से हमें क्या लेना। हमें तो सगुण चाहिये।"

दूसरी बोली—"वे निर्गुण ही तो सगुण बन गये हैं। पानी ने ही तो हिम का रूप रख लिया है। विशुद्ध चैतन्य चीनी के ही तो अङ्ग प्रत्यंग बन गये हैं। अनाकृति सुवर्ण ने ही तो मनोहर हार की आकृति बनाली है। सौंदर्य माधुर्य ही तो साकार बन गया है। अनादि अच्युत ही तो अवनि पर अवतरित हो गये हैं।

किसी दूसरी ने पूछा—"सखि! निराकार को साकार रूप रखने की क्या आवश्यकता पड़ी। निर्गुण ने गुणों का आश्रय क्यों ग्रहण किया। अवाङ्‌ मन सगोचर, मन वाणी और बुद्धि का विषय क्यों बन गया?"

इस पर दूसरी बोली—"सखि! क्रीड़ा करने को ये निर्गुण से साकार बन जाते हैं, भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त ये रूप रख लेते हैं, अपनी कथाओं का विस्तार करने के निमित्त—जिन कथाओं को सुन सुन कर प्राणी इस असार अगाध संसार सागर को सहज में ही तर जायँ इसी निमित्त—ये अवनि पर अवतीर्थ हो जाते हैं। मानव देह केवल खाने पीने और भोग भोगने के ही निमित्त नहीं है। इससे धर्मार्जन करना चाहिये, प्रभु पद प्राप्ति करना चाहिये। मनुष्यों को जो शासन में रखते हैं, प्रजा का जो पालन करते हैं, जो अपने ऐश्वर्य तथा प्रभाव से राजते हैं प्रकाशित होते हैं ऐसे महीपाल, प्रजा पालक, नृपति राजागण जब धर्म छोड़ कर केवल छल से, बलसे, कला कौशल

से, करबढ़ाकर, लोगों को दुख देकर केवल पेट पालन में ही लग जाते हैं, भौतिक उन्नति का ही अपने जीवन का चरमलक्ष्य समझने लगते हैं, धर्म से निरपेक्ष उदासीन या विरुद्ध हो जाते हैं, तब समय समय पर ये परात्पर प्रभु प्रकट होकर धर्म की संस्थापना करते हैं, उन राजारूप में व्याप्त असुरों को दंड देकर पृथिवी का उद्धार करते हैं। उस समय प्रभु स्वयं समस्त ऐश्वर्य समस्त धर्म, समस्त यश, समस्त शोभाश्री, समस्त वैराग्य समस्त ज्ञान, सत्य, दया और प्रसिद्धि को धारण करते हैं। इसी लिये वे भगवान् कहाते हैं। वैसे तो सभी अवतारों में ये सब गुण रहते हैं, किन्तु किसी अवतार में किसी गुण का प्राधान्य होता है, अन्य गुण उस प्रधान गुण के सम्मुख दब जाते हैं हलके पड़ जाते हैं। जैसे जब पृथिवी पाताल में चली गयी तब उसके उद्धार के लिये भगवान् ने सूकरावतार धारण किया। जब शंखा सुर वेदों को लेकर समुद्रमें छिप गया था तब मत्स्य रूप रखकर वेदों का उद्धार किया। मनु को प्रलय जलमें बीजों सहित बचाया ये विशेष कर धर्म के ही लिये अवतार हैं। इनमें सौंदर्य माधुर्य अणिमादि सिद्धियों का उतना प्रकाश नहीं हुआ था। पृथु रूप से पृथिवी का निग्रह करके उस को गौ बना कर समस्त ऐश्वर्य को दुहकर उसका पृथिवी पर प्रसार किया विषम भूमि को समकिया। यह ऐश्वर्य प्रधान अवतार है। रामावतार धारण करके समस्त संसार में रावणादि राक्षसों को मार कर अपने यश का विस्तार किया अपनीश्री से शोभा से संपूर्ण भुवनों को मोह लिया, कपिल, ऋषभ, दत्तात्रे यादि अवतारों में वैराग्यको छटा दिखादी, सनत कुमार व्यासादि अवतारों में ज्ञानकी पराकाष्ठा दिखादी। नर नारायण, राम आदि अवतारों में ऋत, सत्य का प्राधान्य प्रदर्शित किया। बुद्धावतार लेकर प्राणिमात्र पर दया करने का पाठ पढ़ाया अनेक मनु, प्रजापति तथा राजाओं के रूप में अवतार लेकर

अपने यश का विस्तार किया। इस प्रकार समयसमय पर ये ही श्री कृष्ण भिन्न भिन्न अवतार लेकर धर्म की स्थापना करते हैं।

इसपर एक दूसरी सखी बोली—"बहिन! रहने भी दो इन कच्छ मच्छ सूकर अवतारों की बातें। तुम तो गोद के को छोड़ कर पेट वाले के सम्बन्ध की बातें करने लगीं। वे अवतार हुए होंगे। कच्छ, मच्छ, सूकर और नृसिंह इन अवतारों को हम तो दूर से ही डंडौत करती हैं। इन्हें न छू सकें न हृदय से चिपटा सकें। सखि! रति तो समान धर्मी में होती है, एक जाति के ही लोगों में अनुराग होता है। कछुआ भगवान् की हम पूजा तो कर सकती हैं, किन्तु उनके ओठों पर निःशंक होकर ओठ तो कछुवानी ही रख सकती है। कछुआकुल में ही आनन्द मनाया जा सकता है! हमें तो इन यदुनन्दन घनश्याम के ही सम्बन्ध में बातें करनी चाहिये। यदुप्रवीर इन देवकी नन्दन वासु देवकी ही विरुदावली का बखान करना चाहिये।

अहा! देखो तो सही यदुवंशियों को कोई कभी पूछता था। ययाति के शाप से यदुकुल क्षत्रियों से पृथक करदिया गयाथा, इस वंश में कोई छत्र चँवर धारी सिंहासनासीन राजा नहीं हो सकता था। क्षत्रियों की सभा में यदुवंशी समान आसन पर बैठ नहीं सकते थे। किन्तु जब से श्याम सुन्दर इस कुल में अवतीर्ण हुए तब से यह कुल धन्य हो गया, प्रशंसनीय बन गया, श्लाघनीय समझा जाने लगा। इस कुल के लोग गर्व से सिर ऊँचा उठाकर चलने लगे और अभिमान के साथ कहने लगे हम उस प्रशंसनीय यदुकुल के हैं, जिसमें परात्पर प्रभु श्रीकृष्ण चन्द्र उत्पन्न हुए हैं। परम पुरुष पुरुषोत्तम लक्ष्मी पति इन वासुदेव के जन्म से यह कुल सब से अधिक सम्मानित बनगया। परम पावन और अतिशय पवित्र तम बन गया।

भगवान् ने व्रज में विहार किया। जिस व्रज की रज के एक कण को ब्रह्मादि देवता दुर्लभ मानकर उसकी प्राप्ति के लिये ईश्वराधना करते हैं मधुवन पहिले मधुराक्षस के रहने का स्थान था। लवणासुर जैसा हिंसक राक्षस राजा यहाँ का अधिपति था। सर्वत्र भयंकर वन ही वन था। वह पुरुषों का मांस खाने वाला क्रूर राक्षस दिनभर धनुषबाण लेकर भयंकर कँटीले इन सघन वनों में घूमता और सैकड़ों मृग तथा अन्य जीवों का संहार करके अपने खाने के लिये लाता था। उस समय साधु पुरुष यहाँ आने से भयभीत होते थे, किन्तु जब से इन चंचल चपल चित-चोर ने अपने चरणों से इस भूमि को पवित्र किया, जब से ये वन वनों में नंगे पैरों फिरे तभी से यह व्रजभूमि धन्यतम बन गयी, मधुवन परमपावन क्षेत्र बन गया। इसकी पावन रज और भी अधिक पावन बन गयी। व्रजकी रज की महिमा अत्यधिक बढ़ गायी। इन वृन्दाविपिनविहारी के विहार से व्रजमंडल की राजधानी मथुरापुरी श्लाघनीय हो गयी।

देखो द्वारकापुरी आज स्वर्ग के यश को भी तिरस्कृत करने वाली क्यों बन गयी। पहिले यह विषधर नागों का द्वीप था। समुद्र के गर्भ के टापू में वर्णाश्रमी रहना अच्छा नहीं समझते। सौराष्ट्र देश की भी शास्त्रकारों ने कीकट देशों में गणना की है. जहाँ तीर्थयात्रा के अतिरिक्त समय में जाने पर पुनः संस्कार कराना पड़ता है। वह समुद्र के बीच में बसी द्वारावती को आज परमपावन सप्तपुरियों में गणना क्यों हो गयी। क्यों धन्यतमा बन गयी। आज यह पृथिवी के पावन यश को बढ़ाने वाली,

सभी के मन को लुभाने वाली, देवताओं के दुःखों को दूर करनेवाली ऋषि मुनि तथा विद्वानों को आश्रय देने वाली क्यों बन गयी ? इसीलिये कि यहाँ यदुकुल चन्दन देवकीनन्दन अपने. चरणारविन्दों से नित्य विहार करते हैं, इसमें बने महलों में सतत निवास करते हैं। निवासी नर नारियों को नयनानन्दकारी भवभयहारी द्वारकाधीश अपने कृपाकटाक्षों द्वारा नित्य ही निहारते हैं और यहाँ के भी समस्त जन इन आनन्दघन, मनभावन, परमपावन यदुनन्दन का नित्य दर्शन पाते हैं, उन्हें प्रेमभरी चितवन से नित्यप्रति अवलोकन करते हैं। भगवान् का जिस देश में अवतार होता है, जिस काल में प्राकट्य होता है और जिन पात्रों के लिये प्रभु प्रकट होते हैं, वे सभी देश, काल और पात्रधन्य हैं, श्लाघनीय हैं, वन्दनीय और अर्चनीय हैं। सखि ! यदुवंशी पुरुष, वृन्दावन के ग्वालवाल तथा समस्त गोप धन्य हैं, जिन्हें श्यामसुन्दर के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हैं। नर देह की सार्थकता इसी में है, कि इस जीवन में भगवान् का दर्शन हो जाय, भगवान् को इस शरीर से छू सकें ,"ब्रह्म संस्पर्श प्राप्त हो सके।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियों ! अभी आगे महिलाओं की वार्तालाप और है उसे आगे कहूँगा।

छप्पय

शापित यदुकुल भयो धन्यतम सब जग वन्दित।
सुरमुनि परम सिहायँ नाम सुनि सकल अनंदित ॥
ब्रजरज कन कन भई परमपावन प्रभु पद तैं।
करि ब्रज वनिता संग भई मदमाती मद तैं ॥
धन्य काल जब जनम अज, विहरें बिभु सो देश धनि।
धन्य पात्र हरि पद परसि, धनि कवि प्रभु गावें गुननि ॥

पद

सखि ! ये धरमहेतु तन धारें ।
जब जब जगमहँ जनमें जड़नृप, तब तब तिनिकूँ मारें ॥१॥
विश्वविदित विश्वेश विसम्भर, धरम धुरीननि तारें ।
प्रकटे यदुकुल बढ़े गोपकुल, दासनि यश विस्तारें ॥ सखि ॥
करयो सुकृत द्वारावति ब्रज का, ऋषि मुनि बैठि विचारें ।
प्रभुपद परसि भई पावन रज, धनि धनि सकल पुकारें ॥ ३ ॥
धनि ब्रजबाल श्याम सँग खेलें जेते वे हरि हारें ।
को ब्रज बनितनि भाग्य सराहै, हँसि प्रभु जिनहिं निहारें ॥ ४ ॥

महिलाओं द्वारा माधव की महिमा (३)

(१४)

नूनं व्रतस्नान हुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीत पाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्य धरामृतंमुहु-
र्व्रजस्त्रियः सं मुमुहुर्यदाशयाः ॥

(श्रीभा० १ स्क० १० अ० २८ श्लो०).

छप्पय

सखि ! ते नारी धन्य फिरी जिनि भाँवरि हरिसंग ।
पकर्यो जिनि कर कमल श्याम कूँ सोंप्यो निज अंग ॥
जिनि अधरनि कूँ सुमिरि बनी बौरी भज बाला ।
तिनि अधरनि रस सतत चुआवत तिनि मुखलाला ॥
प्रभुपद पावन केनिमित, नित-नित तप तपसी करत ।
सो सुकुमारिनि हरन हित, लड़त भिड़त पुर पुर फिरत ॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हस्तिनापुर की युवतियाँ माधव की महिमा का बखान करती हुई देश काल और पात्रता की धन्य-

---

* हस्तिनापुर की महिलायें परस्परमें कह रही हैं-"सखि ! जिन भाग्यवती नारियों का पाणिग्रहण इन श्यामसुन्दर ने किया है, उन्होंने निश्चित ही व्रत, स्नान और हवन आदि के द्वारा ईश्वर की आराधना की होगी तभी तो वे सब उनके उस अधरामृत का प्रेम से पान करती हैं, जिसकी स्मृति से ही व्रजबनितायें बारम्बार विमोहित बन जाती हैं ।

ता श्रीकृष्ण संसग से ही सिद्ध करती हुई परस्पर में बतरा रही हैं।

उनमें से एक ने कहा—सखि ! तुम पुरुषों की चर्चा क्यों कर रही हो, यदुकुल वाले धन्य हैं या द्वारावती मधुपुरी संसार में श्लाधनीय गुणों वाली है, होगी। हम तो स्त्रियाँ हैं हमें तो स्त्रियों की ही चर्चा करनी चाहिये। स्त्री को सबसे अधिक इच्छा होती है स्नेहकी प्रेम की अपनेपन की। स्त्री प्रेम के पीछे घर द्वार कुटुम्ब परिवार धन धान्य राजपाट सगे सम्बन्धी यहाँ तक कि अपने आत्मा से उत्पन्न संतनों को और शरीर को भी त्याग देती है। स्त्री के हृदय में प्रेम की एक ज्वाला जलती रहती है वह एक ऐसा संगी साथी चाहती है, जिसे सर्वस्व समर्पण करके, सभी उत्तरदायित्व उसे सौंपकर सुख पूर्वक उसकी क्रोड़ में सोती रहे। स्त्री अपना ऐसा जीवन संगी चाहती है जो स्वयं शूरवीर हो जो पत्नी की सभी आपत्ति विपत्तियों से रक्षा कर सके। "पातीति पतिः" पतिका अर्थ ही यह है जो सब प्रकार से पत्नी की रक्षा कर सके। पति का दूसरा नाम है, भर्ता भर्ताका अर्थ है जो भरण पोषण करने में समर्थ हो। पति को स्वामी भी कहते हैं जो किसी के अधीन न हो। स्त्री प्रेम की भूखी होती है, उसे धन नहीं चाहिये। अपने प्रेमाकर्षण से ही तो वह परघर में आकर स्वामिनी और गृहिणी—घर की स्वामिनी-बन जाती है। जिस पत्नी को पतिका प्रेम प्राप्त हो गया उसे सब कुछ मिल गया जिसे पतिका प्रेम नहीं मिला और अतुल सम्पत्ति ही मिल गयी तो किस काम की। तभी तो राजपुत्री सम्राट् चक्रवर्ती की पुत्रवधू सीता ने महलों में सुख पूवक रहने की अपेक्षा कंटकाकीर्ण भयंकर सघन वनों में पति के संग रहना श्रेयस्कर और सुखप्रद समझा।

इस पर दूसरी बोली—सखि ! तुम सत्य कहती हो, शूरवीर,

प्रतापी, प्रेमी पति मिल जाने पर इस लोक के सभी सुख स्त्री को प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु भाग्यवश कोई असुर प्रकृति का पति मिल गया, तो सभी गुड़ गोबर हो जाता है, न इस लोक में सुख होता है, न परलोक में। पारलौकिक सुख तो प्रभुकी आराधना से ही भगवत् सेवासे ही सुलभ हो सकता है। पत्नी अपने पति से चार वस्तुओं की आकांक्षा रखती है, एक तो पति उसमें भरपूर प्यार करे उसे अंग संग प्रदान करे, दूसरे उसके द्वारा उसे योग्य सन्तानों की उपलब्धि हो, तीसरे पति अपनी पत्नी की इच्छित वस्तुओं का अनुराग और आग्रह के साथ लाकर प्रदान करे और चौथी यह कि पति कभी पत्नी का संग छोड़े नहीं। ये तो धर्म एवं संसारी सुख हुए। ऐसे पति पत्नी को धर्म का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ फल मिलता है, किन्तु भगवद्भक्ति इस संसार से मुक्ति तो भगवत् उपासना द्वारा ही संभव है।

इन श्यामसुन्दर की पत्नियों को इस लोक के तथा पर लोक के, धर्म के तथा भक्ति के सभी सुख सहज ही प्राप्त हैं, क्योंकि इन्हें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही पति रूप में प्राप्त हैं। अन्य स्त्रियों को तो पति मे परमेश्वर भावना का आरोप करना पड़ता है नरपति को नारायण मानना पड़ता है, विनाशी में अविनाशी की कल्पना करनी पड़ती है, किन्तु इन्हें तो दोनों भाव अकल्पित स्वतः ही उपलब्ध हैं। इन्हें जो पति प्राप्त हुए हैं, वे स्वयं साक्षात् अविनाशी परब्रह्मपरमेश्वर श्रीमन्नारायण ही हैं, कल्पना आरोप तथा भावना की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और इन्हें पति से प्राप्त होने वाले सभी सुख परिपूर्ण मात्रा में प्राप्त हैं। इससे हम तो यही अनुमान करते हैं, कि जिन देवियों को भगवान् की पत्नी होने का अति दुलभ पद प्राप्त हुआ है। जिनका स्वयं ही परब्रह्मपरमात्मा परिपूर्ण प्रभुने स्वेच्छा से

पाणिग्रहण किया है, उन्होंने पूर्वजन्म में अवश्य ही बड़े-बड़े यज्ञों में अवभृथ स्नान, कार्तिकादि महीनों में तीर्थस्नान, काया को कृश करने वाले कठिन-कठिन चान्द्रायणादि व्रत' विपुल सामग्रियों वाले वेद की विधि से हवन, यज्ञ तथा श्रद्धा भक्ति पूर्वक ईश्वरोपासनादि शुभ कर्म किये होंगे तभी तो इन्हें ऐसा सुदुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

इस पर एक ने पूछा—"सखि! तुम्हें कैसे प्रतीत हुआ कि इन कृष्ण पत्नियों ने व्रत, स्नान और हवन आदि से ईश्वर की आराधना की है? क्या तुम ने इन्हें ऐसा करते देखा है?"

यह सुनकर वह बोली—"सखि! सभी बातें क्या प्रत्यक्ष देखकर ही कही जाती हैं। प्रत्यक्ष तो अपनी आँखें भी नहीं दीखतीं अपनी पीठ भी दिखायी नहीं देती। दूसरों की आँखें और पीठ देखते हैं, इससे अनुमान लगा लेते हैं कि हमारे भी ये होंगी। कोई देवदत्त नाम का व्यक्ति है। वह शरीर से हृष्ट पुष्ट और मोटा है। एक आदमी उसे हमारे पास लाया और उसने कहा—"देखो, यह इतना मोटा देवदत्त है, किन्तु सूर्योदयसे सूर्यास्त तक कुछ भी नहीं खाता।"

यदि कुछ भी न खाता तो दुर्बल होना चाहिये किन्तु है यह मोटा इससे अनुमान लगाया जाता है, कि दिनमें न खाता होगा, रात्रि में अच्छे अच्छे पौष्टिक पदार्थ डटकर यथेष्ट खा लेता होगा। बिना पौष्टिक पदार्थों के खाये हृष्ट पुष्ट मोटा कैसे हो सकता है। इसी प्रकार इन श्रीकृष्ण पत्नियों के सौभाग्य को देखकर हम अनुमान करती हैं, कि इतना भारी सौभाग्य बिना व्रत,स्नान और हवन द्वारा ईश्वर आराधना किये प्राप्त हो ही नहीं सकता। इन परम भाग्यवती राजकुमारियों के सौभाग्य के सम्बन्ध में क्या कहा जाय, जो श्यामसुन्दर के अधरों के अमृत का प्रेम पूर्वक प्रतिदिन प्रेमपूर्वक पान करती रहती हैं।

इस पर दूसरी बोली—"देखो,सखि ! यह सौभाग्य केवल व्रत, हवन तथा स्नानादि से ही प्राप्त नहीं हो सकता इसमें भगवत् कृपा ही प्रधान हेतु है। यदि व्रत स्नान से ही यह सौभाग्य प्राप्त होता, तो व्रज की कुमारियों ने कार्तिक स्नान और कात्यायिनी देवी की पूजा करके यह सौभाग्य चाहा था, उन्हें कहाँ श्याम सुन्दर का नित्य अधरामृत पान करने को मिलता है इस लिये यही अनुमान करना चाहिये कि इस सौभाग्य में प्रधान हेतु है भगवत् कृपा। जिसे ये वरण करना चाहें वह ही इन्हें प्राप्त कर सकेगा। जिस अधरामृत की स्मृति मात्र से व्रजाङ्गनायें मोहित हो जाती हैं उस अधरामृत का ये प्रभु पत्नियाँ यथेष्ट पान करती हैं, वास्तवमें ये अवश्य ही अत्यंत भाग्यवती हैं, इनके सौभाग्य के सम्बन्ध में अधिक और कहा ही क्या जा सकता है ?"

इस पर एक दूसरी बोली—"सखि! यथार्थ में श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियाँ परम भाग्यवती हैं, जो भगवान् की पत्नियाँ बन सकीं। मीठा भी और भर कठौता भी। प्राणवल्लभ प्रियतम पति भी और परमेश्वर भी दोनों साथ ही मिले गये। परमेश्वर भी ऐसा नहीं जो गुम्म-सुम्म देवता बना मंदिर में पूजा ग्रहण करता हुआ बैठा रहा। ईश्वर भी मिला तो रसिक, प्रेमी, चंचल, चपल चटोरा चुलबुला, फड़कता हुआ, हँसता हुआ, सौंदर्यका साकार स्वरुप अत्यन्त मधुर स्वभाव वाला, पत्नियों की आज्ञा में रहने वाला, प्रियतमाओं की इच्छाओं का अनुवर्तन करने वाला। स्त्रीत्व का सम्पूर्ण सुख उन्होंने स्वयं ही नहीं लूटा, किन्तु स्त्री जाति को भी धन्य बना दिया, उसे भी गौरवान्वित कर दिया। नहीं तो लोग कह देते हैं अजी स्त्री तो स्त्री है इन स्त्रीयों में पवित्रता नहीं

रहती इसलिये इन्हें पर तन्त्र बनाये रखो। स्वतन्त्रता प्रदान मत करो। अब तो हम सब से छाती ठोक कर कह देती हैं—"बक-बक मत करो, जिन स्त्रियों के वश में स्वयं साक्षात् परमात्मा रहते हैं, जिनकी प्रत्येक आज्ञा का श्री कृष्ण दास की भाँति पालन करते हैं उन स्त्रियों को निरस्त शौच (अपवित्र)। अपास्त पैशल (अस्वतंत्र) कहने का साहस जो करता है, वह अज्ञ है मूर्ख है बुद्धि हीन है। इन कृष्ण पत्नियों ने सम्पूर्ण स्त्री जाति का मुख समुज्वल बना दिया। स्त्री जाति महत्व अत्यधिक बढ़ा दिया। जैसे. बड़ी बड़ी आँखों को देखकर सभी आँखों को आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही ऐसी भाग्यवती स्त्रियाँ स्त्री जाति भर के लिये आनंदका सुख का हेतु हैं। यह बात कृष्ण पत्नियों के सौभाग्य से सिद्ध होती है।

इस पर एक ने पूछा—"सखि! इन कृष्ण पत्नियों को ऐसा कौन सा सुख मिला? इनके सौभाग्य के सम्बन्ध में कुछ सुने भी तो?"

यह सुनकर दूसरी बोली—"इन्हें कौन सा सुख नहीं मिला। सभी सुख श्याम सुन्दर के सान्निध्यमात्र से ही मिल गये। स्त्री चाहती है कि शूरवीर योग्य पति या तो स्वयं हमें वरण करें या हम उसे अपनी इच्छा से चुनले। इसी लिये क्षत्रियों में गान्धर्व विवाह और राक्षस विवाह दो सर्व श्रेष्ठ विवाह माने गये हैं। इन दोनों विवाहों में माता, पिता, भाई तथा परिवार की अपेक्षा नहीं रखी जाती। कन्या किसी वर से विवाह करना चाहती है, माता पिता उसके हाथ में दूर्वादल में मधूक-महुए-के पुष्पों की माला देकर कहते हैं तेरी इच्छा जिसे पतिरूप में वरण करने

की हो उसके कण्ठमें यह माला डाल दूं।" बची स्वयंवर मंडप में जाकर उसकी प्राप्ति की इच्छा से बैठे वरों में से स्वयं इच्छानुसार वर को वरण करती है। जो कुमार उसे न चाहता होगा वह स्वयंवर में आवेगा ही क्यों। इस विवाह में कन्या और वर दोनों की ही इच्छा का प्रधान्य होता है । माता पिता इसमे आपत्ति नहीं करते, कन्याकी इच्छा पर छोड़ देते हैं। इसका नाम गांधर्व विवाह है। क्षत्रियों में यह विवाह अत्यंत श्रेष्ठ समझा जाता है। इसमें एक पण स्वयंवर होता है जिसमें पिता कोई पराक्रमसूचक पण रख देता है, उसे जो पूरा करदे वही कन्या को लेजाय। नाग्नजिती सत्या का विवाह भगवान् ने सात बैल नाथ कर ऐसे हो किया। भद्राने स्वयं ही भगवान् को अपनी इच्छा से पति बनाया था। इसी प्रकार कालिन्दी ने भी। मित्र विन्दा ने भी जय माला भगवान् के गले में डालनी चाही किन्तु उसके भाइयों ने उसे रोक दिया, तब भगवान् बल पूर्वक उसे स्वयंवर से उठालाये यह विवाह गांधर्व और राक्षस दोनों ही प्रकार का था।

राक्षस विवाह में यह होता है, कि कन्या तो किसी वर को चाहती है, किन्तु उसके माता पिता उसका विवाह किसी दूसरे से ही करना चाहते हैं। तब कन्या गुप्त रूप से अपने इच्छित वरके पास सन्देश भिजवा देती है, या वर ही स्वयं उसके मनोगत भाव को समझकर वहाँ आता है और बल पूर्वक कन्या का अपहरण करके अपने घर ले जाकर विवाह करता है। इन दोनों प्रकार के विवाहों में वर और कन्या दोनों की ही अनुमति इच्छा आवश्यक होती है। यदि कोई कन्या किसी वर को नहीं चाहती और वह राक्षस विधि से अपहरण कर ले जाता है तो अपहरण कर्ता पापी माना जाता है। भीष्मपितामह जब काशि राज की

कन्या अम्बा को अपने भाइयों के लिये राक्षसी विधि से हर ले गये और अम्बाने अपनी अनुरक्ति किसी दूसरे राजकुमार में दिखायी तो तुरन्त उन्होंने उसे उस राज कुमार के निकट भिजवा दिया। इसी लिये गान्धर्व और राक्षस विवाह क्षात्र धर्म में प्रसस्त हैं, भगवान् के सभी विवाह ऐसे ही हुए। सखि! यह कितने आश्चर्य की बात है, जिन परात्पर प्रभु को बड़े बड़े योगी जन सहस्रों लक्षों वर्ष समाधि लगाकर खोजते रहते हैं, वे स्वयं अस्त्र शस्त्र लेकर राजकुमारियों को खोजने निकलें। जिन्हें बड़े बड़े योगेश्वर चाह से अपनाना चाहते हैं, वे ही स्वयं जिनको अपनी पत्नी बनाने के लिये व्यग्र रहें, युद्ध करते फिरें, लड़ते भिड़ते फिरे उनके सौभाग्य की क्या सीमा है।

देखो, रुक्मिणी जी का विवाह शिशुपालसे होने वाला था। बरात भी आ गयी, वर वेष में माथे पर मौर बाँधकर शिशुपाल भी बरात लेकर कुंडिनपुर में आ गया था, किन्तु भगवान् अपनी अनुरक्ता शरणा पन्न प्रेयसी पर कृपा करके विवाह के ही समय विदर्भ देश की राजधानी में पहुँचे और अपने बाहुबल के प्रभाव से शिशु पाल आदि वीरों का मान मर्दन करके स्वयंवर से रुक्मिणी जी को हरण कर लाये। गये थे भौमा सुरको मारने उसके यहाँ सौलह सहस्र एक सौ कन्याओं को अवरुद्ध देखा। वे सब श्याम सुन्दर पर अनुरक्त हो गयीं। उन्हें अपने ऊपर आसक्त देखकर ले आये और उतने ही रूप बनाकर उनके साथ विवाह भी करलिये। जिसने हृदय से श्यामसुन्दर को वरण करना चाहा, स्वयं उसके घर पर जाकर उसे बल पूर्वक ले आये, कितनी कृपा इन्होंने उन अबलाओं पर प्रदर्शित की इस लिये ये सभी प्रभु पत्नियाँ धन्यतमा हैं।

इच्छित वर मिलना प्रथम सौभाग्य का चिन्ह है। द्वितीय

सौभाग्य योग्य सन्तानों की प्राप्ति। सो सभी रानियोंने इन परात्पर प्रभु से १० १० पुत्र और एक एक कन्या प्राप्त की। न किसी को अधिक न न्यून। उनमें प्रद्युम्न, साम्ब और अम्ब जैसे महारथी थे। सुयोग्य गुणवान् यशस्वी पुत्रों का पाना स्त्रियों का सबसे बड़ा सौभाग्य है।

तीसरा सौभाग्य है पति का सतत सान्निध्य भगवान सभी रानियों के महलों में पृथक् पृथक् रूप रखकर सदा निवास करते हैं, पल भर को भी उन्हें विरह वेदना का अनुभव नहीं होने देते। जिसका पति सदा जिसके सन्निकट रहता है, उस पत्नी से बढ़कर सौभाग्यशालिनी नारी और कौन होगी ?"

चौथा सौभाग्य है, इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति। एक बार इनकी प्यारी पत्नी सत्यभामा रूठ गयीं। रूठी भी किस बात पर कि सबको एक एक पारिजात का पुष्प मिला मुझे क्यों नहीं मिला। नारदजी का यह षड्यन्त्र था। कुछ लोगों को घर में फूट डालने में—स्त्री पुरुष—को लड़ते देखने में आनन्द आता है। इसीलिये नारदजी सोलह सहस्र एक सौ सात फूल ही लाये। सबको स्वर्ग का सुमन मिला सत्यभामाजी रह गयीं। नारदजी फिर स्वयं ही पूछने गये—तुम्हें स्वर्गीय पारिजात पुष्प मिला क्या ? जब दूसरा लड़ाने पर उतारू हो तो लड़ाई क्यों न हो ? हम स्त्रियों में एक दोष स्वाभाविक होता है. हमारी इच्छा होती है, हमारा प्रेष्ठ सबसे अधिक प्यार हमी को करे। हमसे अधिक उसका प्यारा और कोई अन्य न हो। इसीलिये परस्पर में सपत्नियों से आपस में प्रेम नहीं होता। सत्यभामा जी रूठ गयीं, कि अपनी प्यारियों को ही फूल भेजते हो,हमें भूल ही जाते हो।" भगवान को नारद के षड्यन्त्र का पता ही नहीं था। जब मुँह फुलाकर सत्यभामा जी आईं और श्यामसुन्दर ने उनकी ठोढ़ी चढ़ाई तो उन्होंने

परात्पर प्रभु को झिड़क दिया जिनकी स्तुति ब्रह्मादि देवता भी दूर से ही करते हैं।

इन्होंने पूछा—"प्रिये! क्यों अप्रसन्न हो, क्यों नहीं बोलतीं? मेरा अपराध तो बताओ, कौन मुझसे भूल हो गयी है?"

पुष्प का समाचार सुनकर श्याम सुन्दर हँसे और सम्पूर्ण ममता बटोर कर बोले—"प्रिये! इतनी छोटी सी बात के लिये इतनी अप्रसन्नता? तुम एक पुष्प की बात कहती हो, लाओ मैं स्वर्ग से पारिजात वृक्ष को ही लाकर तुम्हारे आंगन में लगाये देता हूँ।' यह कहकर इन्होंने सत्यभामा के ही आंगन में नहीं सभी रानियों के यहाँ एक एक पारिजात का पेड़ लगा दिया। जो भगवान् वासुदेव अपनी प्रियतमाओं की प्रसन्नता का इतना ध्यान रखते हैं, उनके भाग्य की सराहना किन शब्दों में की जाय। सो, सखियों! स्त्री होने का सुख तो इन परात्पर प्रभु की पत्नियों को ही पूर्ण रीत्या प्राप्त हुआ है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अटा अटारियों पर बैठी हुई हस्तिनापुर की नारियाँ परस्पर ऐसी बातें कर रहीं थी शनैः शनैः चलते हुए रथ में से श्याम सुन्दर सब सुनते जाते थे और मन्द मन्द मुसकान से उनकी ओर निहारते हुए उनके इस कथन का पारितोषिक देते जाते थे, मानों उनकी सभी बातों का अभिनन्दन कर रहे हों, इस प्रकार सभी को सुख देते हुए भगवान् द्वारका जी में पहुँच गये। मुनिवर यह मैंने हस्तिनापुर की महिलाओं द्वारा माधवकी जो महिमा गायी उसका वर्णन अपनी क्षुद्रबुद्धि के अनुसार किया। अब कथा आरंभ करते समय जो भगवान् शुकने भगवान् का स्तवन किया उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। आप उस दिव्य स्तवन को समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

नारी सुखजग चारि सुता सुत सुंदर जावें ।
पति परमेश्वर परस प्रेम तें प्रति दिन पावें ॥
दै सब इच्छित वस्तु सदन सँग सुख सर सावें ।
संकल्पित सुख सकल श्याम संग महिषी पावें ॥
सुत सब के सम सब सदन श्याम सुन्दर निबसहिं सतत ।
स्वरग सुमन निज प्रेम दै, नारिनिवह भागी करत ॥

पद

धनि धनि प्रभुकी प्यारी नारी ।
पायो पति परमेश्वर जिनने तिनिको तप अति भारी ॥१॥ धनि०
मिलै न जप, तप, यज्ञ हवन करि, पावैं नहि व्रत धारी ।
धनि जे पान करें अधरामृत, विहरें संग विहारी ॥२॥धनि०
सब साधन जिनके पावन हित, करें कठिन अधिकारी ।
प्रभुई लड़त जिनहि पावन हित, बड़भागी सुकुमारी ॥३॥ धनि०॥
नारी योनि सफल होवे जब, पति पावै बनवारी ।
प्रभु को परस कबहुँ मिल जावे जीवन साध हमारी ॥४॥धनि

शुक स्तवन (१)

(१५)

नमः परस्मै पुरुपाय भूयसे
सदुद्भवस्थाननिरोध लीलया ।
गृहीतशक्ति त्रितयाय देहिना—
मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥

(श्री भा० २स्क० ४अ० १२श्लो०)

छप्पय

जो जग सब उपजाय पालि पुनि नाश करावें ।
सत, रज तमतें विष्णु, महाशिवरूप बनावें ॥
अन्तरयामी सकल चराचर घट घट व्यापत ।
तिन परमेश्वर परम पुरुष पद पुनि पुनि प्रनमत ॥
जो सत, पुरुषनि पार करि, सोखें भवसागर सकल ।
रोकत असतनिको उदय पद पावें जन भजि विमल ॥

महाराज परीक्षित् ऋषिकुमार शृंगी के शाप से शापित होकर जब गंगा तट पर आ बैठे और अकस्मात् भगवान् शुक वहाँ आगये, तब राजाने उनसे अनेक प्रश्न पूछे तथा

---

* शुकदेवजी कहते हैं–उन महा महिम परम पुरुष को नमस्कार है, जो समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से विराजते हैं तथा जगत की उत्पत्ति और संहार रूप लीला करनेके लिये सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनतीनों रूपों को धारण करते हैं ॥

भगवान् के गुण वर्णन करने की प्रार्थना की, तब महामुनि शुक उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके भगवत् गुणानुवाद कहने को प्रस्तुत हुए। कथा कहने के पूर्व वे मङ्गलाचरण के रूप में भगवान् का अनुस्मरण करने लगे। उनको नमस्कार करने लगे।

नमः शब्द का अर्थ है नमन करना, नम्रता प्रदर्शित करना, अपने को छोटा समझकर नमस्कार जिसके लिये कर रहे हैं, उसे महत्त्व देना, उसके सम्मुख नतमस्तक हो जाना झुक जाना। मृदु, गीली, सरस तथा। स्निग्ध वस्तु ही भार से झुकती है। गीली मिट्टी को ऊँचे उठाओ तो वह झुक जायगी, फलों से लदने पर वृक्ष की शाखायें झुक जायेंगी, जहाँ भी गीलापन है, वहीं झुकाव है, सूखी वस्तु झुकती नहीं टूट जाती है, बाँस जब तक गीला रहेगा, तब तक उसे चाहे जितना झुकालो। जहाँ वह सूखा—नीरस हुआ तो वह झुकाने पर तड़ाक से टूट जाता है। उसे झुकाने के लिये फिर से भिगोकर गीला करना पड़ता है।

रावण से जब कहा गया, कि सीता जी जगज्जननी हैं, श्री रामजी साक्षात् भगवान् हैं, तुम सीता जी को देदो हठ मत करो। तब उसने कहा—"देखो जी चाहे मेरे बीच में से दो टुकड़े भले ही हो जायँ मैं दूँगा नहीं, रामके आगे नतमस्तक नहीं हूँगा। यह मेरा स्वभाव जन्य दोष है। सूखी लकड़ी नवती नहीं बीच से टूट जाती है। स्वभाव दुरतिक्रम है।" कहनेका अभिप्राय इतना ही है, कि अहंकारी का शुष्क प्रकृतिके हृदयहीन पुरुषों का सिर नत नहीं होता। इसीलिये वे चाहें कितने भी ज्ञानी,

ध्यानी तपस्वी तेजस्वी क्यों न हों उनको भगवत् प्राप्ति नहीं होती ।

भक्ति मार्ग में तो नमन का ही माहात्म्य है। उसमें तीन बातों पर ही सबसे अधिक बल दिया गया है। एक तो यह कि तुम सदा सर्वदा सभी समय भगवत् कृपा की प्रतीक्षा करते रहो, दूसरे संसार में जो भी दुख अथवा सुख आवें उन्हें अव्यग्र भाव से प्रारब्ध के भोग समझ कर भोगते रहो और तीसरे हृदय से वाणी से तथा शरीर से सदा सर्वथा नमस्कार करते रहो। तत्वज्ञान होजाने के अनन्तर एक मात्र नमस्कार ही शेष रहजाती है। नमः का एक अर्थ है न मम । अर्थात् मेरा कुछ नहीं है। नमस्कार में चतुर्थी होती है। और स्वाहा में भी चतुर्थी होती है। जैसे इन्द्राय स्वाहा । इन्द्राय नमः यज्ञ में हम यही करते हैं, इन्द्राय स्वाहा इदं इन्द्रायनमम । अर्थात् यह जो भी वस्तु है, इन्द्र के लिये है, मेरे लिये नहीं है मेरा इसमें कुछ नहीं है। हम जिसे नमस्कार करते हैं मानों उसे समर्पण करते हैं । जो भी कुछ है आपका है। इसीलिये शास्त्रकारों ने कहा है—"श्वान, श्वपच, गौ गधा जो भी प्राणी हैं सब को भूमि में लोटकर दंडवत् नमस्कार करो, सब में भगवत बुद्धि करो, इस शरीर को और शरीर से ममता रखने वाली सम्पूर्ण वस्तुओं को सर्वान्तर्यामी रूप में जो भगवान् व्याप्त हैं उन्हें अर्पण करदो अपने लिये कुछ भी शेष मत रखो । सदा सर्वदा नमो नमः नमोनमः कहते रहो ।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! महाराज परीक्षित् ने शुकदेव जी से बहुत से प्रश्न पूछे उनका उत्तर देने के पूर्व कथारम्भ के

आदि में १३ श्लोकों में भगवान् की वन्दना की है। भागवती कथा, के प्रसंग में मैंने उनका भाव कहना छोड़ दिया था अब इस स्तुति प्रकरण में उनका वर्णन करता हूँ। नमस्कार अपने से बड़े को की जाती है और दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाकर हार्दिक स्नेहके साथ की जाती है, क्योंकि अञ्जलि को सर्वश्रेष्ठ मुद्रा बताया है, इससे देवता शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं परमहंस चक्रचूडामणि भगवान् शुकदेव दोनों हाथों की अंजलि बाँधकर प्रेम भरित हृदय से, गद् गद् कंठ से प्रेमाश्रु बहाते हुए स्तुति करने लगे।

मैं उन महामहिम परम पुरुष के पादपद्मों में प्रणाम करता हूँ, जो सर्वरूप हैं, सबके कारण हैं, सबके करण हैं, और सबके आश्रय हैं। जो लीलाधारी है, विहारी हैं जो सबके प्राण संचारी हैं। लीला के लिये, खेल के लिये, कुतूहल के लिये मनोविनोद के लिये, जो इस दृश्य जगत को बनाते हैं, पालते हैं और संहार भी करदेते हैं जो इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का आश्रय लेकर इस अनादि प्रवाह को चला रहे हैं। जो सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का सहारा लेकर स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनरूप धारण कर लेते हैं। जो सबके बाहर सत्ता रूपसे और सबके भीतर अन्तर्यामी रूपसे निवास करते हैं। जिनकी गति को कोई जान नहीं सकता, जिनकी महिमा का कोई पार नहीं पासकता। जो सबके स्वामी हैं, सब के संचालक हैं, सब के पालक हैं, उन परात्पर प्रभु को पुनःपुनः प्रणाम है। बारम्बार नमस्कार है।

जो सत् पुरुषों के सहारे हैं, जो प्रणतों के प्यारे हैं, शरणागत वत्सल हैं प्रपन्नों के पारिजात सदृश सभी संकल्पों को सफल

करने वाले हैं, जो भवभय भीत भक्तों के भयको भगाने वाले हैं, जो भूले भटके भक्तों को पुण्य पथ दिखाने वाले हैं, जो अनन्याश्रितों को आश्रय प्रदान करने वाले हैं, जो जनम मरण के कठिन मार्ग को मेटने वाले हैं तथा आसुरी प्रकृति असत् पुरुषों के अभ्युदय को अवरुद्ध करने वाले हैं, जो वीतरागी, सर्वस्वत्यागी, यथार्थ विरागी परमहंसाश्रम में स्थित ब्रह्म संन्यासियों को ब्रह्मज्ञान का दान देने वाले हैं, उन मुनिमनहारी, सकलकल्याणकारी, परमपावन कीर्तिनिखिल सत्वमूर्ति सर्वान्तर्यामी प्रभुको हमारा बारम्बार प्रणाम है। जो भक्तवत्सल हैं सात्वत भक्तों के पालक हैं, यदुवंशियों के साथ नाना प्रकार के विहार करने वाले हैं जो बसुदेव देवकी नंदन हैं, जो यदुकुल वन के सुगन्धित चन्दन हैं, जो उपासकों के लक्ष्य हैं। जो कुयोगियों करणों के बिषय नहीं, जो असत् पंथगामियों की दृष्टिपथ से सदा दूर रहते हैं। जो अनुपमेय और असाम्य हैं जिनकी बराबरी का ही कोई नहीं तो उनसे बड़ा तो कोई हो ही कैसे सकता है। जो सब से श्रेष्ठ हैं महतोमहीयान् हैं। जिनकी काष्ठाका कोई पार नहीं पा सकता जिनकी सीमा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता जिनका महत्व निस्सीम है, जो महान् ऐश्वर्य शाली हैं, जिनके ऐश्वर्य की उपमा नहीं बराबरी नहीं समता नहीं सादृश्य नहीं। जो अपने ही धाम में अपने ही लोक में अपने ही स्वरूप में अपनी ही सीमामें रमण करते रहते हैं, क्रीड़ा करते रहते हैं, मनोविनोद करते रहते हैं उन रमणविहारी क्रीड़ाप्रिय परब्रह्म को हमारा बारम्बार नमस्कार है, उन वन्दनीय के पादपद्मों में हम प्रणाम करते हैं।

जिनका कीर्तन कलि कल्मषों को काटने के लिये कुल्हाड़ी से भीअधिक तीक्ष्ण है, जो कीर्तन करने वालों के कष्टों को काट देते हैं, जो स्मरण करने वालों की आर्तिका विनाश कर देते हैं, जो स्मरण करने वालों के हृदयों में आकर आसन जमा लेते हैं, जो

दर्शन करने वालों के दुरितों को दूर कर देते हैं, जो दर्शन देकर दुःख दारिद्रका दाह कर देते हैं, जो वन्दन करने वालों के बन्धनों को खोल देते हैं, जो वन्दन करने वाले भक्तों की विपत्तियों का विदारण कर देते हैं। श्रवण करने वाले के श्रोत्रों को सर्वत्र श्रुत-मधुर बना देते हैं, जो श्रवण करने वालों के हृदय में प्रवेश करके बैठ जाते हैं। जो पूजन करने वालों के पातकों को पछाड़ देते हैं। जो पूजन करने वाले पुरुषों के पुण्यों को पहाड़ बनाकर उन्हें सर्वश्रे ष्ठ बना लेते हैं उन परमपावन, पुण्यकीर्ति प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। उन वरदाता विहारी को बारम्बार नमस्कार है।

जिनके चरणकमल अमल विमल हैं, जिनके पाद पद्मों के पराग परमपुण्यों के पुंज हैं, जिनके चरणारविन्दों की मकरन्द मनीषियों के मनको मत्त कर देने वाली है, जिन कमल दल के समान कोमल अरुण चरणों को दबाकर कमला कृतार्थ हो जाती है, उन चरण कमलों को वैराग्यवान् भक्तियुक्त विवेकी पुरुष अपने अन्तःकरण में ध्यान करते हैं, उन्हें श्रद्धा भक्ति और अनुराग के सहित धारण करते हैं, उनकी श्रद्धा सयम के सहित सेवा करते हैं, जिसके कारण उनका हृदय निर्मल बन जाता है; अन्तः करण का मल, विक्षेप आवरण हट जाता है, जिससे वे चरणकमल सेवी भक्त इस लोक की शब्द, रूप, रस गन्ध और स्पर्श सुख सम्बन्धी आसक्ति तथा परलोक की पारिजात, सुधा, सुरांगना तथा विमान आदि सुनी हुई सुखद वस्तुओं की आसक्ति को हृदय से निकाल देते हैं, जिससे उन्हें ब्रह्मपदकी, परमपद की तथा परमात्मद की प्राप्ति हो जाती है। उन पवित्र कीर्ति वाले भवभय नाशक भगवान् के पाद पद्मों में हम श्रद्धा भक्ति के सहित बारम्बार नमस्कार करते हैं।

कोई चाहे कि हम उग्र तपस्या करके उस उग्र कर्म के ही द्वारा उन्हें प्राप्त करलें तो यह असंभव है। कोई चाहें कि हम अन्न दान, जलदान, भूदान, सुवर्णदान, वस्त्रदान, कन्यादान तथा विविध भाँति के दान देकर उनतक पहुँच जाय तो उनका मनोरथ व्यर्थ है। कोई चाहें कि हम बड़े बड़े इष्टापूर्त कर्म करके उनके द्वारा कीर्तिलाभ करके कीर्तिमान् बनकर उन पुण्यकीर्ति प्रभु की प्राप्ति कर सकें तो उनका प्रयास पागलों का प्रलाप मात्र है कोई चाहें हम इन्द्रियों सहित मन को वश करके केवल चित्र वृत्तियों के निरोध द्वारा ही उन्हें वश में करलें तो उनका प्रयास विडम्बना मात्र है। कोई चाहें हम केवल सदाचरण के सहारे उन सर्वेश्वर सच्चिदानन्द के पद को प्राप्त करलें तो मनमोदकों से भूख बुझाने के समान उनका कार्य व्यर्थ है। कोई चाहें हम मन्त्रानुष्ठान, मंत्र-जप, मंत्रगान तथा मन्त्राक्षरध्यान से ही उनको पकड़ सकें यह असंभव है। जब तक समस्त शुभाशुभकर्म उन्हीं को समर्पण न किये जायँ, जबतक सर्वधर्मों का त्याग करके एक मात्र उन्हीं की शरण न लीजाय तब तक कोई भी कल्याणकारी कार्य सफल नहीं होता उन ऐसे कल्याण के एक मात्र आलय समस्त गुणगणनिलय सुभद्रश्रवस् श्यामसुंदर को हमारा बारम्बार नमस्कार है।

जो अपनी शरण में आये पापियों को भी पवित्र करदेते हैं जो अपने आश्रित भक्तों को भी अपने ही समान पतित पावन बना देते हैं, अपनी शरण में आने वाले का तो वे उद्धार करते

विचार से हीन किरात, हूण, पुलन्द पुल्कस, आभीर, कङ्क,यवन और खस आदि नीच जातिवाले हैं, तथा इनके अतिरिक्त और भी जितने पापजीवी, आचारविचारहीन पुरुष हैं, यदि ये भगवान् की शरण में न भी जायँ केवल जिनके भक्तों की शरण ग्रहण करने मात्र से ही पवित्र हो जाते हैं उन प्रभु विष्णु विष्णु भगवान् के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है, उन पतितपावन प्रभु को बारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन सात श्लोकों में तो केवल नमस्कार है। अब अगले पांच छैः श्लोकों में प्रभु से प्रसन्न होने की प्रार्थना है। उनका भाव मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

पुनि पुनि प्रनवौं निखिल सत्वमय प्रभु चरननि महँ।
परमहंस-पद पाइ लगावें निज मन जिनि महँ॥
जो जन होहिं प्रपन्न करें तिनि प्रतिपल पालन।
रमन करें निज लोक परम ऐश्वर्य परमधन॥
जिनि कीर्तन, सुमिरन दरस, बन्दन, पूजन श्रवन वर।
सकल अमंगल अघ हरत, तिनि पद वन्दौं विपतिहर॥
जिनि पद पदुमनि बन्दि विवेकी मोह नसावें।
उभयलोक सुखत्यागि ब्रह्मपद प्रानी पावें॥
जिनि अरपन बिनु जोग, जज्ञ,जप तप भलनाईं।
तिनि चरननि महँ बार बार हम शीश नवाईं॥
हून, किरात, पुलिन्द, खस, पाप योनि जे जगत महँ।
शुद्ध करहिं हरिभक्त ही, बन्दौं तिनि प्रभु पदनि महँ॥

पद

वन्दौं वार वार प्रभु पद में।
परमेश्वर प्रतिपालक पूरन समरस थिति अरुलय में ॥१॥
सत, रज, तम, अज, हरिहर बनिकें प्रकट होहु पुनि जगमें।
अन्तरयामी बनि विभु बैठे सब जीवनिकें हियमें ॥२॥
साधुनि पालो खलनि सँहारो भक्तनि तारो छिनमें।
दरसन दै दुख दुरित दूर करि, सरन देहु चरननि में ॥३॥
जिनि चरननि चिन्तन करि चिरदिन सुख उपजत अति चितमें।
केवल करि करमनि चाहैं पद, मिलें न बिना शरन में ॥४॥
नीच जाति पापी अघकारी संग करैं भक्तनि में।
तो अति विमल बनें बन्दन करि प्रभुपद पावें पलमें ॥५॥

शुक स्तवन (२)

(१६)

स एप आत्मात्मवतामधीश्वर-
त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभि-
र्वितर्क्यलिंगो भगवान् प्रसीदताम् ॥१

(श्री० भा०२ स्क० ४ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

वेद, धरम, तप रूप आतमा आतमविदनि के।
अज शिवभक्त स्वरूप लखें अचरजतैं जिनि के॥
श्रीपति मखपति प्रजापतिनिके पति परमेश्वर।
कुल-पति भू-पति सकल लोकपति धीपति यदुवर॥
जिनि चरननिके ध्यान तैं, बने विमल धी हरि दिखें।
प्रभु प्रसन्न मोपे सतत, होहिँ चरित जिनि कवि लिखें॥

भगवान् शुक देवजी मंगला चरण करते हुए भगवत् प्रसन्नता के निमित्त स्तुति कर रहे हैं। वे कहते हैं—"जो भगवान् आत्म ज्ञानियों की आत्मा है, अर्थात् आत्म ज्ञानी जिस आत्मा के जान-

---

१ शुकदेवजी की स्तुति करते हैं—"भगवान् आत्मज्ञानियों की आत्मा हैं, सबके अधीश्वर हैं, वेदत्रयी रूप हैं, धर्ममय तथा तपोमय हैं, जिनके यथार्थ स्वरूप को अज, शङ्करादि निष्कपट भक्त भी आश्चर्यवत् देखते हैं, वे ही भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों। [illegible]

ने के निमित्त संयम, सदाचार, तितिक्षा उपरति आदि साधनों द्वारा प्रयास करते रहते हैं, वह आत्मा भगवान् वासुदेव ही तो हैं। वे एक ही विविध नामों से प्रसिद्ध हैं। आत्म ज्ञानी आत्मा मान कर उनका अन्वेषण करते हैं। वैदिक पद्धति से उपासना करने वाले जिसे वेद प्रतिपाद्य तत्व बताते हैं वह तत्व भगवान् वासुदेव ही हैं। गृहस्थ धर्मावलम्बी पंचयज्ञ-पशुयज्ञ, सोमयज्ञ, चातुर्मास्यज्ञ दर्शपौर्णमास्ययज्ञ तथा बलिवैश्वदेव यज्ञों-द्वारा जिनका पूजन करते हैं, वे भगवान् यादवेन्द्र ही तो हैं। स्मार्त धर्माव लम्बी जिन्हें धर्म मय मानकर-धर्माचरण करके प्राप्त करना चाहते हैं, वे धर्मावतार सात्वत धर्म की मूर्ति श्रीकृष्ण ही हैं। ब्रह्मचारी गण गुरुकुल में निवास करके सूर्य, अग्नि, अतिथि और गुरु की सेवा करते हुए जिस धर्मका अर्जन करना चाहते हैं वह धर्म श्याम सुन्दर ही हैं। जिनको पुराणों के द्वारा गाया गया है, पौराणिक जिन्हें तपोमय मानकर हरिवासर अमावस्या, पूर्णिमा तथा कृच्छ्र चान्द्रायणादि विविध प्रकार के व्रत करते हैं, वानप्रस्थतथा सन्यासी कन्द मूल फल खाकर पंचाग्नि तापते हुए, शीत का सहन करते हुए, वर्षा को खुले में सिर पर लेते हुए, तथा परिव्राजक वेष में घर घर से भिक्षा माँगकर गाँव गाँव नगर नगरों में घूमते हुए जिन तपोमय प्रभु को पाना चाहते वे तपस्या की जाज्वल्य मान मूर्ति ये श्री मन्नारायण ही तो हैं। ऐसे सर्वमय भगवान मुझ पर प्रसन्न हों, मुझे भागवती कथा कहने की शक्ति प्रदान करें। अपना चरित्र कहलाने का साहस बल तथा ओज प्रदान करें।

जो भगवान् अतर्क्य हैं, जिनके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान निष्छल निष्कपट भक्त उन ब्रह्मा जी को भी नहीं है जो उनके ही पुत्र हैं, उन्हीं की नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं। जो महादेव सभी देवों से महान् हैं जो संसार का संहार करने में सर्व था समर्थ हैं, जो निरन्तर उन्हीं का स्मरण करते रहते हैं, वे भी उनके कृत्यों को

आश्चर्यान्वित होकर देखते रहते हैं, वे भी जिनके महिमा को देखकर चकित हो जाते हैं, विस्मयाविष्ट हो कर उनके स्वरूप के सम्बन्ध में सोचते के सोचते ही रह जाते हैं, वे ही वितर्क्य लिङ्ग भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। मेरे ऊपर अनुग्रह की, कृपा की दया की दृष्टि करें।

जो भगवान् लक्ष्मी के पति हैं, सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, जिन्हें कोई महती पूजा के लोभ से प्रसन्न करना चाहे तो कैसे कर सकता हैं, वे तो लक्ष्मी जी के अपराधों पर भी हँस जाते हैं। वे सर्व सामर्थ्य शाली श्याम सुन्दर मुझपर सदय हो जायँ। जो समस्त यज्ञों के एकमात्र पति हैं। यज्ञ पुरुष भी जिनकी स्तुति करते हैं। यज्ञमें मंत्र से, तन्त्रसे, देश से काल से या अन्य किन्हीं कारणों से हुए दोषों को जिनका नाम ही निराकरण कर देता है। निश्छिद्र बना देता है वे यज्ञ पति भगवान् वासुदेव मेरी वाणी को बलवती बना दें। जो समस्त प्रजाओं के पति हैं। सूर्य चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, उन्हें अज्ञजन छोटा सा दीपक दिखाकर प्रसन्न करना चाहते हैं। जिनका आसनवेदमय पंख वाले गरुण हैं, जो संसार को धारण करने वाले शेषजी की सुखद शैया पर सदा शयन करते हैं उन्हें कृपण लोग आसन के स्थान में तनिक सा कलावा देकर शैया के स्थान में चार चावल देकर रिझाना चाहते हैं। साक्षात् मूर्ति मती महालक्ष्मी जिनके पाद पंकजों को प्रेम पूर्वक पलोटती रहती हैं उन्हें स्वार्थी लोग एक ताम्रखंड चढ़ाकर पलदो पलके छोटे से आभूषण देकर अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं। जिन की सेवा में षट रस, छप्पन भोग हाथ बाँधे खड़े रहते हैं, उन्हें स्वयं तुमुक्षित मूर्ख जन चार किसमिस देकर आधी फली केला की चढ़ाकर या चुकुटी भर मीठा देकर तृप्त करना चाहते हैं और जो इन अज्ञ लोगों के इतने भारी अपमान का बुरा तक नहीं मानते प्रत्युत उनकी स्वल्प पूजा को बहुमान

के साथ स्वीकार करके उनके मनोवांछित फलों को प्रदान करते हैं वे समस्त जीवों के पति प्रजापतियों के भी एकमात्र प्रजापति परात्पर प्रभु मुझ पामर पर प्रसन्न हों।

जो सब की धी बुद्धि को प्रचोदित करते हैं प्रेरित करते हैं, सभी के एकमात्र साक्षी हैं। अल्प बुद्धि को पाकर जो भगवान् को साकार निराकार सिद्ध करने में ही सदा लगे रहते हैं, भगवान् उनकी इस बात पर हँसते नहीं। जैसे बालक की तोतली बोली सुन कर पिता प्रसन्न ही होता है उसी प्रकार बुद्धि मानों के वाद विवाद को सुनकर जो उनकी बुद्धि को बढ़ाते हैं वे सब के प्रेरक सब के साक्षी, सबको अपने संकेत पर नचाने वाले श्याम सुन्दर मुझपर प्रसन्न हों।

जो समस्त लोकों के पति हैं, अधीश्वर हैं, जिनकी श्वास प्रश्वास से अगणित ब्रह्माण्ड प्रतिपल बनते बिगड़ते रहते हैं और स्वयं उनमें आसक्त होकर संकल्प से ही उनका संचलन करते रहते हैं, जो पृथक पृथक ब्रह्माण्डों के ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशों को आदेश देते रहते हैं, वे समस्त ब्रह्माण्डों में बसे सभी जीवों के स्वामी सनातनप्रभु मुझ पर प्रसन्न हों।

जो पृथिवी पति हैं। धर्म प्रधान कर्म प्रधान भूमि होने से जो कच्छ, मच्छ, वाराह, नृसिंह वामन परशुराम आदि अवतार धारण करके धर्म संस्थापन का कार्य करते रहते हैं, जो धर्म ग्लानि को मेंट कर धर्म का अभ्युदय करते हैं। शिष्टों का पालन करके दुष्टों का संहार करते हैं, वे सबके पालक पिता परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न हों,

जो भक्तों को सुख देने के निमित्त यदुकुल में अवतीर्ण हुए हैं जो यादवों में भी वृष्णि वंशी बोले जाते हैं, जो अपने कुल परिवार के लोगों पर ही नहीं अपने समस्त आश्रित भक्तों पर

कृपा करते रहते हैं, उनकी मूर्खता और अल्पज्ञता की ओर न देखकर उनकी भक्ति से ही प्रसन्न हो जाते हैं, जो सत्पुरुषों के पति ही नहीं उनकी एकमात्र गति हैं, यादव लोग जिन्हें पाकर निश्चिन्त बने थे। उन सब के एकमात्र गति मति वे ही हैं। वे ही एक मात्र रति करने योग सर्वगति सर्व मति मदन मोहन मेरे ऊपर प्रसन्न हों।

उन भौमा पुरुष की महिमा का बखान करने की सामर्थ्य किस में है ? कौन उनके प्रतिभा का पार पा सकता है कौन उनके अगणित गुणों को गा सकता है, फिर भी अपने चरण कमलों की श्रद्धा भक्ति लगन और तन्मयता के साथ ध्यान करने वाले, समाधि के द्वार अपने पादपद्मों में मन लगाने वाले विवेकी जनों की बुद्धि को जो निर्मल बना देते हैं, उस निर्मल बुद्धि के द्वारा अपना साक्षात्कार करा देते हैं, परमात्मतत्व का ज्ञान कराकर उसे कवि मनीषो विमल धी बना देते हैं और पुनः उन्हें अपने गुणों की गान की शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे वे यथा मति उनके गुणों का वर्णन करते हैं, वे आनन्दकन्द माधव मुकुन्द मुझपर प्रसन्न हों।

प्रभो ! मैं भी कुछ आपके गुणों का गान करना चाहता हूँ ! पार पाने की इच्छा से नहीं केवल वाणी की सार्थकता के लिये मैं भी कुछ आपके चरित्रों को सुनाना चाहता हूँ, इसलिये नहीं कि आपने इतने ही चरित्र किये हैं उन अगणित असंख्य अपार चरित्रों में से यत् किंचित् चरित्रों का गान करूँगा। अपनी वाग देवी को सफल बनाऊँगा। आप मेरी वाणी को भी इसके अनुरूप बना दी दीजिये। क्यों कि आप की प्रेरणा के बिना पत्ताभी नहीं हिल सकता। अन्न की फली के दो टूँक कभी नहीं हो सकते। कल्प के आदि में जब सब जीव प्रसुप्त पड़े थे तब

आरंभ काल में अपनी नाभि कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी के हृदय में आपने ही तो सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न की थी। आपने ही तो उनके अन्तः करण में सृष्टि सम्बन्धी शुभ संस्मरण को जाग्रत किया था। फिर उनकी वाणी में सरस्वती देवी को भी आपने ही लाकर बिठा दिया जो वेदरूपा सरस्वती शिक्षा, व्याकरणादि अङ्गों सहित उन ब्रह्मा जी के मुख से प्रकट हुई थीं। जिन से चार वेद छः शास्त्र अठारह पुराण आदि सभी प्रकट हुए। अतः आप समस्त ज्ञान के दाता हो, सब के उत्प्रेरक हो, सबकी वाणी को सजीव करने वाले हो, सभी को ज्ञान प्रदान करने वाले हो ऐसे हे ज्ञान दाता हरि! हे सबके प्रेरक प्रभो। मुझपर भी प्रसन्न हो' मुझे भी अपने गुणगण के कथन में प्रेरित करो। मुझे भी अपनी महिती महिमा के गान की शक्ति प्रदान करो।

जो इन समस्त भूतों के शरीरों को रचते हैं, उनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पंच प्राण और मन को बैठाते हैं और स्वयं पुरुष बनके उस सोलह वस्तुओं से बनी वस्ती में—पुरी में—दुपट्टे को तानकर सुखसे सोते रहते हैं और इन सोलह कलाओं से शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि इन सोलहों विषयों को इन्द्रियप्राण और मनरूपी सोलह कलाओं से भोगते रहते हैं, वे ही सर्वभूतभावन, भक्तभयनाशन, भगवान् वासुदेव मेरी भी वाणी को हरिगुणगान कराकर सार्थक बनावें। विष्णु की विरुदावली वखनवाकर कृतार्थ करें। अच्युत महिमा वर्णन कराकर अलंकृत करें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने परमेश्वर की प्रार्थना करने के अनन्तर अपने ज्ञानदाता गुरु तथा पिता भगवान् व्यास की यह कहकर कि "जिनके कमल रूपी मुख से निसृत ज्ञानामृत का सौम्यजनों ने पर्याप्त पान

किया है उन अमित तेजस्वी भगवान् को नमस्कार है" वन्दना की। व्यासजी की वन्दना करने के अनन्तर उन्होंने भागवती कथा कही, जिसको मैं आप सबको सुना ही चुका हूँ अब सृष्टि के आदि में जैसे देवताओं ने भगवान् की स्तुति की उस स्तुति को मैं आपको सुनाऊँगा।

छप्पय

कलप आदि अज हिये सरसुती जिनि उपजाई।
वेदमयी सब ज्ञान राशि जो गिरा कहाई॥
रचि भूतनि तैं देह पुरुप बनि जिन महँ सोवत।
इन्द्रिय, मन अरु प्रान सबनि तैं विपयनि भोगत॥
सर्वभूतमय प्रभु पदनि, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है।
प्रनवौं पुनि गुरुपद कमल व्यासदेव जिनि नाम है॥

प्रभुजी ! दीननि दया दिखाओ।
अगनित अघकारी अपनाये अधम हूँ कुँ अपनाओ ॥१॥
वेदरूप, तपरूप रूपसब, धरम रूप कहलाओ।
पार न पावैं शिव सनकादिक दासनि दरस दिखाओ॥२॥प्र०
श्रीपति धीपति सकल भुवनपति पतितनि पत पति पतिआओ।
चरन शरन गहि होहि विमल मति अच्युत अलख लखाओ॥३॥प्र
आदि कलप सोवत सबई गुन तुमहीं सबहिं जगाओ।
पुर-पुर सोवत भोगनि भोगत, भोगनि मारि भगाओ॥४॥
भटकिरह्यो कबतैं भवसागर, पद पंकज पकराओ।
दीन हीन प्रभुकब तैं रोवत, पग्ली पार लगाओ ॥५॥प्र

अधिष्ठातृ-देवों द्वारा स्तुति (१)

(१७)

नमाम ते देव पदारविन्दम्
प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु-
संसार दुःखं वहिरुत्क्षिपन्ति ॥
(श्रीभा० ३ स्क० ५ अ० ३८ श्लो०)

छप्पय

शरना गत संताप छत्र सम शमन करत जो।
आश्रय जिनि यति लैहि विपति भव शकल हरत जो॥
जीव ताप त्रय तपित तनिकहू सुखनहिँ पावैं।
पावैं परमानन्द पदुम पद तल जब आवैं॥
मुनिजन निरमल हृदय महँ, वैदिक विधितैं जिनि धरें।
सुरसरि उद्गम अमल तिन पद पदुमनि बन्दन करें॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! विदुर जी के सृष्टि सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में महामुनि मैत्रेयजी ने उन्हें सृष्टि का क्रम बताया। कैसे भगवान की इच्छा से प्रकृति में क्षोभ हुआ जिससे गुणों में विषमता आई फिर कैसे काल की

---

*इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव कह रहे हैं—हे देव ! आपके चरणारविन्द प्रपन्न पुरुषों के संतापको दूर करने के निमित्त छाते के समान हैं, यतिजन जिनका आश्रय लेकर संसार दुःख को सुगमता से पार कर जाते हैं, ऐसे आपके पादपद्मों में हम सब प्रणाम करते हैं।

प्रेरणा से अव्यक्तमाया से, महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। महत्तत्व से अहंकार। उससे पंचभूत दशइन्द्रियाँ तथा मन की तथा पंचभूत और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव तन्मात्रायें उत्पन्न हुईं। ये सभी भगवान् की कलायें हैं। उत्पन्न तो ये सब होगये, किन्तु भिन्न-भिन्न होने से ये ब्रह्माण्ड की रचनाकरने में समर्थ नहीं होवे। जैसे, मिट्टी, चक्र, पानी, सूत, डंडा सभी उपकरण उपस्थित हों किन्तु उन सब का योजक सब को मिलाकर घड़ा बनाने वाला कुंभकार उन्हें मिलाकर काम में न लावे तब तक घड़ा बन नहीं सकता। जब इन्द्रिय मन तथा प्राणों के अधिष्ठातृ देव ब्रह्माण्ड रचना में असमर्थ हुए तो सब के कारण उन भगवान् की हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे। देवता गण कहरहे हैं—हे देव हम आप के कमल सदृश अमल विमल सरस सुगंधित चरणों की वन्दना करते हैं। कारण यह है कि आपको पाने के तीन ही उपाय हैं, उपासना अथवा भक्ति, ज्ञान और वैदिक यज्ञ यागादि कर्म। इन सब में आपके चरणारविन्दों की भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है। भक्ति के छै अंग बताये हैं। आपको प्रणाम करना, आपकी स्तुति करना, अपने सभी कर्मों को आपके अर्पण कर देना, आपकी उपसना करना, आपके चरणरविन्दों का ध्यान करना तथा आपके सम्बन्ध की कथाओं को सुनना। इन उपायों से आपकेचरणार विन्दों में भक्ति बढ़ती है। इसलिये सर्व प्रथम हम आपके चरणार विन्दों का ध्यान करते हुए उनमें प्रणाम ही करते हैं। वे चरणारविन्द शरणागत प्राणियों के ऊपर छत्र के समान छाया करते रहते हैं। और किसी की छाया में जायँ तो कभी छाया पूर्व की ओर हो जाती है हम पच्छिमकी की ओर हैं, तो ताप में संतप्त हो जाते हैं, कभी छाया पच्छिमकी

ओर हो जाती है और हम पूर्व की ओर हैं तो तपने लगते हैं, किन्तु आपके चरणारविन्द तो रसमें भीगे हुए सरस मृदुल छाते के समान हैं, जो संताप को भी हरते हैं और सदा अनुकूल छाया भी करते रहते हैं। वे चरणारविन्द कमल के सदृश जल में कभी डूबते नहीं सदा जल के ऊपर ही रहते हैं और वे सुख पूर्वक शरणागतों को अपने आश्रय में लेलेते हैं। यह संसार एक अगाध अपार दुस्तर सागर है, जल के स्थान में इसमें दुःखहीदुःख भरा है। इस अगाध दुःखसागर को यत्न करने वाले यतिगण आपकी कृपा से आपके चरणार विन्दों के आश्रय से ही सुगमता के साथ पार हो जाते हैं। ऐसे संसार सागर से पार होने वाले पादपद्मों में कौन सा पामर प्राणी प्रणाम न करेगा ?

हे विधातः! आप सभी को बनाने वाले, रचने वाले सृजन करने वाले हो। यह संसार उस भड़भूजा के भाड़ के सदृश है, जिसके किसी कोने में भी शान्ति नहीं है। सर्वत्र समान रूप से ज्वाला जल रही है। संसारी सभी प्राणी दैहिक दैविक तथा भौतिक त्रिविध तापों से सन्तप्त हैं। इन तापों के कारण व्याकुल बने हुए हैं। उष्णता से भी संतप्त प्राणी पानी खोजता है, किन्तु जहाँ सर्वत्र ताप ही ताप है वहाँ शीतलता कहाँ ?

हे सर्व समर्थ प्रभो! हे सबके स्वामी! आप सब कुछ कर सकते हो। आपके चरणारविन्दों में वह सामर्थ्य है, कि वे भभकती हुई महा ज्वाला को भी क्षण में शान्त कर सकते हैं। दावाग्नि को पलभर में बुझा सकते हैं। संतप्त भाड़ को सुशीतल बना सकते हैं। प्राणियों को दुःख का

अनुभव तभी तक होता है, जब तक वे आपके दुःख हर सुखकर शीतल सुखद चरणारविन्दों की ज्ञानमयी छाया का आश्रय नहीं लेते।

अतः हे परमात्मन ! इस व्याकुलता को भगाने के निमित्त त्रिविधतापों को मिटाने के निमित्त अज्ञान कृत संसार की निवृत्ति के निमित्त आपके पादपद्मों की सुशीतल छाया का आश्रय ग्रहण करते हैं। हमारे संसार तापों को समूल नष्ट कर दो आपके चरणारविन्दों में पुनः पुनः प्रणाम है ।

हे भगवन् ! शीत से व्यथित व्यक्ति अग्नि की खोज करता है, कहीं अग्नि दिखाई नहीं देती। दूर से आकाशमें उसे उठता हुआ धुआँ दिखाई देता है, वह अनुमान करता है, धूआँ तो अग्नि के ही आश्रय से रहता है । धूँए का सहारा लेकर चलते चलें आगे बढ़ते चलें कहीं तो धुँए का आश्रय स्थान मिलेगा, जहाँ जाकर हमारे शीतका निवारण हो सकता है, अंधकार मिट सकता है भय भाग सकता है। शीतकी निवृत्ति अंधकार का नाश और भयका अभाव तीनों एक साथ ही अग्नि के आश्रय मात्र से हो सकते हैं। इसी प्रकार बड़े बड़े मननशील मुनिगण सोचते हैं—कि शान्ति के एक मात्र आलय तो आपके चरणारविन्द ही हैं। वे आसक्ति रूप अंधकार के कारण हृदय दहर में छिपे हुए हैं, तो पहले तो वे लोग आपके चरणों के ध्यान से उस आसक्ति को हटाकर अन्तःकरण को विशुद्ध बना लेते हैं, उसी में उन्हें उड़ते हुए वेदरूप चार पक्षी दिखायी देते हैं। मुनिजन पुनः सोचते हैं—"इन पक्षियों के रहने का भी तो कहीं स्थान होगा, किसी वृक्ष में तो इनकी नीड़—खोहर—होगी, रात्रि के समय जहाँ जाकर ये सोते होंगे और प्रातः निकलकर इतस्ततः परिभ्रमण करते होंगे, ऐसा आलय कहीं तो होगा, चलो, इन्हीं का अनुसरण करें, इन्हीं का पल्ला पकड़ें, इन्हीं के पीछे पीछे चलें,

[illegible] मार्ग
[illegible] गते
हैं, वे भी उनके पीछेपीछे चल देते हैं। उन सुंदर पर्ण-पंख- वालेपक्षियों की नीड़ तो आपका मुखकमल ही है। वेद उसी में वास करते हैं, उन्हीं सेनिसृत होकर जगत में उड़ते हैं फैलते हैं। दिवस का अवसान निरखकर पुनः आपके मुख में ही आकर छिप जाते हैं सो जाते हैं। पक्षी उड़कर पहिले वृक्ष के मूलमें चरणमें आते हैं मानों यात्रा से लौटकर अपने जनक के-आश्रय दाताके-पालन पोषण करनेवाले के पादपद्मों में प्रणाम करके तब अपनी कोठरी में प्रवेश करते हैं। तब मुनिगण मुदित हो जाते हैं हमें ज्ञानमय, आनन्दमय, सुख शान्तिमय स्थान मिल गया। वे आकर आपके चरणारविन्दों में लिपट जाते हैं। अतः हम उन वेदमार्ग से प्राप्त होने वाले पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करते हैं।

हे पापताप नाशक! आपके चरणारविन्द अज्ञान अंधकार के कारण दूर से लगते हैं वे दिखायी नहीं देते। हाँ कलि कल्मष काटिनी, त्रिविधतापविनासिनी, मुनिमनहारिणी सुख शान्ति प्रकाशिनी संसार की समस्त सरिताओं में सर्व श्रेष्ठ सरित् प्रवरा गंगा जी दिखायी देती हैं। तब मुनिगण बताते हैं। यह अघोंको मर्षण करने वाली पापों को विदारण करने वाली अघमर्ष गंगा आपके चरणारविन्दों का धोवन है, इसीलिये पापोंको क्षय करने की इसमें इतनी विपुल-अत्यधिक-शक्ति है। गंगा का उद्गम स्थान आपके पाद पद्म ही हैं। अतः वे गंगा किनारे किनारे भ्रमण करते हैं। उसके यथार्थ उद्गमका पता लगाने गोमुखतककी यात्रा करते हैं, गोमुख में जाकर भी जब देखते हैं कि यह गंगा का यथार्थ उद्गम स्थान नहीं है, यहाँ से तो केवल गंगा निसृति हो रही है, इस हिमगुफा से तो केवल वेग के साथ बह रही है। उद्गम तो कहीं दूर होगा। तब वे गंगा किनारे बैठकर नेत्रबंद

करके ध्यान करते हैं और उन्हें अपने हृदय में ही उस गंगोद्गम के दर्शन हो जाते हैं, अतः ऐसे उन अघमर्ष उदक बहाने वाली सरित्प्रवरा के उद्गम स्थान तीर्थस्वरूप तीर्थ प्रवर पादपद्मों में हम पुनः पुनः प्रणाम करते हैं। उन्हीं सर्व संतापहारी पदों का आश्रय लेते हैं।

हे प्रभो ! पाद पद्मों की भक्ति तो बहुत दूर की बात है, उसके अधिकारी तो अधिक नहीं हैं। आपके चरणारविन्दों का जिन्हें संस्पर्शप्राप्त होजाय, जिन्हें उन विमल चरणोंका संसग मिल जाय उनका आश्रय लेने पर भी बेड़ा पार हो जाता है, संसार सागर से सरलता के साथ तर जाता है। आपके चरणारविन्दों का संसर्ग तो आपकी पुनीत पादुकाओं को प्राप्त है, उन्हीं पर चढ़कर तो आप चलते हैं, उन्हें ही पहिनकर तो आप विचरण करते हैं। वे पादुकायें स्वतः ही हृदय पटल पर अपने आप आजाती हैं। आकर आसन जमालेती हैं, किन्तु सरलता से नहीं आतीं। जो अन्तःकरण श्रद्धा संयम पूर्वक आपकी कथा श्रवण रूपी भक्ति से तथा आपके सुंदर सुमधुर संसार सागर से पार करने वाले आप के परम पावन नामों के तथा आपके गुण गण के गान रूपा भक्ति से विशुद्ध बन गया हो और ज्ञान वैराग्य द्वारा लीप पोत कर चौकपूर कर सजाया गया हो बोधवान् बनाया गया हो, उसमें स्वतः वे अमल विमल दिव्य मणिमय चरण पादुका दिखायी देने लगतीं हैं, जो आपके पद कोप्राप्त कराने में सर्वथा समर्थ हैं। पावन पदोंका वे आश्रय ही हैं। हम उन्हीं आपके चरणाश्रय पादुकाओं का आश्रय लेते हैं, उन्हीं को अपने जीवनका आधार बनाते हैं।

स्वामिन् ! आपके सुखद चरण अभय के आलय हैं। जैसे चीनी के खिलोने चीनी से ही बनते हैं, जो भी उन्हें चाटेगा उसी का मुख मीठा हो जायगा, उसी प्रकार आपके चरण भी अभय

रूपी दिव्य सजीव धातु से निर्मित हैं। जो भी उनकी शरण में होजायगा वही अभय हो जायगा। जो उनका स्मरण करेगा उसके पास भय फटकने भी न पावेगा। वे चरणारविन्द मन वाणी के विषय नहीं हैं। विषय, इन्द्रियाँ मन, बुद्धि सभी से वे परे हैं, फिर भी वे इस विश्वकी उत्पत्ति करने के निमित्त, पालन तथा संहार के लिये अवनिपर अवतरित होते हैं, अवतार धारण करते हैं। विन्यास और विलास करते हैं चंक्रमण करते हैं, ऐसे उन विशुद्ध निर्मल ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश और सभी देवताओं द्वारा पूजित उन चरण कमलों की हम शरण लेते हैं, उन्हीं का आश्रय ग्रहण करते हैं।

हे निकट से निकट रहने वाले अन्तर्यामिन्! हे भगवन्! आप सभी के अत्यंत ही समीप हैं, कहना चाहिये आपसे समीप प्राणियों के पास अन्य कोई वस्तु नहीं। आप इतने समीप रहकर भी हमें दूर दिखायी देते हैं। हमने अपने अज्ञान के कारण यथार्थ आपको दूर हटाकर अन्य मिथ्या वस्तुओं को अपने में सटा लिया है। यह शरीर, मेरा है, इस पर लदे वस्त्र आभूषण मेरे हैं, यह घर मेरा है, ये वाहन मेरे हैं, ये अन्न के बोरे मेरे हैं, ये सेवक भृत्य मेरे हैं, यह शैया मेरी है, यह पत्नी मेरी है, ये पुत्र मेरे हैं, ये गद्दे मेरे हैं, ये सजाने की सम्पूर्ण सामग्री मेरी है यह भूमि मेरी है। जो वस्तुएँ मिथ्या हैं, नाशवान् हैं, परिवर्तनशील हैं, क्षणिक हैं, अयथार्थ हैं उनमें मेरापन कर लेने के कारण आप उनके अन्तःकरण में ही अत्यंत निकट रहते हैं, फिर भी उन्हें आपके चरणार विन्द दूर ही दिखायी देने लगते हैं। आँखों से ओझल हो जाते हैं। जो चरणारविन्द अत्यंत ही समीप हैं, उनका हम आश्रय ले सकें, अहंता ममता का परित्याग करके उनका साक्षात् दर्शन कर सकें यही हमारी आपके पादपद्मों में प्रार्थना है।

हे परमेश्वर! आपका दर्शन होना दूर की बात है, आपके चरणारविन्दों का संस्पर्श मिल जाय, यह तो बड़े भाग्य की बात है, किन्तु हम तो चाहते हैं हमें आपके भक्तों का ही दर्शन हो जाय। किन्तु आपके समाश्रित भक्तों का दर्शन भी तो बड़ा दुर्लभ है। यह बहिर्दृष्टि वाले पुरुषों के लिये संभव नहीं। ये अक्ष गोलक ये इन्द्रियाँ तो मक्खियों के समान हैं, विष्टा और चंदन दो वस्तुएँ रख दो तो वे विष्टा पर ही बैठेंगी चंदन पर न बैठेंगी। शरीर में कहीं व्रण हो उसमें से पीब बह रहा हो और दूसरे अंग में केसर कस्तूरी, अगुरु आदि सुगंधित वस्तुओं का लेप हो रहा हो तो वे व्रण के पूय का ही आस्वादन लेंगी। इसी प्रकार ये इन्द्रियाँ भी बाहरी विषयों को ही ग्रहण करती हैं। इन्द्रियों के विषयाभिमुख होने से अन्तः करण बहिर्मुख हो जाता है मलिन बन जाता है। ऐसे मलिन अन्तःकरण वालों को भला आपके उन विशुद्ध पवित्र भक्तों का दर्शन कैसे हो सकता है जो आप की चलनचितवन का अवलोकन करते हैं, आपके पाद विन्यास के विलास की शोभा से जिनका चित्त बाह्य विषयों से सर्वथा उपरत हो गया है। ऐसे आपके चरण सेवक भक्तों का आपके चरणोपासक अनन्य अनुचरों का दर्शन होता रहे यही आपके पुनीत पाद पद्मों में प्रार्थना है।"

सूत जी कहते हैं मुनियो! इस प्रकार देवताओं ने भगवान् के चरणारविन्दों की महिमा गायी अब आगे जैसे वे भगवत धाम की भगवान की भक्ति के सम्बन्ध में प्रार्थना करेंगे उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

जिनि शुभ चरननि धारि भक्त हिय विमल बनावें।
उनि पद पदुमनि पुन्य पादुकनि हम नित ध्यावें॥

जो धारें अवतार जगत उतपति थिति लय हित।
देहिँ अभय उन नरनि लगावें जिनि चरननि चित॥
जग भोगनि तैं सकल विधि, मैं मेरी त्यागन करें।
पावें दरसन दास ते, चरन कमल चित जे धरें॥

पद

बन्दौं प्रभु पद अति सुखदाता।
जो शरनागत भगतनि के हित ताप निवारक छाता॥ १॥ बन्दौं०
जग दुख मेटत पार करत भव, सब विपतिनि के त्राता।
भटकत व्याकुल जीव जगत महँ ते पदगोदी माता॥ २॥ बन्दौं०
वेद बतावत वेदविदनि कूँ विभु-पद विश्वविधाता।
निकसी जिनि तैं सब अघनासिनि सुरसरि सब जगमाता॥३॥बं०
जिनि पद हिय धरि सब सुख पावैं, तोरें जगतें नाता।
जो मम हिये विराजें नित प्रभु,विमल चरन जल जाता॥४॥बन्दौं०

~

अधिष्ठातृदेवों द्वारा स्तुति (२)

(१८)

पानेन ते देव कथा सुधायाः
प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्यबोधम्,
यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥

(श्रीभा० ३ स्क० ५ अ० ४५ श्लो०)

छप्पय

भीतर बाहरि करन विषय अभिमुख जिनिजन के ।
तिनि अति दुरलभ दरस चरनसेवी भक्तनि के ॥
कथा सुधा करि पान विमलचित तव पद ध्यावें ।
ते लहि ज्ञान विराग अन्तमहँ तव पद पावें ॥
कोई तव माया तरें, प्रबल योग की शक्ति तें ।
परे परिश्रम तिनि अधिक, नहिँ श्रम सेवा भक्ति तें ॥

सूतजी कहते हैं—मुनियों ! स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं । पहिले उन्होंने प्रभु पादपद्मों में प्रणाम किया, चरणकमलों की महिमा गाकर उनकी वन्दना की । अब भक्ति ज्ञान आदि*

---

* देवगण स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे देव ! आपके वैकुण्ठ धाम को वे ही लोग अनायास चले जाते हैं जो आपकी कथा सुधा का पान करने से प्रवृद्ध भक्तिद्वारा अपने चित्त को विशुद्ध बना लेतेहैं और उस आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, जिसका सार वैराग्य ही है ।

के द्वारा आप का पद प्राप्त होता है, इस बात को बताते हुए कह रहे हैं—प्रभो ! एक तो आप के ऐसे भक्त होते हैं, जो संसार कैसे उत्पन्न हुआ, कहाँ से आया, किस तत्व से कौन तत्व उत्पन्न हुआ, इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं देते। वे तो निरन्तर आप की कथा रूपी सुधा का प्रेम पूर्वक पान ही करते रहते हैं। आपकी लीलाओं का, आप के अप्राकृत गुणों का श्रवण ही करते रहते हैं, निरन्तर आप के ही गुणों को सुनते सुनते उनके हृदय में जो संसारी विषयवासनायें भरी रहती हैं, वे शनैःशनैःन्यून होती जाती हैं, उनके स्थान में भगवत् गुणानुवाद बैठते जाते हैं, रिक्तस्थान की पूर्ति आपकी लीलाओं की स्मृति करती रहती हैं।

निरन्तर कथा श्रवण करते करते, तथा आप के श्रुतमनोहर जगत्पावन नामों का तथा गुणों का कीर्तन करते करते उन्हें आप का ही स्मरण बना रहता है।

जब उनके हृदय में संसारी भोगों की इच्छायें भरी पड़ी थीं तब सदा भोगों की ही स्मृति रहती थी, जो भी संसारी भोग्य पदार्थ, इन्द्रियजन्य विषय सम्मुख आजाता था, तो उसी के आगे नत मस्तक हो जाते थे। कोई सुन्दरी कामिनी आ गयी उसके चरणों में मस्तक नवा दिया, कोई सुन्दर स्वादिष्ट मीठा खट्टा चरपरा पदार्थ आ गया, उसी के सम्मुख सिर झुका दिया, कोई सुन्दर सूँघने का पदार्थ आया, कोई अत्यंत मृदुल गुल-गुल स्पर्श की वस्तु आई, उसी के सम्मुख नतमस्तक हो गये। स्मृति के अनुरूप ही नमन होता है।

जब आपकी गुणावली सुनने से विषयेच्छायें एक एक करके खिसकने लगीं, तभी अशुद्ध पदार्थों के निकलने के कारण उस

विशुद्ध अन्तःकरण में आपके दिव्य गुणों का समावेश होने लगा आपकी ही स्मृति रहने लगी। अतः आपके ही सम्मुख मस्तक झुकने लगा आप को ही नमस्कार की जाने लगी। सदा नमो नमः नमो नमः कृष्णाय नमः वासुदेवाय नमः प्रणत क्लेश नाशाय नमः गोविन्दाय नमो नमः होने लगी। वन्दना करते करते फिर पाद पद्मों की सेवा करने की स्वाभाविकी प्रवृत्ति अन्तःकरण में जागृत होने लगी। तब आप के पादपद्म दिखायी देने लगे उन का सुख से सेवन किया जाने लगा। लाभ से लोभ बढ़ा ही है। एक सुख मिलने पर उससे बड़ा सुख पाने की इच्छा स्वाभाविकी है। तब इच्छा होती है, आप सर्वाङ्ग का अर्चन करने का अवसर मिले। आप तो भक्तवांछा कल्पतरु के नामसे प्रसिद्ध ही हो, भक्त की इच्छा में ही जो कुछ देरी भले ही हो; पूर्ति करने में आपकी ओर से देरी कोई नहीं। आप उन्हें अर्चन का दिव्य सुख देते हैं। अर्चन करते करते आपके प्रति दास्यभाव बढ़ जाता है। आप हमारे स्वामी हो, हम आपके सर्वथा आज्ञाकारी दास हैं, सेवक हैं, अनुचर हैं, भृत्य हैं, किंकर हैं। पुराना भक्त ढीठ हो जाता है। दास्यभाव के साथ ही साथ वह कुछ बराबरी का सा स्वत्व रखने लगता है। एकान्त में बात करता है, अपने दुख सुख की बात कहता है और सुनना चाहता है। स्वामी उससे उसके अन्तर की बात सुनते हैं और अपनी भी आपत्ति विपत्ति तथा कठिनाई बताते हैं, तो सखा का सुख तथा साहस सहस्रों गुणा बढ़ जाता है, स्वामी के प्रति वर्णनातीत भक्ति हो जाती है, इससे वह सभी सम्बन्धों, सभी धर्मों और सभी आशाओं को छोड़कर सर्वात्मभाव से स्वामी को आत्मसमर्पण कर देता है। जो सत्सेवक अपना सर्वस्व सन् स्वामी के समर्पण करदेगा, उसे स्वमी अपने परिवार में सम्मिलित

कर लेते हैं, उसे अपने शरीर का एक अङ्ग ही बना लेते हैं, अपने समस्त ऐश्वर्य के भोगने का उसे अधिकार प्रदान कर देते हैं, यहाँ तक कि अपना आप उसे अर्पण कर देते हैं, आप तो सबसे बड़े प्रत्युपकारी कृतज्ञ हैं। जो आप का दास बन जाता है, उसके आप भी दास बन जाते हैं, जो आपको अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं उन्हें आप भी सब कुछ यहाँ तक कि अपना वैकुण्ठ लोक भी उसे देदेते हैं। वह भक्त आप का सान्निध्य पाकर आपको अपना सर्वस्व समझ कर कृतकृत्य हो जाता है, धन्य बन जाता है, फिर उसे कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता।

दूसरे आपके ऐसे ज्ञानी भक्त होते हैं जो भोगों के संकल्प से उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओं को बासना और उनमें उत्पन्न आसक्ति अपने पुरुपार्थ से त्यागकर मन और इन्द्रियों को बलपूर्वक उनकी ओर से हटाते हैं। फिर बड़े प्रबल प्रयत्न से क्रम क्रमसे शनैः शनैः विषयों से मनको विरक्त करते हैं। इस अभ्यास के द्वारा वैराग्य ही जिसका सबसे बड़ा बल है ऐसे आत्मज्ञान को वे प्राप्त करते हैं। उन्हें ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है।

तीसरे योगी भक्त हैं, जो यम नियमों का पालन करते हुए आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा के द्वारा समाधि का अभ्यास करते हैं, अपने चित्त को परमात्मा में प्रयत्न पूर्वक स्थापित करके आपकी अत्यंत प्रबल बलवती दुर्विज्ञेय माया को जीतकर आप में ही लीन हो जाते हैं, आपको ही प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार हे देव! किसी मार्ग से क्यों न जायँ, पहुँचते आपके ही पास हैं, किन्तु अन्तर इतना है, किसी मार्ग से शीघ्र पहुँच जाते हैं, किसीसे देरी में घूम फिरकर चक्कर काट

कर पहुँचते हैं, किसी मार्ग से सुख पूर्वक रसीले फल खाते स्वादु पय पीते हुए प्रसन्नता के साथ बिना परिश्रम सहज भाव से पहुँच जाते हैं, किसी मार्ग से बड़े परिश्रम से उपवास करते हुए भूखे प्यासे मरते हुए कंटकाकीर्ण पथ से चलते हुए, श्वास प्रश्वास को शीघ्र छोड़ते लेते हुए प्राणों और शरीर का व्यायाम करते हुए कठिनता से पहुँचते हैं। अन्तर इतना ही है कि श्रवण कीर्तन वाले भक्ति मार्ग के साधकों को श्रम नहीं करना पड़ता वे सरलता के साथ सहज ही में आप के पादपद्मों में पहुँच जाते हैं और ज्ञानी योगियों को श्रम करना पड़ता है अत्यंत कठिनता के साथ आप तक पहुँच पाते हैं।

हे देव! आप सभी संकल्प विकल्पों से रहित हैं, आप को कोई इच्छा नहीं, अभिलाषा नहीं, जिज्ञासा नहीं, कर्तव्य नहीं तथा कोई कर्म बन्धन नहीं, फिर भी आप लीला के लिये क्रीड़ा के लिये सृष्टि करते हैं, लोकों की रचना करते हैं, ब्रह्माण्ड बनाते हैं, आपकी इच्छा से ही काल की प्रेरणा द्वारा प्रकृति में क्षोभ होता है, गुणों की साम्यावस्था समाप्त होती है, गुण वैषम्य होने पर सत्वादि स्वभावों से युक्त हमारी रचना आप करते हैं, हम सबके स्वभाव भिन्न भिन्न हैं। भिन्न स्वभाव के लोग एक साथ नहीं रह सकते। एक साथ रहने वालों में कोई एक साम्य होना आवश्यक है। हममें समता का अभाव है, इसीलिये पृथक् पृथक् रहते हैं। इसीलिये ब्रह्माण्ड रचना में समर्थ नहीं हो सकते। आप अपनी क्रीड़ा के निमित्त एक ब्रह्माण्ड की रचना चाहते हैं, जिसमें आप मनोविनोद करें लीला रचें। हमें आपने इसी निमित्त उत्पन्न करके यह काम सौंपा है, किन्तु पृथक् पृथक् स्वभाव के होने के कारण हम आपकी इच्छा पूर्ति करने में अपने को समर्थ नहीं पाते। अतः आप ऐसी कृपा करें कि किसी प्रकार ब्रह्माण्ड बनाकर उसे आपको समर्पित कर सकें। यदि हम बनाते

में समर्थ हो सकें तो आपको सभी प्रकार के भोग भुगा सकेंगे और स्वयं भी अपनी योग्यता के अनुसार अपने अन्न को अपने भोग्य पदार्थ को ग्रहण कर सकेंगे। तथा ये सभी संसारी जीव बिना विघ्नबाधा के आपको तथा हम को भोग समर्पण करते हुए स्वयं भी बचे हुए अवशिष्ट अन्न को भक्षण करके जीवन निर्वाह कर सकेंगे तथा आपकी प्राप्ति रूप साधन में जुटे रहेंगे। हे सर्व समर्थ ! हे अशरणशरण ! आप ऐसी कृपा करें, ऐसी सामर्थ्य हमें प्रदान करें हे सबके सृजनकर्ता ! हे संसार तरु के बीज ! आप सभी प्रकार के विकारों से सर्वथा रहित हैं। भूत, भविष्य तथा वर्तमान में कभी भी आपको कोई विकार अपने पद से विकृत नहीं बना सकता ! आप अनादि हैं, आपका आदि न कोई पा सका है न कोई पा ही रहा है न आगे पा ही सकेगा। आप सबसे प्राचीन पुराण पुरुषोत्तम हैं। आपसे आगे कोई है न होगा। आपने ही संसार के सभी उपकरणों को सभी कार्यवर्ग को तथा हम सब को भी उत्पन्न किया है, आप सबके कारण हैं। सबके जनक तथा उत्पादन कर्ता हैं आपने ही सबसे पूर्व, सर्ग के आदिकाल में सत्व, रज तथा तम और अन्य भी अपर गुणों का उत्पन्न किया है अतः आप पुराण पुरुष के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। आप ही जन्म मरणादि कर्मों की कारणरूपा माया में चेतन रूप वीर्य की स्थापना करते हैं, आप ही सबमें चेतना उत्पन्न करते हैं, आपकी शक्ति के बिना जड़ प्रकृति कर ही क्या सकती है। अतः हे देव ! इस जड़ रूपा माया शक्ति में आपने तो गर्भाधान संस्कार किया था चेतन रूप वीर्य की स्थापना होने से ही यह सृष्टि कार्य में समर्थ हो सकी। यह माया देवी ही सत्व, रज तम आदि गुणों की कारण रूपा है, जन्मादि कर्मों की उत्पत्ति भी इसी से होती है। आपके बिना माया शक्ति कुछ भी नहीं कर सकती।

हे देव ! हे आत्मन् ! अब हमारी प्रार्थना यह है कि महतत्त्वादि के अभिमानी देवतागण हम सब को उत्पत्ति आपने ब्रह्माण्ड रचना के ही निमित्त की थी, किन्तु हम सब संगठन में नहीं रह सकते। पृथक् पृथक् रहने के कारण ब्रह्माण्ड रचना में सर्वथा असमर्थ हैं, अब हम करें भी तो क्या करें ? कैसे अपने अभीष्ट को सिद्ध करने में समर्थ हो सकें ?

हे देव ! हम कार्य तो कर सकते हैं, किन्तु बिना विचार के बिना विधान के बिना योजना के कार्य ही करते गये तो उससे लक्ष्य की प्राप्ति तो होगी नहीं। कोई शब्द बोलने में तो समर्थ है, किन्तु उन शब्दों का परस्पर में सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता नियजन नहीं करसकता,तो उस असम्बद्ध प्रलापसे अपनेभावोंको व्यक्त नहीं कर सकता सकता। इसी प्रकार आपने हमें उत्पन्न तो कर दिया किन्तु परस्पर में सम्बद्ध होने की शक्ति प्रदान नहीं की तब हम आपके कार्य को कैसे कर सकेंगे ? अतः हमें अपनी क्रिया शक्ति के सहित ज्ञानशक्ति प्रदान कीजिये जिससे ब्रह्माण्ड बन सके, यह सृष्टि क्रम आगे बढ़ सके।

हे भक्तानुग्रह कारक घनश्याम! आप हम पर कृपा कीजिये। आपके अतिरिक्त अनुग्रह करने वाला अन्य कौन है, आप ही अनुग्रह आकर हैं भंडार हैं, हम पर कृपा कीजिये और अपने मनो विनोद की सामग्री सृजन की शक्ति दीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अधिष्ठातृ देवों की ऐसी प्रार्थना सुनकर भगवान् ने अपनी कालशक्ति को आश्रित करके जो तेईसतत्व अब तक पृथक् पृथक् बन चुके थे उन सब में एक साथ ही प्रवेश किया। फिर तो गाड़ी चलने लगी, इस विषय का विशेष विस्तार सृष्टि प्रकरण में किया जायगा, इस प्रकार मैंने अधिष्ठातृ देवों की स्तुति का वर्णन किया अब सृष्टि रचना के निमित्त ब्रह्मा

जी ने जैसे भगवान् की स्तुति की है, उस स्तुति को मैं आपको सुनाता हूँ, आप ध्यान पूर्वक उस रहस्यमयी स्तुति को श्रवण करें।

छप्पय

सब सुर पृथक स्वभाव सृजनकी शिक्षा दीजे।
हम तुम अरु सब जीव करें क्रीड़ा सो कीजे॥
रचिकें तुमने हमें शक्ति बढ़िवे की दीन्हीं।
तुमने माया माहिँ चेतना थापित कीन्हीं॥
ज्ञान दीठितैं क्रिया की, शक्ति देहिँ अशरनशरन।
सुर विनती सुनि सबनि प्रभु, इक सँग प्रविसे दुखहरन॥

पद

भगतहित रूप अनूप बनाओ।
ज्ञान विराग धारि घर त्यागे तिनिकूँ ब्रह्म लखाओ॥१॥
यम अरु नियम साधि प्राननिकूँ प्रत्याहार कराओ।
पावैं तुम कुँ पाइ कष्ट बहु जोगी जुगति जताओ॥२॥
सुनें कथा कीर्तन करि क्रंदैं, तिनि हियतैं चिपटाओ।
से पद पावैं पावन पुनिपुनि सहज भाव दरसाओ॥३॥
भक्ति भावभावित भक्तनि भव भयहर भभरि भगाओ।
असुपद पावैं प्रेमपिआवें, दरशन देव! दिवाओ॥४॥

~~~
~~~

सृष्टिरचना के लिये ब्रह्माजी द्वारा भगवत् स्तुति (१)

(१६)

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजाम्
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धम्
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥

(श्री भा० ३ स्क० ६ अ० १श्लो०)

छप्पय

कमलासन हरि-नाभिकमल तैं प्रकट भये जब ।
अनल, कमल, जल, स्वयं लखें नभ पञ्चवस्तु तब ॥
प्रभु चरननि चित लाइ करन इस्तुति अज लागे ।
करि हरि दरशन धन्य भयो अब सब दुख भागे ॥
ज्यों आभूषन कनक के, नाम रूप अगनित भये ।
किन्तु कनक ई कनक सब, त्यों तुमई सब बनि गये ॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब भगवान् पूर्व सृष्टि का संहार करके सब चराचर जगत को अपने शरीर में समेट कर

---

१ सृष्टि रचना के निमित्त भगवान की स्तुति करते हुए लोक विधाता ब्रह्माजी कह रहे हैं—"हे भगवन् ! आज बहुत दिनों के पश्चात् मैं आपको जान सका हूँ । देहधारी प्राणी आपकी गति को नहीं जान सकते यह कितने खेद की बात है । हे प्रभो ! आपके अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं । आपके अतिरिक्त जो दिखयी भी दे वह शुद्ध नहीं है । आपही माया गुणों के अन्योन्य सम्बन्ध से अनेक रूपों में भासते हैं ।

सुख से सोगये तब यह चराचर जगत् भगवान् के शरीर में प्रसुप्त पड़ा रहा। उस समय कुछ भी प्रपञ्च दिखायी नहीं देता था। जब पुनः सृष्टि का काल समुपस्थित हुआ और काल स्वरूपिणी शक्ति ने सृष्टि रचनाकी पुनः प्रेरणाकी तब श्रीमन्नारायण ने अपने अंतः स्थित सूक्ष्मभूतों की ओरदृष्टि पात किया। तब सूक्ष्मभूतों के समुदाय में क्षोभ पैदा हुआ। रजोगुण जिसमें कर्म करनेका-सृष्टि रचना का-संकल्प सन्निहित है, उसमें से एक अंकुर उत्पन्न हुआ वह अंकुर कमल नालके सदृश प्रभुकी नाभिसे निकल कर कमल के रूप में परिणित हो गया। वह कमल वायुकी प्रेरणा द्वारा बढ़ा जल में स्थित नारायण को प्रेरणा से हुग हुआ। नाभिसे निकला अतः अपने रहने को उसने अवकाश आकाशका निर्माणकर लिया। अतः कमलके साथ वायु, आकाश और जल इन तीनों का होना स्वाभाविक था। इन तीनों के बिना स्वयं न कमल का निर्माण हो सकता था न भगवत् नाभिसे नाल द्वारा निकलकर अवकाश में स्थित हो सकता था। कमलके निकलने पर उसमें से अपने आप ही एक पुरुष प्रकट होगये। उन पुरुष ने देखा वायु चल रही है कमल हिल रहा है, जलमें हिलोरें उठ रही हैं, वे भौचक्के से होकर विचारने लगे-यह कमल कहाँ से आगया, इस पर बैठा हुआ मैं कौन हूँ मैं इस पर क्यों बैठा हूँ यह कमल जल में कैसे उत्पन्न हो गया, इसका कहीं आधार भी तो होगा। पहिले तो इसीका पता लगावें। इसी के आदि कारणका अन्वेषण करें" ऐसा सोचकर वे उस कमल नालके सहारे सहारे जलमें उतरे, वे उसके छिद्र द्वारा उसके उत्पत्ति स्थान को खोजते फिरे किन्तु दीर्घ-काल तक खोजते रहने पर भी उन्हें उसका मूलकारण-उत्पत्तिस्थान नहीं मिला, अन्त में वे श्रमित होकर पुनः उसी कमल पर आबैठे और समाधि द्वारा ध्यान करने लगे। समाधि द्वारा उन्हें अपने

अन्तःकरण में ही भगवान् के दर्शन हुए। तब उन्होंने सृष्टि रचना के निमित्त बहुत ही भक्तिभावसे भक्तिभावन भगवान् की स्तुति की। उसी स्तुति को हे मुनियो ! मैं आप सबको सुनाता हूँ, वह स्तुति क्या है, सभी शास्त्रों का सार है, उसमें बताये साधन अमोघ हैं। उसे आप सब श्रद्धापूर्वकश्रवण करें—

ब्रह्माजी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे भगवन् ! मुझे आपने ही उत्पन्न किया है, इस बात को मैं भूल गया था। उत्पन्न होते ही मैं 'कोऽहं कोऽहं' पुकारने लगा। मुझे कुछ दिखायी ही न दिया। अपनी योनि आप को तो देख नहीं रहा था, जिस कमल पर बैठा था, उत्पन्न होकर आसन जमाया था, उसे देखता था। जलको देखता था, आकाश वायु और अपने आप को। जब मेरे मनमें जिज्ञासा हुई कि मेरे आश्रय कमल का कारण उसका और मेरा जनक कौन है, तो मैंने प्रथम अपने पुरुषार्थ का प्रयोग किया, करना ही पड़ता है, आपने जो इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि दिये हैं, पुरुषार्थ के लिये ही दिये हैं, इसीलिये प्राणी बिना कुछ किये रह ही नहीं सकता। अपनी जिज्ञासा निवृत्ति के लिये प्रयत्न करता ही है। मैंने भी प्रयत्न किया। अपने से पृथक् कुछ दूर जल को ही देखा अतः जल के भीतर घुसकर खोजता रहा, कमलका कारण कौन है, किन्तु आप बाहर खोजनेवाले को मिलते ही नहीं, किन्तु उसका खोजना व्यर्थ नहीं होता। उसे एक मार्ग तो मिलता है, मनमें दृढ़ता तो आ जाती है एक निश्चित कर्तव्यतो ज्ञात हो जाता है, कि बाहरकी खोज छोड़कर भीतर ही खोजो। अपने अभिमान को परित्याग कर उन्हीं की शरण में जाओ, वे कृपा करेंगे तो तुम्हें कहीं अन्यत्र जाना न पड़ेगा, दूसरे दूर स्थानों में भटकना न पड़ेगा, घर बैठे ही अपने भीतर ही मिल जायँगे।

मैंने भी प्रथम बाहर ही आपको खोजने का यत्न किया किन्तु

हताश हो गया आप मिले नहीं। तब मैंने कमल के आसन पर बैठे ही बैठे आपकी अनुग्रह का ध्यान किया, आपकी कृपा की स्मृति में समाधि लगायी। तब कहीं बहुत दिनों के पश्चात् आपकी यह दिव्य झाँकी दृष्टिगोचर हुई। चिरकाल पश्चात् आपके यथार्थ रूप का जान सका। अब मैं समझा कि यह जल, वायु, आकाश, कमल और मैं सब आप ही बन गये हैं, आपके अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु है ही नहीं। जो अन्य दिखायी देती है, वह यथार्थ नहीं, सत्य नहीं, शाश्वत नहीं आपसे पृथक नहीं, वह कल्पित है, मिथ्या है, नाशवान है आपकी त्रिगुणमयी माया के जो गुण हैं, वे ही परस्पर में अन्योन्य सम्बन्ध से विकृत होने के कारण भिन्न भिन्न स्वरूपों में प्रतीत हो रहे हैं। वास्तव में आपके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं आपके अतिरिक्त जो दीखता है वह विशुद्ध नहीं है। दृष्टि विकार ही इसमें प्रधान कारण है। किसी किसी को दृष्टि दोष से एक चन्द्रमा के दो चन्द्रमा दिखायी देने लगते हैं। उसे प्रत्यक्ष स्पष्ट दो दिखायी देते हैं। जो दूसरा दिखायी देता है, वह यथार्थ नहीं है। चन्द्र तो एक ही था एक ही है एक ही रहेगा। विशुद्ध दृष्टि वाले, पवित्र नेत्रों वाले उसे एक ही देखते हैं, वस्तुतः वह अद्वय है ही। इसलिए हे प्रभो! तुम्हें जान लेना ही जीव का परम पुरुषार्थ है। जो जीव मानव शरीर धारण करके भी आप के ज्ञान से वञ्चित रहते हैं, आपकी गति को नहीं जान सकते, वे अभागे हैं, वे शोचनीय हैं। दुःख की बात है, कि उनका देह धारण करना व्यर्थ है।

हे चैतन्यस्वरूप! अज्ञान तो जड़ता का कारण है, आपके समीप तो अज्ञान फटक भी नहीं सकता क्योंकि आप तो चिन् शक्ति से सदा प्रकाशित रहते हैं। आप तो सचिदानन्द स्वरूप हैं त्रिकाल सत्य हैं, सर्वथा मंगलमय हैं, अतिशय दर्शनीय, रमणीय, मनोहर तथा सुन्दर हैं, मेरी उत्पत्ति आपसे ही हुई है। इसका

बोध मुझे अब हुआ है, आपकी नाभि में से जो कमल नाल हुआ है, उसके कमल में से मैं प्रकट हुआ हूँ, वास्तव में तो मैं आपका ही पुत्र हूँ। संसार में जितने भी असंख्य अवतार हुए हैं अथवा होंगे उन सभी अवतारों के मूल कारण तो आप ही हैं। आपको कोई कर्तव्य नहीं, कोई इच्छा नहीं, कोई अभिलाषा नहीं, आप तो आप्तकाम हैं। स्वयं ही परिपूर्ण तथा आत्मतुष्ट हैं, फिर साधु जनों के सुख के निमित्त अपने आश्रितों पर अनुग्रह करने के लिये सर्व प्रथम आपने यह अत्यद्भुत आदि अवतार धारण किया है।

हे परिपूर्ण! हे आनन्दनिलय! आप नित्यानन्द में निरन्तर निमग्न रहते हैं। आप में कोई तर्कना नहीं, ऊहा पोह नहीं, संकल्प नहीं विकल्प नहीं आप आनन्द मात्र निर्विकल्प नित्यनिरञ्जन हैं। आपका सर्वतोमुखी तेज कभी खण्डित नहीं होता सदा परिपूर्ण अखण्ड बना रहता है। आप प्रकाशमय तेजमय तथा तेज स्वरूप हैं, गुणों का आप में लेश नहीं। आप निर्गुण निराकार निर्लेप तथा निरवयव हैं। आपका जो आकार दिखायी देता है, वह भी आप से भिन्न नहीं सगुण साकार रूप भी आप के निर्गुण निराकार रूप से पृथक् नहीं। यह शंका भी नहीं की जा सकती कि साकार निराकार निर्गुण सगुण परस्पर में एक दूसरे से भिन्न होते हुए एक साथ कैसे रह सकते हैं। जहाँ अग्नि रहती है, वहाँ जल कैसे रह सकता है। अग्नि और जल एक साथ ही एक स्थान पर कैसे रह सकते हैं? रह क्या सकते हैं रहते ही हैं। वडवानल समुद्र में ही तो रहता है। जठराग्नि पेट में रहती है वहाँ जल भी रहता है। गीले बाँस में जल भी है अग्नि भी है। इसी प्रकार आप के निर्विकल्प, अखण्ड तेजोमय निर्गुण स्वरूप को अनन्त अवतारों के बीज रूप इस आदि अवतार कमल नाभ रूप से पृथक् नहीं मानता। दोनों एक ही हैं। इसीलिये मैंने

तो इस सगुण साकार स्वरूप की ही शरण ली है। यह रूप दशों वाह्य इन्द्रियों, चार भीतर की इन्द्रियों तथा पंचभूतों का आत्मा होने पर भी विश्वातीत ही है। फिर भी सम्पूर्ण सृष्टि का बीज है चराचर विश्व की सृष्टि इसी रूप से होती है।

हे मंगलमय! हे भुवनमंगल! आप को निर्गुण से सगुण होने की कोई आवश्यकता नहीं थी, केवल हम जैसे उपासकों के लिये शरणागत भक्तों पर कृपा करने के लिये ही आप ने यह अलौकिक अद्भुत रूप रख लिया है। हम लोगों पर अनुग्रह करने के लिये ही आपने ध्यान में यह झाँकी दिखायी है। प्रभो! जो अज्ञ हैं, विषयासक्त हैं, दुराग्रही और दम्भी हैं, जो आप के सगुण साकार रूप का अनादर करते हैं, उसकी निन्दा करते हैं, वे अभागे हैं, जड़मति हैं, नरकगामी हैं उन्हें आपके इस रूप के दर्शन दुर्लभ हैं। हे कृपा के सागर! हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिये। हम आप के इस रूप को अभिवादन करते हैं।

हे परमप्रेमास्पद! हे भुवनमोहन! आप के कमल कोश के सदृश जो आपके अमलविमलअरुण चरणारविन्द हैं, उनमें मनमोहक दिव्य गन्ध भरी हुई है। भक्तजन उस दिव्यगन्धका आस्वादन करना चाहते हैं किन्तु जब तक वायु न चले, तब तक गन्ध का इन्द्रियों से संयोग कैसे हो? अतः वेद रूपी वायु आप के चरणों का और आप के आश्रित भक्तों की इन्द्रियों का संयोग करा देती है, जिससे आपके चरण रूप कमलकोश की गन्ध उनके नासिका पुटों में प्रवेश करती है, उसका वे आघ्राण करते हैं। जहाँ उन्हें उसका आस्वाद मिला कि फिर वे आप के उन दिव्य गन्ध युक्त चरणों को किसी भी दशा में क्षण भर को भी छोड़ने को उद्यत नहीं होते। उनके पास एक अत्यंत ही पतली-कच्चे सूत के धागे से भी निर्बल भक्ति रूपा रज्जु रहती है। उस रज्जु से ही वे आपके चरणों को बाँध लेते हैं, फिर कभी छोड़ते नहीं और उसकी दिव्य

गन्ध को इन्द्रियों द्वारा अनन्त काल तक सूँघते रहते हैं और परम मुदित बने रहते हैं।

हे परमात्मन्! हे सर्वप्रिय! हे प्रेमधाम! संसार में तो प्रेम की रज्जु में और भी बहुत सी वस्तुएँ बँधी हैं। शरीर से बड़ा प्रेम होता है, इसी को सर्वस्व समझ कर रात दिन इसी के पालन पोषण में व्यग्र बने रहते हैं। आज श्लेष्मा हो गया, ज्वर आ गया, अर्श, कास, श्वास नाना रोग होने पर भय होने लगता है, कहीं यह दुर्बल न हो जाय, प्राणों से पृथक् न हो जाय, इसके लिये बड़े-बड़े चिकित्सक बुलाते हैं, रात्रि दिन परिश्रम करके बड़े कष्ट से अत्यन्त अपमान सहकर जो धन एकत्रित किया था, उसे पानी की भाँति बहाते हैं किसलिये? शरीर के प्रेम के कारण। यह सदा बना रहे। इसी प्रकार घर में भी बड़ा प्रेम है, घर पर कोई प्रहार करता है, तो ऐसा लगता है; मानों अपने ऊपर ही कोई प्रहार कर रहा है। स्त्री तो अपनी अर्धाङ्गिनी ही ठहरी, प्राणों से भी अधिक प्रिय होने से प्राण प्रिया कही जाती है, वह भी पति को सबसे अधिक प्रेमास्पद-प्रियतम-कहती है। उसका अपमान आत्मापमान से भी बढ़कर शोकदायी है। बच्चे तो आत्मजःही ठहरे। आत्मा वै जायते पुत्रः श्रुति ही कहती है अपनी आत्मा ने ही पुत्र का रूप रख लिया है। उसके लिये हृदय में सदा कितनी स्पृहा बनी रहती है। अपने परिजन सुहृद्जनों में भी अनुराग होता है। इन सब में संसारी लोगों का प्रेम बँटा हुआ रहता है। इन सब में प्रेम होने से थोड़ा बहुत सुखाभास भले ही होता हो। किन्तु इन सबसे दुःख अत्यधिक होता है। भय बना रहता है, कोई हमारे शरीर पर आघात न पहुँचा दे, रोग न धर दबावे, कोई अपमान न कर दे। धन तो भय का घर ही है। राजा से, चोर से, स्वजनों से, सम्बन्धियों से, याचकों से सदा भय बना रहता है,

कोई माँग न ले। शरीर रोगी हो जाता है, घर टूट-फूट जाता है, या कोई दूसरा उस पर अधिकार कर लेता है, धन नष्ट हो जाता है, चोरी हो जाता है, या इच्छा के प्रतिकूल व्यय हो जाता है, तो हृदय में शोक होता है। दूसरों को सुखोपभोग करते देखते हैं तो स्पृहा होती है। शत्रुओं से पराभव हो जाता है, तो अत्यन्त शोक होता है। सदा मन में भोगों के भोगने की, विषय पदार्थ पाने की तृष्णा बनी रहती है। इस प्रकार देह से गेह से धन से, स्त्री, बच्चे तथा सुहृद्‌जनों से निरन्तर भय बना रहता है, शोक उत्पन्न होता है, स्पृहा बढ़ती है, पराभव का क्लेश तथा तृष्णा आदि सताते रहते हैं। यह सब तभी तक होता है, जब तक हमने इन सब को अपनी मोहपाश में बाँध रखा है। जब तक हमारी इनमें अहंता ममता रहती है। यह मैं हूँ, ये वस्तुएँ मेरी हैं ऐसा भाव बना रहता है जब तक मैं और मेरे पन का असत् आग्रह बना रहता है। जिस दिन इनकी ओर से मन हटाकर आपके चरणारविन्दों में लग जाता है, जिस समय प्रेम की रस्सी से आपके चरणों को बाँध लेता है, तब इन सबकी ममता अपने आप समाप्त हो जाती है। फिर न भय रहता है न शोक और न तृष्णा, फिर तो पराभव की सम्भावना नहीं, स्पृहा की कल्पना ही नहीं। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है। जीव कृतार्थ हो जाता है, उसका भवबन्धन समाप्त हो जाता है। आवागमन रुक जाता है। आपके चरण कमल की दिव्य गन्ध जिसे एक बार भी सूँघने को मिल गयी, फिर उसे संसारी किसी भी विषय की गन्ध अच्छी ही न लगेगी। उसे समस्त विषय विषवत् प्रतीत होंगे। समस्त संसारी कामनायें अपने आप छूट जायँगी। पाप, ताप संताप तथा समस्त शोक स्वतः ही समाप्त हो जायँगे। अतः हे प्रभो! हमें आप अपने चरणों की शरण दीजिये। आप के चरण कमलों में भक्ति हो,

अनुरक्ति हो आसक्ति हो यही हमारी याचना है। आपके पुनीत पावन पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कह रहे हैं—मुनियो! जिस समय ब्रह्माजी भगवान के नाभि कमल से प्रकट हुए थे उस समय उनके एक ही मुख था। किन्तु जब उनको चारों ओर देखने की इच्छा हुई, तो चारों दिशाओं में चार मुख हो गये। उनके चारों मुखों ने क्रमशः स्तुति की। एक मुख इतनी स्तुति करके जब चुप हो गया, तो अब दूसरे मुख ने जो स्तुति की उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। उसे भी आप श्रद्धा के साथ श्रवण करें।

छप्पय

सब अवतारनि आदि रूप जिहि अद्भुत धार्यो।
सगुन अगुन नहिँ भेद रूप लीला विस्तार्यो॥
चरन कमल मकरन्द गन्ध ने सब भय टारे।
दीये दरसन देव! दुरित दुख दैत्य विदारे॥
तन धन घर प्रियजन विपति,, देवेँ दुख तब तक विभो।
जब तक तव पद पदुम महँ, पाइं न नर आश्रय प्रभो॥

पद

प्रभु तुम रूप विविध विधि धारो।
जीव जगत महँ भ्रमत सतत परि, मरम न लखे तिहारो ॥१॥ प्र०
हार, हमेल, करधनी-कुण्डल, कनकहि को विस्तारो।
नाम रूप धरि विविध कहाओ, माया लयो सहारो ॥२॥ प्रभु०
सदा प्रकाशित नित्य निरंजन जग रचि पालि सँहारो।
अगनित अवतारनि के कारन संत जननि नित तारो ॥३॥ प्रभु०
सगुन अगुन कछु भेद न तुममें जल ही हिम तनु धारो।
होहु सगुन साकार भक्त हित निरगुन नहिं कछु न्यारो ॥४॥ प्रभु०

ब्रह्माजी द्वारा भगवत् स्तुति

(२०)

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्
सर्वाशुभोपशमनाद् विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना–
लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् १॥
(श्री भा० ३ स्क० ६ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

तजि हरिकीर्तन कथा विषयसुख मन ललचावें ।
ते अति पामर पतित अभागे अधम कहावें ॥
काम अगिनि महँ जरत क्रोधकरि क्लेश उठावत ।
व्याधिग्रसित लखि नरनि दया हिमयहँ अतिलागत ॥
माया मोहित जीव जिह, तब तक विषयनि सुख चहे ।
जब तक प्रभुपद पदुमको, सुखद मधुर रस नहिँ लहे ॥

सूत जी कह रहे हैं—मुनियो ! अब ब्रह्मा जी अपने द्वितीय मुखारविन्द से स्तुति करते हुए कहने लगे—"प्रभो ! मुझे जीवों पर दया आती है, एक ओर शुद्ध पवित्र कपिला का टटका

१ स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"हे प्रभो ! उन लोगों की बुद्धि को दैव ने हर लिया है जो लोग सम्पूर्ण अशुभों को नाश करने वाले आपके कीर्तन से विमुख बन गये हैं और तनिक से कामसुख के लिये दीन हुए लोभाभिभूत मन से अकुशल कार्यों को करते रहते हैं । निश्चय ही ऐसे लोग दया के पात्र हैं ।"

स्वादिष्ट दूध रखा है, दूसरी ओर अर्क का, मदार का गाढ़ा गाढ़ा दूध रखा है। ये अभागे लोग कामधेनु के दूध को छोड़कर आर्क के दूध को पी लेते हैं, जिससे अन्धे होकर इधर उधर भटकते रहते हैं। आपने जीवों पर दया करके, भक्तों पर अनुग्रह करके अपनी कितनी सुन्दर सुन्दर कथायें प्रकट कर दी हैं, अद्भुत अद्भुत लीलायें करके व्यासादि ऋषियों का अवतार लेकर उन लीलाओं को ललित भाषा में लिखा भी दिया है, जगत को पावन करने वाले परम मधुर नाम प्रकट कर दिये हैं— "वासुदेव, मदनमोहन, आनन्दकन्द, रासविहारी, राधारमण, भवभयहरण, गोविन्द, हरि, मुरारि, नाथ! नारायण! कितने श्रुतमधुर कर्णप्रिय हृदय ग्राही नाम हैं, इन नामों का कीर्तन किया जाय, तो अन्तःकरण भी प्रफुल्लित हो और अन्त में आपका सुदुर्लभ पद भी प्राप्त हो। किन्तु ये विपदा के मारे जीव इन सम्पूर्ण अशुभों को नष्ट कर देने वाले परमपावन नामों का कीर्तन नहीं करते। समस्त कल्मषों को जड़मूल से काट देने वाली आप के सम्बन्ध की भागवती कथाओं को श्रवण नहीं करते। व्यर्थ की लोकवार्ताओं में अपने अमूल्य समय को अपव्यय करते हैं। आपके प्रसंग श्रवण में आप के नाम संकीर्तन में जो अनन्त सुख है, उसकी ओर उनका झुकाव ही नहीं होता। इसके विपरीत यदि उन्हें नरक में ले जाने वाले, संसृति में फँसाने वाले, पुनः पुनः जन्म मरण के चक्कर में डालने वाले लेशमात्र तनिक से विषय भोग मिल जायँ तो उसकी ओर टूट पड़ते हैं, सोचते हैं इन्हें भोगने से हमारी तृप्ति होगी हमें शान्ति मिलेगी। क्या प्रभो! विषयों से किसी को शान्ति मिली है, प्रलय प्रचंड प्रज्वलित अग्नि तनिक सा घृत डालने से कभी शान्त हुई है?

संसार में जितने भोग्य पदार्थ हैं समस्त खाने के पदार्थ, पहिनने के वस्त्र, देखने के रूप, सूँघने के गन्ध, सभी प्रकार के

वाहन, संसार की सभी सुन्दरी रूपवती स्त्रियाँ, सभी श्रुतमनोहर श्रवण करने योग्य शब्द, दर्शनीय पदार्थ तथा और भी जो इन्द्रिया को तृप्त करनेवाली विषय सामग्रियाँ हैं। ये सभी किसी एक ही को दे दी जायँ, तो वे सब मिलकर भी एक की तृष्णा को शान्त नहीं कर सकतीं। फिर मनुष्यों के पास तो परिमित भोग सामग्रियाँ हैं। वे भी पाँचों इन्द्रियों की पृथक् पृथक् हैं। किसी को एक इन्द्रिय की भोग सामग्री मिल जाय, जैसे स्वादेन्द्रिय को अच्छा लगने वाला पदार्थ मिल जाय, जो भी एक दिन की पूर्ति के ही लिये, तो ये जीव उस इतने ही प्रलोभन से फिसल जाते हैं। अरे, आज क्षण भर को स्वाद ले लोगे, कुछ काल के पश्चात् पुनः भूख लग जायगी, पुनः जीभ लपलपावेगी, पुनः उसे पाने को मन चलेगा। इस इतने से लेशमात्र विषयसुख के लिये मन ही मन लालायित बने रहते हैं और कथा कीर्तन में मन नहीं लगावे यह कितनी भारी मूर्खता है, कैसा बड़ा अज्ञान है। प्रभो! इन विषय भोगों में क्या रखा है। क्षण भर को राजा को जो सुख रानी के साथ मिलता है, वही सुख उतने देर सूकर को सूकरी के साथ मिल जाता है। इसके पश्चात् दोनों ही दुखी हो जाते हैं। वह सुख स्थायी भी नहीं उसके आदि में भी दुःख और उसका परिणाम भी दुखद ही होता है। हे स्वामिन्! जीव क्यों इन संसारी भोगों में सुख की खोज करता है? क्यों स्वाभाविक रूप से उसका रुझान इन विषयों की ओर होता है, वे आपकी सुखकारी कथाओं को क्यों नहीं सुनते? ये जीव सदा यज्ञ भी करेंगे, दान, पुण्य तथा कोई शुभ कर्म भी करेंगे, तो उसका फल यही माँगेंगे "रूपं देहि धनं देहि यशो देहि द्विषो जहि" हे देव! हमें सुन्दर रूप दो, मनोरमा रूपवती पत्नी दो, धन दो, यश दो और हमारे शत्रुओं को मारदो। कर्म भी करेंगे सकाम भाव से-विषय भोगों की प्राप्ति की इच्छा से क्या करें बेचारों की बुद्धि

दैव ने हरली है, पूर्व कृत कर्मों के कारण भवना विपरीत बन गयी है, विषधर सर्प को सुखकर माला मान कर मुदित मन से उसे अपनाते हैं कण्ठ का हार बनाते हैं और उसके कारण बार बार जीते हैं बार बार मारते हैं। प्रभो! इन सबको देखकर मुझे दया आती है, आप कृपा करें, इन सबको सद् बुद्धि दें जो ये आप का भजन् ध्यान, कथाश्रवण तथा कीर्तन कर सकें आपकी ओर ये जा सकें।

हे अच्युत! जीव संसार में भटक रहे हैं, दुखी हो रहे हैं, नाना प्रकार के क्लेश उठा रहे हैं, इनका उद्धार कैसे होगा। कैसे ये इन दुःखों से छूट सकेंगे। एक दुःख हो तो वह किसी प्रकार मिटाया भी जाय। जीव तो दुःखों का आलय बन गया है।

सबसे बड़ा दुःख तो भूख प्यास का है। एक दिन खाने पीने से क्षुधा पिपासा शान्त हो जाय सो भी बात नहीं। नित्य भोजन पानी चाहिये। दिन में कई बार चाहिये न मिले तो मन विकल हो जाय, हृदय तड़फड़ाने लगे। यह शरीर में इतना गहरा गड्ढा बना दिया है कि कभी भरता ही नहीं। जब देखो तब खाली। न जाने कितना घृत इसमें भर दिया, कितना अन्न ठूँस दिया। कितने साग, भाजी, मिर्च, मसाले दूध-दही, नमक, विष इसमें विलीन हो गये। कुछ पता ही नहीं चलता। प्रातः भरा दोपहर में फिर रीता, फिर ठूँस-ठूँस कर भरा सायंकाल को फिर खाली। रात दिन तो इसी की चिन्ता लगी रहती है। एक दिन भी तनिक कम खाया तो घर भर में हल्ला मच गया। आज कम क्यों खाया? क्या हो गया? चित्त कैसा है, वैद्य आवे, चिकित्सक आवे, निदान हो, उपचार हो, क्वाथ पिलाओ, चूर्ण फँकाओ गोली खिलाओ। आसव पिलाओ। फिर खिलाओ पिलाओ ही। खाना-पीना पिंड नहीं छोड़ता। प्राणियों को खाने-पीने की चिन्ता आठों पहर बनी रहती है।

प्रभो ! इतना ही हो तो सह भी लिया जाय। आज बात कुपित हो गयी, पेट में पीड़ा है, उदर फूल गया, वायु का गोला बन गया, गाँठों में वेदना हो गयी, वात ज्वर आ गया। पित्त कुपित हो गया, तृषा अधिक है, प्यास बहुत लगती है, पेट में जलन होती है, उलटी आती है। चित्त मिचलाता है, दाह बढ़ गयी है, उद्विग्नता हो गयी है, उपचार करो, काई मँगाओ शिवार पीस कर सिर पर रखो, मिश्री लाओ औषधि पिलाओ। चटनी अवलेह चटाओ। पित्त की प्रबलता में भी खिलाते जाओ, पेय पदार्थों को पिलाते जाओ। आज श्लेष्मा कुपित होगया है, खासी बढ़ गयी है, कफ बहुत निकलता है, कंठ की ग्रन्थियाँ बढ़ गयी हैं, भूख कम हो गयी है। आँव पड़ने लगा है। पेट में असह्य पीड़ा है छटपटा रहे हैं बिलबिला रहे हैं तड़प रहें हैं, रो रहे हैं घर वालों को कोस रहे हैं। चिकित्सकों के आगे दीन हो रहे हैं। कैसी विवशता है। ये वात, पित्त, कफ, तीनों धातु कुछ काल को भी देह से कहीं चले जायँ तो कुछ तो शान्ति हो, ये क्षण भर भी देह से बाहर नहीं जाते। नित्य ही कोई न कोई कुपित हो ही जाती है। घर में दो चार साथ रहते हैं तो लड़ाई हो ही जाती है कोप स्वाभाविक है, एक साथ बर्तन रहेंगे तो कभी न कभी खटक ही जायँगे। कुपित होती हैं धातुएँ, दुखित होता है पुरुष। कोई रोता है आँसू किसी के आते हैं। कैसी आपत्ति है, कैसा जंजाल है।

वात, पित्त और कफ की ही विषमता या वृद्धि का केवल दुःख होता तो प्राणी रो-गाकर उन्हें सह लेता। पौष माघ फागुन आये नहीं कि इतना शीत पड़ता है सम्पूर्ण शरीर ठिठुर जाता है ऊनी वस्त्र रुई के गद्दे रजाई अग्नि का प्रबन्ध सभी करते हैं, तब भी जाड़ा लगता ही है। जिन पर यह सब कुछ नहीं है, रात्रि भर पेट में घोंटू दिये बैठे रहते हैं। चैत्र वैशाख ज्येष्ठ में उष्णता दुःख देता है। प्यास लगती है लू चलती है माखी मच्छर आकर काटते

हैं, बालू तप जाती है, शरीर पर वस्त्र रखा नहीं जाता अग्नि बरसाती है। शरीर से स्वेद निकलता रहता है। कभी आँधी चलती है, तो धूलि सम्पूर्ण घर में भर जाती है, आँखों में भर जाती है, कंठ में घुस जाती है वस्त्र मैले हो जाते हैं। आषाढ़ श्रावण भादों में वर्षा होती है। भूमि गीली हो जाती है, सर्वत्र कीच भर जाती है, वस्त्र भीग जाते हैं, लकड़ी गीली हो जाती है।

इनके अतिरिक्त भी भीतरी कष्ट बहुत है। कोई स्त्री किसी पुरुष पर या कोई पुरुष किसी स्त्री पर आसक्त होगये तो वे दिन रात्रि बिना अग्नि के ही जलते रहते हैं। घर, द्वार कुटुम्ब परिवार कुछ अच्छा ही नहीं लगता, निरन्तर उसी का चिंतन बना रहता है। परस्पर किसी पर संयोग भी हो जाय, तो कामाग्नि और भड़क जाती है। क्षण भरको सुखाभास मा भले ही प्रतीत हो, किन्तु दुःख और बढ़ जाता है। हृदय तड़पता रहता है, मन व्याकुल बना रहता है, अकारण शरीर झुलसता रहता है, हृदय जलता रहता है, फुँकता रहता है, यह कामाग्नि सबसे अधिक कष्टकर है। काम का भाई क्रोध भी साथ ही रहता है, अपने प्रतिकूल जो भी बात हुई, कि बिना अग्नि के अन्तःकरण से लपटें उठने लगती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, मुख तमतमाने लगता है, नसें तन जाती हैं, आकृति विकृत बन जाती है। वाणी पर से संयम चला जाता है। जो मुख में शब्द आजाता है उसे ही बकने लगते हैं। अनकहनी बात कहने लगते हैं, प्रहार कर बैठते हैं। एक पक्ष को कुपित देखकर दूसरे पक्ष के भी कुपित हो जाते हैं, मार धाड़ आरंभ हो जाती है। क्षण भर के क्रोध के कारण न जाने कितने दिनों तक कष्ट उठाना पड़ता है।

हे रिपुञ्जय ! हे शत्रुसंहारी प्रभो ! एक शत्रु ही जीवन को कड़वा बना देता है। वह शत्रु अपने से दूर रहता है, फिर भी

प्रतिक्षण दुखी बनाये रहता है, किन्तु इस शरीर के भीतर एक नहीं बारह बारह शत्रु बैठे हैं, वे क्षण भर को भी टलते नहीं। क्षुधा, पिपासा, वात, पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, काम, क्रोध और लोभ ये बारह शत्रु कभी शान्त होकर बैठते नहीं कभी शरीर से बाहर नहीं जाते। नाथ! ये जीव निरन्तर इन शत्रुओं द्वारा पीड़ित किये जा रहे हैं। जीव इनके कारण बारम्बार दुःसह कष्ट उठा रहे हैं, इन सब को अत्यन्त दुखी देखकर दयावश मेरा हृदय द्रवित हो रहा है। प्रभो! इन जीवों पर दया करो, इन्हें दर्शन देकर इनके समस्त दुःखों को दूर कर दो।

स्वामिन्! यह जीव आपकी माया में भटक रहा है। इन्द्रियाँ अपने अपने विषय के रस का आस्वादन चाहती हैं, विषय इन्द्रियों में रम गये हैं। आँखें सदा सुन्दर सुन्दर रूपों को देखने को लालायित रहती हैं। रसना स्वादेन्द्रिय, खट्टे मीठे चरपरे रसों को चखने को चंचल बनी रहती है। त्वग् इन्द्रिय, सुखद गुल-गुले स्पर्श के लिये व्याकुल बनी रहती है। घ्राणेन्द्रिय नासिका, अच्छी सुन्दर सुगन्ध के लिये उत्सुक बनी रहती है। कर्णेन्द्रिय सरस सुखद श्रुतिप्रिय शब्दों के श्रवण के लिये लालायित बनी रहती है। विषय इन्द्रियों में समा गये हैं और इन्द्रियाँ विषया-भिमुखी बन गयी हैं। वास्तव में उनमें है कुछ नहीं। वास्तविक सुख न होने पर भी जीव इनमें सुख माने बैठा है यही आपकी माया है। इस माया ने ही एक में अनेकता का भ्रम बना दिया है, इस संसार चक्र को खड़ा कर दिया है, मिथ्या प्रपंच को प्रश्रय प्रदान कर रखा है। इस इन्द्रिय और विषय रूपिणी माया से दृढ़ रूप में प्रतीत होनेवाले देहादि रूप अनेकता का संपर्क देखता है। संसार में एक आपही आप हैं। समस्त ऐश्वर्य समस्त विभूति आपकी ही तो है। आपके अतिरिक्त यथार्थ सत् पदार्थ

और है ही क्या ? किन्तु यह माया मोहित जीव आप में ही नानात्व का आरोप करता है। जब वह एकत्व अनेकत्व देखता है, तो भय को प्राप्त होता है, दूसरे से तो भय होता ही है। जब तक मिथ्या प्रतीति है, द्वैधी भाव है तब तक संसारचक्र की निवृत्ति नहीं हो सकती। मिथ्या होने पर भी कर्मों का भोग भोगना ही पड़ेगाकर्म चक्र में फँसना ही पड़ेगा। वास्तव में यह सब प्रपंच मिथ्या है फिर भी कर्म फल भोग का आश्रय होने के कारण जीव को ऊँची नीची नाना योनियों में जाना पड़ता है और भाँति भाँति के कष्टों को भोगना पड़ता है।

हे देव ! यह आपकी कैसी बलवती माया है, इस जीवने कैसी मोहमयी मदिरा पीली है, अकारण कैसा मिथ्याभिमान होगया है। कुछ भी न होने पर यह कैसा प्रमाद छा गया है। कौन नहीं जानता ये भोग क्षणभंगुर हैं। यह बात किससे छिपी है, कि एक दिन हमें मरना पड़ेगा, ये संसारी सम्पूर्ण पदार्थ यहीं पड़े के पड़े रह जायँगे, किन्तु इनमें कैसी ममता समा गयी है, कैसा अपनापन होगया है, कि जीव अपने स्वरूप को भूल गया है। आठ पहर चौंसठ घड़ी इसे यही चिन्ता बनी रहती है, कैसे अधिक से अधिक विषय भोगों को बटोर सकूँ। कैसे सम्पूर्ण धनको अपना बना सकूँ, कैसे अपने ही व्यापार को बड़ा बना सकूँ। इन्हीं चिन्ताओं में दिनभर विकलेन्द्रिय बना रहता है। अब के वहाँ से संवाद की प्रतीक्षा है। आज यह लेना है, उसे प्राप्त करना है, वहाँ से इतना मिलना है, इन बातों में इतना तन्मय हो जाता है, कि यह भान भी नहीं रहता कब सूर्य उदय हुआ, कब अस्त हुआ। दिनभर श्रम करते करते क्लान्त हो जाता है। आँखोंमें निद्रा छा जाती है। विवश होकर शैया का सहारा लेता है, दिनमें सचेत होकर व्यस्त बना रहता है रात्रिमें निद्रा के वशीभूत होकर अचेत हो जाता है, किन्तु मनमें तो दिनभर के कामों के संकल्प विकल्प

भरे रहते हैं। स्वप्नमें भी वे ही बातें देखता है। स्वप्नमें भी वस्तुओं के पाने और जाने का हर्ष शोक होता है जिससे क्षण क्षण में निद्रा भंग हो जाती है। इससे सुखकी नींदभी नहीं सो सकता। कभी कभी व्यापार में घाटा हो जाता है, पकड़ता है सोना हो जाती है मिट्टी। सोचता है कुछ होजाता है कुछ। जो कार्य करता है उसीमें घाटा होजाता है। भाग्य साथ नहीं देता, दैवका कोप समझकर मन ही मन दुखी बना रहता है, उसे भगवत् चर्चा सुहाती ही नहीं। ऐसे लोग आपके कथाकीर्तन से विमुख हो जाते हैं।

प्रभो! जो लोग आपके कथा कीर्तनसे विमुख हैं उनके जन्म चाहे उचसे ऊच राजवंश विप्रवंश अथवा ऋषिवंश में ही क्यों न हुआ हो उनका संसार चक्र छूटता नहीं। आपके कथा कीर्तन से प्रेम न करने वाले मुनिजन भी-ऋषिपुत्र भी-पुनः पुनः जन्म लेते हैं और पुनः पुनः मरते हैं संसार चक्रमें चक्कर लगाते रहते हैं।

स्वामिन्! आप अचिन्त्य महिमा वाले हैं। वैसे कोई आप को कैसे जान पहिचान सकता है। आपका मार्ग केवल गुण-श्रवण से ही जाना जा सकता है। आपका बोध केवल कथा श्रवण से ही हो सकता है। सत्संग से ही आपकी उपलब्धि संभव है। आपको खोजने बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं। मैं कितने दिनों तक बाहर भटकता रहा। जलमें घुमकर आप का पता लगाना चाहा, आप नहीं मिले। जब आपने स्वयं कृपा की मुझे अपनी अहैतुकी भक्तिप्रदान की तो आपने मेरे अन्तःकरणमें ही घर बैठे ही दर्शन देदिये। इससे मैं तो इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ, कि आप अपने भक्तोंके भक्तिभावपूर्ण हृदयकमलमें निवास करते हैं। आपके ठहरनेका घर भक्त का अन्तःकरण ही है। हे

अनन्त ! आपका न कोई एकनाम है न एकरूप । आप अरूपी होते हुए भी अनेक रूप हैं। अनामी होने पर भी सर्वनाम हैं। आपके भक्त आपकी जिस भावना से चिन्तना करते हैं आप उनकी उसी भावनाकी पूर्ति कर देते हैं। रामकृष्णादि अवतारों की जो गुरूपदिष्ट मार्ग से उपासना करते हैं उन्हें आप उन्हीं रूपों में दर्शन देते हैं। जो स्वतः ही बिना किसी के उपदेशसे आत्म प्रेरणासे जिस किसी रूप का ध्यान करते हैं आप उसकी सच्ची भावना को समझकर उसी रूपसे उसके सम्मुख आजाते हैं। जो देवी रूपसे आपका चिन्तन करते हैं आप देवी बन जाते हैं। गुरु रूपसे उपासना करते हैं गुरु बन जाते हैं। स्त्री रूप में तुम्हें भजते हैं स्त्री होकर आजाते हैं सारांश यह है कि आप भक्तोंकी भावना से आबद्ध हैं। आप अनुग्रहावतार हैं, साधु जनोंपर अनुग्रह करने के कारण उनकी भावनाके अनुरूप रूप रखकर उनको दर्शन देते हैं। आप बहुरूपिया हैं, अनेक रूपधारी हैं, विविध वेष बनाने वाले हैं।

हे अद्वय ! हे अन्तर्यामिन् वास्तवमें तो आप एक हैं, अद्वय हैं, नामरूपोंके भेद से रहित हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरणों में स्थित रहते हैं, कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जहाँ आप न हों। आपके बिना किसीका अस्तित्व ही नहीं। आप सभी के हितकारी हैं सभी के कल्याणकर्ता हैं, सभी के सुहृद् हैं, जगत् के बन्धु हैं, विश्वकी आत्मा हैं, इसीलिये विश्वनाथ विश्वम्भर कहाते हैं आपही अन्तरात्मा हैं जो सबमें आपको देखता है, सबको आपका ही रूप समझकर प्राणि मात्र पर दया करता है, उस दयावान् व्यक्तिपर

आप अत्यंत ही प्रसन्न होते हैं। आप को पाने का एकमात्र उपाय है प्राणी मात्रके प्रति दया भाव प्रदर्शित करना। हृदयसे सभीका कल्याण चाहना। जिसके हृदयमें अनन्त संसारी कामनायें भरी हैं, जो विषय भोगोंके लिये ही व्याकुल बने रहते हैं, वे चाहें देवता ही क्यों न हों और आपकी अनेक बहुमूल्य सामग्रियों से ही पूजा क्यों न करते हों, उनपर उतने प्रसन्न नहीं होते जितने सर्व भूतों पर दया करने वालों पर प्रसन्न होते हैं। सामग्रियों से भला कौन आपको सन्तुष्ट कर सकता है। जो लक्ष्मीपति हैं कमलाकान्त हैं श्रीनाथ हैं उसे कोई कौनसी वस्तु देकर प्रसन्न कर सकता है। जो सभी में आपका ही रूप देखते हैं सभीको भगवत्मय समझकर मनसे ही प्रणाम करते हैं, उन्हीं पर आप परम प्रसन्न होते हैं। सो हे परमेश्वर! सत्पुरुष ही सब पर दयाके भाव दर्शा सकते हैं। असंत पुरुषतो द्वैधीभाव करके प्राणियों में द्वेष भाव रखने लगते हैं। अतः हे सर्वेश्वर! हमें अनेकत्वमें एकत्व देखने की दृष्टि दीजिये। सभी में तुम्हारा ही रूप देखकर सबको प्रणाम करें सबके प्रति प्रेम प्रदर्शित करें।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार ब्रह्माजी का दूसरा मुख स्तुति करके जब चुप हो गया, तो उनके तीसरे मुखने स्तुति आरंभ की। उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

दिन महँ बहु व्यापार विकल मन प्रतिछिन होवै।
श्रमित निशामहँ नींद नहीं सुख की हू सोवै॥
कथा कीरतन बिना तरें नहिं ऋषिमुनि देवा।
प्रकट भक्तहिय होहु करै जो सबकी सेवा॥
भक्ति भाव अनुरूप प्रभु, देउ दरस दासनि नितहिं।
जीव दया तैं तुष्ट तुम, होहु भेंट बहु पाइ नहिं॥

पद

दयानिधि ! सबई जीव दुखारे।
त्रिविध ताप संताप सतावैं भटकत फिरैं विचारे ॥१॥
सुनी कथा न बैठि भगवतनि महँ नहिं तव नाम उचारे।
तन धन दारा मैं मेरी में पचि पचि पामर हारे ॥२॥
दोष त्रिविधि सरदी गरमी भय, काम क्रोध उर जारे।
तनिक विषय हित भरमत डोलत भूख प्यास के मारे ॥३॥
इन्द्रिय विषय भोग महँ भूले, माया के मतवारे।
मिथ्या भ्रम प्रभु छुटै न तब तक गहैं न चरन तिहारे ॥४॥

॥ श्री हरिः ॥

श्रीब्रह्मचारीजी की कुछ अन्य पुस्तकें

जो हमारे यहाँ से मिलती हैं।

१—भागवती कथा—(१०८ खण्डों में; ६३ खंड छप चुके हैं) प्रति खंडका मूल्य १), दस आना डाकव्यय पृथक्।

२—श्री भागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठ की, सजिल्द मूल्य ५।)

३—बदरीनाथदर्शन—बदरीनाथजी पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ, मूल्य ४)

४—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० ३५० मूल्य २॥।)

५—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मूल्य २)

६—नाम संकीर्तन महिमा—भगवन्नाम संकीर्तन के सम्बन्ध में उठने वाली तर्कों का युक्तिपूर्ण विवेचन। मूल्य ॥)

७—श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मूल्य ॥)

८—भागवती कथा की बानगी—(आरंभके तथा अन्य खंडों के कुछ पृष्ठों की बानगी) पृष्ठ संख्या १००, मूल्य ।)

९—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मूल्य ।-)

१०—मेरे महामना मालवीय जी और उनका अन्तिम संदेश—मालवीयजीके जीवनके सुखद संस्मरण। पृष्ठ ११० ; मूल्य ।)

११—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दू हिन्दू बन सकते हैं? इसका शास्त्रीय विवेचन। पृष्ठ सं० ७६ मूल्य ।-) पाँच आना

१२—प्रयाग माहात्म्य—मूल्य -) एक आना।

१३—वृन्दावन माहात्म्य—मूल्य -)

१४—राघवेन्दु चरित—(भागवतचरितसेही पृथक छापागया है मूल्य ।-)

१५—प्रभुपूजा पद्धति—मूल्य =)

१६—श्री[illegible] चरितावली—प्रथम खंड १)

१७—भागवत चरित की बानगी—भागवत चरित के कुछ अध्यायों का नमूना—मू० -)

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) प्रयाग।